ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत चमत्कार

एक पुरातन ऋषि का दिव्य जन्म

१४ सितम्बर सन् १९४२, में उत्तर-प्रदेश के गाजियाबाद जिले के, ग्राम खुर्रमपुर-सलेमाबाद में एक विशेष बालक का जन्म हुआ। बालक जन्म से ही एक विलक्षणता से युक्त था। और विलक्षणता यह कि जब भी यह बालक सीधा, श्वासन की मुद्रा में, कुछ अन्तराल लेट जाता या लिटा दिया जाता, तो उसकी गर्दन दायें-बायें हिलने लगती, कुछ मन्त्रोच्चारण होता और उसके उपरान्त विभिन्न ऋषि-मुनियों के चिन्तन और घटनाओं पर आधारित ४५ मिनट तक, एक दिव्य प्रवचन का प्रसारण होता। पर एक अपठित ग्रामीण बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जन-मानस आश्चर्य करने लगा, बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनों की गूढ़ता के विषय में कोई भी कुछ कहने की स्थिति में नहीं था। इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनों से ही हुआ। कि यह आत्मा सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालों में, श्रृङ्गी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल में आदि ब्रह्मा के शाप के कारण इस युग में जन्म लेने का कारण बनी। इस जन्म में अपठित रहने की स्थिति में जैसे ही यह शरीर श्वासन की मुद्रा में आता तो कुछ अन्तराल बाद इस दिव्यात्मा का पूर्व जन्मों का ज्ञान उद्बुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष में उपस्थित सूक्ष्म शरीरधारी दिव्यात्माओं के समक्ष एक सत्संग सदृश्य स्थिति बन जाती जिसमें इस महान आत्मा का सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं के लिए प्रवचन होता। जिसमें इस आत्मा के पूर्व जन्मों के शिष्य महर्षि लोमश मुनि पूज्य महानन्द के प्रवचन भी होते। क्योंकि इस दिव्यात्मा का स्थूल शरीर यहां मृत्यु लोक में स्थित होने के कारण वहां सत्संग में दिये जाने वाला दिव्य प्रवचन इस शरीर के माध्यम से यहाँ उपस्थित जन-मानस को भी सुनाई देते हैं। इन प्रवचनों में ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है, जो किसी भी मनुष्य को, समाज और राष्ट्र को उच्च कोटि का जीवन जीने का कारण पैदा करने का सामर्थ्य रखते हैं। -श्रृङ्गी ऋषि वेद विज्ञान प्रतिष्ठान

१ 14 01 1970 पुष्प 20 मानव कल्याण के लिए परमात्मा

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा। आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, वह सुन्दर पाठ्य क्रम अथवा उन की पद्धतियों का प्रायः सुन्दर वर्णन होता रहता है। जिस पाठ्य क्रम में वेदवाणी की आनन्द मयी कल्याण मयो, जो मानव को पवित्र बनाने वाली है, हम सदैव उस महामना माता का नित्य प्रति स्मरण किया करते हैं। जिस मातेश्वर के अखिलेश्वरी भी कहा है जो ब्रह्म मनश्व प्रवे जिस माता के आनन्द का प्रवाह बेटा ! इस संसार में रमण कर रहा है। जितना भी आनन्द का स्रोत हैं वह उस ब्रह्‌्म का एक आनन्दमय प्रवाह कहलाया गया है। उस आनन्द को ही सदैव पान करना है। जिस आनन्द को प्रतिभा को जानते हुए हमारा अन्तरात्मा सदैव पवित्र होता रहता है। आज का हमारा अन्तरात्मा सदैव पवित्र होता रहता है। आज का हमारा वेद पाठ हमें उस महान् आनन्द के लिए प्रेरित करता चला जा रहा था। जहाँ जीवन की एक अमूल्य निधि प्रायः हम को प्राप्त होती रहती है। तो मेरे प्यारे आज का यह वेद पाठ !ऋषिवर ! हमारा क्या कह रहा है कि हमारी यह जो कल्याणमयी वेदवाणी है, जो मानव को उज्ज्वल और शुद्ध तथा पवित्र बनाने वाली है, जो मानव को उज्ज्वल और शुद्ध तथा पवित्र बनाने वाली है, हम उस वेदवाणी के आँगन में चले जाएं। जहाँ उस परम पिता परमात्मा की प्रतिभा का सुन्दर रूपों से प्रतिपादन अथवा उसकी महिमा का सदैव अनुवाद होता रहता है। सदैव उसकी महिमा हम प्रायः प्रतिपादन करते रहते है।

मेरे प्यारे हम अपने !ऋषिवर !को प्रभु को समर्पित करना चाहते हैं। जैसेमाता का प्रिय बालक है परन्तु वह सदा माता के आँगन में रहता है। वह अपने को माता को समर्पित कर देता है तो उसका लालन पालन सब उस माता के द्वार पर ही माता के विचारों में परणित हो जाता है। हे महामनाकैसी पवित्र !तू कैसी है ! माता है। आज जितना भी लालन पालन है चाहे वह किसी भी लोक लोकान्तर में हो, किसी भी मण्डल में हो परन्तु वह उस महामना देवी को उस महामना प्रभु को समर्पित करना चाहते हैं। मानव,

प्रायः यह चाहता है कि मैं आनन्द को प्राप्त करूं। परन्तु मानव को नाना प्रकार के सुन्दर सुन्दर आभूषणों में वह आनन्द प्राप्त नहीं होता। नाना प्रकार के सुन्दर सुन्दर स्वादिट भोजन इत्यादियों से भी आनन्द प्राप्त नहीं होता। मानव को सुन्दर सुन्दर वस्तुओं से भी आनन्द नहीं प्राप्त होता। वेद का आचार्य कहता है आनन्दवत सम बह्मने विवेकः अस्ति सुप्रजा वह जो आनन्द हमें प्राप्त होता है वह तो बेटा एक महामना उस महादेवी की ! ही महिमा है। उसके अनुपमत्व को वास्तव में हमें जानना चाहिए। वह मामव के सुदृढ़ विचारों से जाना जाता है।

मानव के लिए वास्तव में यह जो प्रभु ने जगत् रचा है यह एक प्रकार का सुन्दर भव्य भवन है इसमें मानव भ्रमण करने के लिए आया है। मानव को इस भवन में कर्म करना है। कहीं नृत्यकार बनना है, कहीं कलाकार बनना है, कहीं यहाँ सुन्दर सुन्दर आभूषणों की अपनाना है। बेटायह सब क्या है !? मानव यह एक कल्पना रता है। मैं भी बेटा ! प्रायः इन रूपों की परम्परा से कल्पना करता आया हूँ। जैसे हमारे यहाँ प्रभु के स्वरूप का वर्णन आचार्यों ने किया है। बेटा मैं उन सुन्दर रूपों का प्रायः परम्परा से उच्चारण ! करता आया हूँ। यहाँ आयुर्वेदाचार्य यह कहते हैं कि मैं आयुर्वेद के सिद्धांत को जानन आया हूँ। मैं नाना औषधियों को जानने आया हूँ। नाना प्रकार की औषधियों को जानने से मैं आयुर्वेद का ज्ञाता बन जाऊं। परन्तु यह वास्तवमें कृषक शाला है जिसकी हमें जानना है क्योंकि उस प्रभु ने जितना भी यह जगत् रचा है एक मानव दूसरे के प्रति द्वेष में परणित हो जाता है। परन्तु द्वेष उस के अन्तःकरण में इतना प्रबल हो जाता है कि वह द्वेष मानव की स्मरण शक्ति को बेटा स्वयं निगल जाता है। आज ! कोई मानव यह कहता है कि मैं दूसरों के प्रति द्वेष रखता हूँ। परन्तु वेद का आचार्य कहता है कि यह दूसरों के प्रति कोई द्वेष नहीं है। द्वेष वयं अपने लिया किया जाता है। क्योंकि द्वेष की मात्रा उस मानव की स्मरण शक्ति तथा सुकृत का हनन कर देती है। मुनिवरों इस मानव का सुकृत जब हनन ही जाता है तो मानव की परम्परा नष्ट ! आचार्य कहता है विचार करके काय करना चाहिए। यह मानव का !हो जाती है। बेटा आज मैं इ !ऋषिवर !सदैव कर्तव्य कहलाया गया है। तो मेरे प्यारेस वाक्य को गम्भीर

नहीं बनाऊंगा। उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय केवल यह है कि आज हम किसी के प्रति द्वेषात्मक तथा दुर्भावनाओं का विचार विनिमय करते हैं तो यह हमारा सुन्दर कर्तव्य नहीं कहलाया जाता है।

आज मैं इस वाक्य को और भी बेटा पुनरुक्ति द्वारा स्पष्ट कर !देना चाहता हूँ। एक मानव दूसरे मानव के प्रति अनिष्ट विचार बना लेता है। वे अनिष्ट विचार दूसरों के प्रति कदापि नहीं बनते। उसकी जो भावना होती है, उसका जो अन्तःकरण होता है, उसको वह स्वयं शनैः शनैः निगलता रहता है जैसे बेटा महात्मा विदुर ने एक समय धृतराष्ट्र ! सेभी कहा था। जिस समय धृतराष्ट्र ने महात्मा विदुर से कहा कि हे विदुर कुरुक्षेत्र ! में क्या हो रहा है !में मेरे और पाण्डू पुत्रों? उन्होंने कहा हे प्रभु आपके और पाण्डु ! में एक दूसरे के प्रति विनाश के विचार बनाए जा रहे हैं। उन्होंने कहा इसमें !पुत्रों होगा क्या महात्मा विदुर ने कहा कि जो आपको इच्छा होगी वही होगा। धृतराष्ट्र ने कहा कि मैं क्या चाहता हूँ? उन्होंने कहा हे प्रभु मैं इसको नहीं जानता कि तुम क्या ! ने जो विचार बनाए हैं वे विचार बड़े अनिष्ट हैं। इसीलिए !चाहते हो। परन्तु आपके पुत्रों वे उनके अपने हो प्रतिअनिष्ट हैं। अनिष्ट विचारों का अभिप्राय यह कि तेरे कुल का विनाश हो जाएगा। क्योंकि तेरे कुल की जो धारा है वह अभद्र विचार की है। यह सब एक दूसरे की प्रतिभा अनुज्ज्वल बनाने के लिए हो रही है। तो मुनिवरों महात्मा विदुर ! ने इन वाक्यों द्वारा सान्त्वना देते हुए कहा ब्रह्मणे कामः प्रवे अस्ति धृतराष्ट्र तेरे पुत्र सदैव मृत्यु के लिए प्रेरित होते रहते हैं। मृत्यु के लिए नियोजित होते रहते हैं।

इसी प्रकार बेटासंसार में मानव को यह विचारना है कि हम कया कर रहे हैं !? आज किसी के प्रति द्वेष किया जाए, क्रोधित हुआ जाए, किसी के प्रति अनिष्ट व्यापार किया जाए, अनिष्ट की कल्पना की जाय तो उस मानव को उस समय स्वार्थ में प्रतीत नहीं होता। परन्तु मुनिवरोंदेखो !, इससे ऐसे प्राणियों के सब पुण्य हनन हो जाते हैं। क्यों ! हो जाते हैं? क्योंकि यह दर्शन कहता है। मैं नहीं कहता बेटाआज वेद का प !ाठ ही इस प्रकार का आया है। सम्भव गतो प्रवे अस्वन्ति लोकं ब्रह्म एकानः वृतते प्रवे अकृति रुद्रः। ऐसा विचार मानव को बनाने से उस मानव के स्वयं के पुण्य हनन हो जाते हैं।

मेंरे प्यारे ऋषिवर आज मैं यह वाक्य उच्चारण करने जा रहा था कि आयुर्वेद का ! पण्डित क्या कह रहा है? मानव नाना प्रकार के विचार बना लेता हैं राजा बनने से पूर्व राजा अपने विचार बनाता है परन्तु उसके राजा बनने के पश्चात और सुन्दर विचार होते हैं। यह उसके व्यापक विचारों में परणित हो जाता है। इस प्रकार यह जितना जो जगत मेरे प्यारेप्रभु ने रचा है यह सब एक ! प्रकार का सौंदर्य विचारार्थ जगत है। मानो यह जो जगत है एक भव्य भवन है। इसमें सब प्राणी अपने अपने विचार विनिमय करने के लिए आते हैं। बेटाकैसा सुन्दर है !, कैसी कल्पना है। यहाँ मुझे एक वार्त्ता स्मरण आती चली जा रही है, जो मैंने पूर्व काल में भी प्रकट की है। बेटादेखो !, महात्मा दधीचि के साहित्य को प्रायः सभी जानते हैं। महात्मा दधीचि के दर्शन करने का प्रायः सौभाग्य भी प्राप्त होता रहा है। बेटा वे अस्थियों के दान से हो संसार में वे देवतव को प्राप्त ! हो गए। आज तुम्हें यह प्रतीत हो गया होगा कि महात्मा दधीचि अपने आश्‍्रम में जब रहते थे तो वे ब्रह्म वेत्ता तो बन ही गए थे। उनके आसन पर कामधेनु विश्राम करती थी। वे कामधेनु का दुग्धपान करते थे और अपने जीवन की व्यतीत करते रहते थे। मेरे प्यारेउस समय देखो !ऋषिवर !, जब दोनों अश्विनी कुमार वेद विद्या में पारंगत हो गए, नाना प्रकार की औषधियों का पन करने से वे नाना प्रकार की औषधियों का विधान सुन्दर सुन्दर रूपों से जानने लगे थे। उनके विषय में बेटा ऐसा कहा जाता है ! मेरी बालिका पुत्री तो यही कहती थी कि इनके मुखारबिन्द से प्रत्येक औषधि यह उच्चारण करती थी कि मैं अमुक रोग को औषधि हूँ। अश्वि‍नी कुमारों की इतनी बुद्धि तीव्र बन गई थी कि उसके विषय में कुछ कहा नहीं जाता। उनका प्रमाण देना मेरे लिए शोभा नहीं देता। वाक्य केवल यह कि अश्विनी कुमार जब इस विद्या में पारंगत हो गया तो एक समय उन्होंने यह विचार बनाया कि हम ब्रह्मवेत्ता बनेंगे। ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए उन्होंने अपने विचार सुन्दर और गम्भीर बनाए। नाना ऋषियों के आश्रमों में भ्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। वे महर्षि रौनक के आश्रम में पहुँचे। इतने में महाराजा इन्द्र के यहाँ से यह घोषणा हुई कि जो अश्विनी कुमारी को ब्रह्मविद्या का उपदेश देगा उसी के मस्तिष्क को, कण्ठ के ऊपर के भाग को उतार लिया जाएगा, मानो उसको

पृथक कर दिया जाएगा। उसी समय बेत्र्प्रा। यह वातार् सभी ऋषियों ने श्रवण की। ऋषि, मुनि कोई भी अश्विनी कुमारों को ब्रह्म उपदेश देने के लिए सन्नद्ध नहीं हुआ। भ्रमणकरते हुए बेटाएक समय उन्होंने अपना विचार बनाय !ा कि महात्मा दधीचि के द्वार पर जाएं। वे भ्रमण करते हुए, अनेक ऋषियों के द्वार होते हुए, महात्मा दधीचि के आश्रम में जा पहुँचे। महात्मा दधीचि से यह कहा कि हे प्रभु हम आपके द्वारा उपदेश ! श्रवण करना चाहते हैं, आप ब्रह्मवेत्ता हैं। हम आपसे ब्रह्म का उपदेश चाहते हैं। प्रभु हमको ब्रह्म का उपदेश दीजिए। उन्होंने कहा यह तो यथार्थ है कि तुम ब्रह्म का उपदेश चाहते हो। परन्तु इन्द्र के यहाँ तो यह घोषणा हुई है कि जो कोई भी तुम्हें ब्रह्म का उपदेश देगा उसके कण्ठ के ऊपर के भाग को अपने अस्त्रों शस्त्रों से पृथक कर दिया जाएगा। भला यह कैसे हो सकता है? अश्विनी कुमारों ने कहा भगवन । जैसे आपकी ! इच्छा हो। परन्तु हम ऐसा तो कर सकते हैं कि आपका कण्ठ से ऊपर का जो भाग है इस को आप से पृथक करके औषधियों में सुरक्षित कर सकते है। और आपके इस ऊपर के भाग में अश्व का सिर स्थिर होने के पश्चात आप अश्व के मुखारबिन्द से उपदेश दीजिए। जब यह वाक्य महात्मा दधीचि ने श्रवण किया तो बड़ा आश्चर्य हुआ कि क्या आप ऐसा कर सकते हैं? उन्होंने कहाँ हां भगवनउन्होंने अनेक औषधियां एकत्रित की !, उन औषधियों का पात बनाया। जब औषधियों का पात बनाया तो उसके पश्चात महात्मा दधीचि के मस्तिष्क के ऊपर के भाग को पृथक करके बेटा उसको तो औषधियों में ! सुरक्षित रख दिया और अश्व के सिर को उनके कण्ठ के ऊपर भाग में स्थिर कर दिया। जब अश्व का सिर स्थिर हो गया तो महात्मा दधीचि के हृदय से ब्रह्म का उपदेश प्रारम्भ होने लगा।

यहाँ एक शंका उत्पन्न होती है कि क्या अश्व के मुखारबिन्द से मानव की वाणी का उच्चारण हो सकता है। प्रायः मानव के मन में संशय उत्पन्न हो सकते हैं। इसका निवारण केवल यह है कि अश्विनी कुमार जहाँ इस प्रकार के आयुर्वेद जानने वाले थे वहाँ वे अश्वक नामक औषधि जानते थे। और उन औषधियों का पान करने से ही अश्वों की वाणी को जानने लगता है। ऐसा हमारे यहाँ आयुर्वेद के पण्डितों ने कहा है। मुझे भी

बेटा कुछ सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि यह अश्वत केत कृतक नाम की औषधि कहलाई ! दिवस मन्थन 40 जाती है जो पर्वतों और वनों से उसको प्राप्त किया जा सकता है। करने से औरउसका पान करनेसे बेटा अश्व की वाणी को मानव श्रवण करने लगता ! है। इसी प्रकार अब अश्विनी कुमारी ने अश्व की शिक्षा को पान कर लिया। इस विद्या को पान कर लिया। इस विद्या को महाराजा इन्द्र भी जानता था। महाराजा इन्द्र को दधीचि के यहाँ अश !यह प्रतीत हो गया कि महाराजा्विनी कुमार ब्रह्म विद्या कोक पान कर रहे हैं। कहा जाता है कि इन्द्र ने अपने आसन से जाकर के महात्मा दधीचि के कण्ठ से ऊपर के भाग को पृथक कर दिया और अपने आसन को प्रस्थान किया। अश्विनी कुमारों ने उन के वास्तविक मस्तिष्क को लेकर उनके कण्ठ के ऊपर के भाग में आयोजित कर दिया। देखो, एक 1. कूक नाम की औषधि होती है 2. कागा ऊनी होती है 3. त्रिगाढ़ होती है 5 रेशिमन होती है और 4. कांचन नामक औषधि होती है। 6. सौममनि होती है। इन छह औषधियों का पोत बनाया जाता है, तपाया जाता है और पात बनाकर मानव का मस्तिष्क इस प्रकार पृथक हे जाए तोउसके कण्ठ में उसी प्रकार ज्यों का त्यों बना करके उन औषधियों का लेपन कर देना चाहिए एक ही दिवस में वह लेपन हो जाने के पश्चात वह सुरक्षित हो जाता है। मैंने बेटा उन औषधियों ! का निर्णय किसी काल में किया भी है। परन्तु मुझे समय इतना आज्ञा नहीं दे रहा है कि मैं इन औषधियों का नाम उच्चारण करता रहूँ। केवल वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हमें आज इन औषधियों के प्रति कितनी दृढ़ लग्नता धारण करनी है। महात्मा दधीचि ज्यों के त्यों बन गए। अब ब्रह्म का उपदेश प्रवाह से प्रारम्भ होने लगा। जब महाराजा इन्द्र को यह प्रतीत हो गया कि अश्वनी कुमारों ने महात्मा दधीचि को ज्यों का त्यों कर दिया। वह तो अश्व का सिर था तो महात्मा इन्द्र मानो बड़ा पश्चातापी बना। और इन्द्र ने कहा कि अब मैं क्या करूं? मानो अब मैं यह नहीं कर सकता कि दधीचि को पुनः से नष्ट कर सकूं। मेरे प्यारे वाक्य उच्चारण करने !ऋषिवर ! का अभिप्राय यह है कि हमारे यहाँ परम्परा से ही आयुर्वेद आचार्यों ने नाना प्रकार की विद्या को मन्थन किया है। कि चार विनिमय किया है। इसको विचार विनिमय करने

से मानव सदा उज्ज्वल बन सकता है। सिद्धांतों का ज्ञाता बन सकता है, अपनी मानव परम्परा को महत्ता में परिणाम करता हुआ, इस संसार सागरसे पार हो जाता है। जिस प्रकार सूर्य की किरणों प्रवाह से तपा देती हैं, इसी प्रकार महात्मा दधीचि का सुन्दर उपदेश भव्य उपदेश उन की प्रतिभा में सदैव रमण करता रहता था। तो मेरे ऋषिवर ! आज का हमारा यह वाक्य क्या कह रहा है? मैं कोई उपदेश देने नहीं आया हूँ, आज मैं केवल यह विचार देने आया हूँ कि हमारे यहाँ से विद्याएं किस प्रकार सुरक्षित रहती हैं। आज इनका कितना विचार है। मानव को इस जगत में विचार तथा अनुभव करना है।

यह जो प्रभु ने जगत् रचा है यह प्रभु का भव्य भवन है, विचारक भवन है, इसमें प्राणी विचार करने के लिए आते हैं। यह आज का हमारा वाक्य ही तो कर रहा है कि आज हमें नाना प्रकार की विद्याओंको पान करने वाले बनें और उन विद्याओं को पान करते हुए हम अपने जीवन की प्रसारण शक्ति को जानने वाले बनें। मेरे प्यारे वेद !ऋषिवर ! की पवित्र विद्या में क्या नहीं है? परन्तु इस का मन्थन नहीं किया जाता। विचार विनिमय सूक्ष्म होने के नाते ही उस विद्या पर आरोप भी किया जाता है। आज मैं इन वाक्यों को अधिक विलम्ब नहीं देना चाहता हूँ। मैं इस वाक्य को गम्भीर बनाने नही आया हूँ। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय केवल यह है कि आज हम त्यागी और तपस्वी तथा दृढ़ संकल्पवादी महात्मा दधीचिकी भांति बनें और ऐसे आयुर्वेद के पण्डित बनें जैसे अश्विनी कुमार, जिन्हांने ब्रह्म का उपदेश श्रवण के मुख से पाया। नाना प्रकार की औषधियों का नाम उच्चारण करना मेरे लिए इस समय शोभा नहीं देता।

वाक्य केवल उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि यह परम्परा की विद्या है। मेरे प्यार महानन्द जी से मुझे एक समय वर्णन कराया कि आज का विज्ञान यह कह रहा है कि यह आयुर्वेद का विज्ञान हमने कितना जाना है। मानो यह परम्परा को विद्या आयुर्वेद में नहीं है परन्तु आधुनिक विद्या किसी दूसरे राष्ट्र से प्राप्त हुई है। विद्या आयुर्वेद से पृथक नहीं हो सकती रहा यह वाक्य कि तुमने जगत् में अब इसे जाना है, परन्तु अब यह भी नही हो सकता। यदि नहीं जाना गया तो अब कैसे जाना? परन्तु देखो, अब है और

तब भी ऐसी ही परम्परा थी। क्योंकि विज्ञान सदैव मानव के मस्तिक में विचरण करता रहता है। विज्ञान मानव का जन्म सिद्ध अधिकार होता है। बालक जन्म लेता है विज्ञान उसका श्रेय बन जाता है। इसी प्रकार मानव जब भी संसार में आता है, विज्ञान की प्रतिभा लेकर के आता है।

तो यह है बेटाआज का हमारा वाक्य !, अब मुझे समय मिलेगा तो मैं शेष विचार कल प्रकट करूंगा। आज का वाक् अब यहाँ समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक्यों का हमारा अभिप्राय यह कि हम इस भव्य भवन में आए हैं। प्रभु की सृष्टि में आए हैं, हमें यहाँ ऊँची ऊँची कल्पना ऊँचे ऊँचे विचारों को लेना है। हमें यहाँ अनुसन्धान करना है। हमें दूसरों के प्रति घृणा नहीं करनी है। हमें दूसरों की त्रुटियों की दृष्टि नहीं करना है हम यदि स्वयं त्रुटि ग्रहण करने लगें तो त्रुटिवादी बन जाएँगे और हम दूसरों की : निन्दा करने लगेंगे दृष्टिपात किए बिना मिथ्य उच्चारण करने लगेंगे बिना विचारे भी मानव पाप का पात्र बन जाता है और अपने सुकृत को नष्ट कर देता है इसी प्रकार हमें विचारक बनना है। हमें शोधक बनना है। पवित्र बनना है। बेटा यह आज का ! हमारा वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है। कल समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट कर सकूंगा कि आयुर्वेद का विज्ञान कितना भव्य होता है। अब वेद का पाठ होगा इस के पश्चात् वाक्य समाप्त हो जाएगा।

२ 31 01 1970 पुष्प 19

मेरे प्यारेदेव आनन्दमयः !, करूणामय, आनन्दवर्धक, आनन्द विपाकय देवोभ्य नमः

मेरे प्यारेऋ !षिमण्डल आज हम इस महान अत्युतम ऋतमयी उस महामना आत्मा का विवरण हमारे सम्मुख आता चला जा रहा था जिस आत्मा के लिए प्रायः मानव परम्परा से ही सदैव उत्सुक रहता है। और उसकी मनोकामना रहती है कि मैं उस आत्मतत्व को जानना चाहता हूँ जिसको आत्मतत्व को जानने के पश्चात मानव को कोई कार्य शेष कर्म नही रहता क्योंकि आत्मा का जो चिन्तन आत्मा की जो प्रतिभा हैं वह एक ऐसी आनन्दमयी प्रकाशमयी है जिसका विवरण परम्परा से ही वेदज्ञ आचार्यों ने बड़े सुन्दर रूपों से वर्णन किया है महाराज प्रजापति आदि और इन्द्र इत्यादियों ने जिसकी बड़ेसुन्दर

रूपों से विवेचना की हैं। परन्तु आज मैं उस अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाता हुआ अपने उस आत्मा का वर्णन करने जाऊंगा जिस आत्मा के लिए परम्परा से अध्ययन किया गया हैं क्योंकि आत्मा का अध्ययन करना मानव का परम कर्तव्य हो जाता हैं जो मानव प्रभु के राष्ट्र में प्रभु के इस रचाए हुआ जगत में आत्मा का चिन्तन नही करता आत्मवेत्ता नही बनता आत्मा इस प्रकार को स्वीकार नही करता वह मानव संसार में जीवन का अधिकारी नही रह पाता क्योंकि जीवन का अधिकारी वही होता हैं जो अपने ऋणों से उऋण होता रहता हैं।

हमारे यहाँ भिन्न भिन्न प्रकार के ऋणों की चर्चा आती रहती हैं आज मैं उन ऋणों की चर्चा में जाना नही चाहता हूँ केवल अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते हम अपना अध्ययन प्रारम्भ कर देते हैं प्रायः सभी मानवों का यह कर्तव्य हो जाता हैं प्रातःकाल की अमृतमयी बेला में जागरूक हो जाने के पश्चात प्रभु का चिन्तन करना उसकी महिमा का विचारना मानव का एक महान कर्तव्य हो जाता हैं आज कोई मानव यह कह रहा है कि मैं किसी प्राणी के लिए यह कार्य कर रहा हूँ या चेतना के लिए या ईश्वर तत्त्व के लिए परन्तु यह नही माना जाता संसार में जो भी कर्म करता हैं वह मानो स्वयं अपने ही लिए करता हैं अपनेपन में उसे प्रसिद्धि प्राप्त होती हैं अपनेपन में ही उसे नाना प्रकार के उसका आत्म हृदय उसको धिक्कारने लगता है परन्तु जिसका अन्तरात्मा धिक्काराता हैं उस मानव को ही संसार में जीने का अधिकार प्राप्त नही होना चाहिए क्योंकि जीवन उन प्राणियों को सदैव प्राप्त होना चाहिए जिनको अपनी आत्मा पर अटूट श्रद्धा होती हैं विश्वास होता हैं जिसकी अपनी आत्मा पर स्वयं की प्रवृत्तियों पर विश्वास और श्रद्धा नही होती उस मानव का अन्तरात्मा उसका धिक्कारता रहता हैं परन्तु वह सदैव अपनी प्रकृति के आवशों के आकर के अपनी प्रतिभा को ऐऐ समाप्त कर देता हैं जैसे सांयकाल के सूर्य की किरणों अस्त हो जाती हैं मानव का संसार में एक ही कर्तव्य रहता हैं कि दुर्गुणों को त्यागना और शुभ कर्मों की अपनाना यह मानव का विचित्र कर्तव्य होता हैं जिसके ऊपर मानव को अध्ययन करना है।

मानव को यथार्थ वाक्य उच्चारण करने का अधिकार होना चाहिए परन्तु उसको यथार्थ

वाक्य उच्चारण करने का अधिकार उस काल में प्राप्त होता हैं जब उसे स्वयं अपनी आत्मा पर विश्वास हो जाता हैं जब तक उसे अपनी प्रवृत्तियों पर आत्मा पर विश्वास नही होता उस मानव को इस संसार में अपनी उन प्रवृत्तियों पर यथार्थ उच्चारण में नही जाना चाहिए क्योंकि वह वाक्य वायुमण्डल और दूसरें मानव के हृदय को प्रभावित नही कर पाता वह उसमें एक अशुद्ध क्रान्ति ला सकता हैं परन्तु जो मानो शुद्ध हृदय से यथार्थ वाक्य उच्चारण करता है और उन वाक्यों में मानो कोई त्रुटिमय शब्द है उसको अधिकार होता हैं परन्तु अधिकार उसी को प्राप्त होता हैं उस अधिकार की पवित्रता में जब मानव अपना विचार अपने उस प्रभु के आँगन में देता हैं जो उस मानव की एक महान विचित्र धारा बनती जाती हैं।

एक समय प्रातःकाल की पवित्र बेला में मेरी पुत्री के साथ विचार विनिमय करते हुए एक प्रश्न यह आया कि हे भगवन अवस्था जागरूक में आत्मा का स्वरूप क्या हैं स्वप्न ! में आत्म का स्वरूप क्या रहता हैं और सुषुप्ति अवस्था में क्या रहता हैं इसके लिए मैंने कहा कि पुत्रवत यह जो तुमने जाना ही कि नेत्रों में आत्मा की प्रतिभा आती हैं क्योंकि तो नेत्रों से मानव दृष्टिपात करता रहता हैं मानव के नेत्र सूर्य की किरण में भी प्रकाश के अधिकारी नही होते क्यों नही होते उसका मैंने कूल कारण बतलाया कि मृत्यु में नेत्र भी होते हैं सूर्य भी होता है। परन्तु वह दृष्टिपात नही कर पाते इस बात से यह सिद्ध होता हैं कि आत्मा जो उसका जागरूक में नेत्रों का स्वरूप बन जाता हैं नेत्रों का कार्य बन जाता हैं नेत्रों में उसकी प्रतिभा चमक आने लगती हैं परन्तु नेत्रों में जब प्रतिभा आ जाती है तो वह मानव आत्मा का दिग्दर्शन करना चाहता तो सूर्य की किरणों से अपना दिग्दर्शन करता है उससे नेत्रों की ज्योति में दोनो ज्योति का प्रादुर्भाव हो करके ज्योतिर्मान प्रायः हो जाता हैं।

वास्तव में द्वितीय प्रश्न यह था कि स्वप्न में इस आत्मा का स्वरूप क्या रहता हैं स्वप्न में आत्मा का जो स्वरूप है वह मन के क्षेत्र में होता हैं क्योंकि मन एक प्रकृति का तत्त्व माना जाता हैं विभाजनवाद करने वाले के नाते स्वप्न में नाना प्रकार के चित्र इसके समीप आते हैं क्योंकि मन का सम्बन्ध उस समय चित्त से होता हैं मन और बुद्धि, चित्त

और अहंकार के क्षेत्रों में मन विचरने वाला होता हैं और जो चित्त में जन्म जन्मान्तरों के संस्कार है या पहिले दिवस के संस्कार है बाल्यकाल के संस्कार है मन उनको लाता रहता है आत्मा के समीप आत्मा के दर्पण में आत्मा के प्रकाश में मानो यह आत्मा स्वप्नवत को प्राप्त होता रहता हैं जो यह आत्मा का स्वरूप माना गया हैं स्वप्न में यह मन के क्षेत्र में माना रहता हैं जो यह आत्मा का स्वरूप माना गया है। स्वप्न में ग्रह मन के क्षेत्र में माना गया हैं क्योंकि मन के ऊपर ही दूसरा प्रतिबिम्ब आता रहता हैं प्रतिबिम्ब आने के नाते ही उसकी प्रतिभा एक विचित्रतव को प्राप्त होने लगती हैं तो इसी लिए आत्मा का जो स्वरूप है वह मन के क्षेत्र में रहता हैं मन प्रकृति से बना हुआ हैं चित्त का इससे सम्बनध रहता है और बुद्धि से भी रहता हैं और जो सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियां का विषय है उसमें यह ओत प्रोत हो कर के कहीं कहीं यह अपने नाना प्रकार की विषय वासनाओं में लग जाता हैं कहीं कहीं मग्न हो जाता हैं मग्नता में प्राप्त हो रहा है तो कही निर्धनता से ऊपर उठकर अधिराज बन जाता हैं कहीं अधिराज है तो कहीं निर्धन बन जाता है तो इस प्रकार की जो प्रकृति है यह मन के क्षेत्र में होती हैं इसीलिए मैंने अपनी पुत्री को उत्तर देते हुए कहा कि यह आत्मा का स्वरूप है यह स्वप्नवत में ही मन के दर्पण में रहता हैं मन के ही आश्रित रहता है। मन का ही प्रकृति का क्षेत्र कहलाया गया है।

सुषुप्ति अवस्था में जो आत्मा का स्वरूप है यह प्राण के साथ रहता हैं क्योंकि प्राण बिना आत्मा संसार मे यहां शरीर में कार्य नही कर पाता है जैसे संसार बाह्य क्षेत्र में बाह्य जगत में तत्त्वों में ब्रह्म में ही इसकी प्रतिभा होती है और ब्रह्म के आश्रित प्राण लोक लोकान्तरों की क्रियाशील बनाता हैं इसी प्रकार हमारे इस मानव शरीर में सुषुप्ति अवस्था में सुषुप्ति ज्ञान में यह आत्मा प्राण के साथ लवलीन हो जाता हैं इसीलिए कहा जाता है कि एकोऽपि विचरणाता जागो रूपं ब्रह्मे मानो देखे जागने वाला संसार में आत्मा हैं प्राण है क्योंकि प्राण जागता रहता हैं और सब सुषुप्ति अवस्था में परणित हो जाते हैं क्योंकि प्राण शक्ति का जो केन्द्र है परमाणुवाद का जो केन्द्र हैं वह एक मनवत कहलाया गया हैं इसीलिए मैंने अपनी बालिका से कहा हे पुत्री यह मैंने तुम्हारे प्रश्नों

का संक्षिप्त परिचय दिया हैं।

आत्मा का स्वरूप

उस समय मेरी बालिका ने कहा प्रभु इससे आगे इस आत्मा के स्वरूप का क्या ! बनता हैं इसका आप मुझे और निर्णय कराईए तब मैंने कहा कि जब ये प्राण भी साथ मे नही होता मानो प्राण से आगे आत्मा का क्या होता है तो आत्मा का स्वरूप एक चेतना होती हैं चेतना में कारण ही मानव का शरीर जीवित रहता है चेतनावत रहता हैं।

मेरे प्यारेआत्मा की जो विवेचना है आत्मा का जो ज्ञान है वह इस प् !ऋषिवर !रतिभा में रमण करता रहता है मेरी पुत्री का हृदय गदगद हो गया और उसने कहा कि प्रभु यह जो मृगराज हमारे आसन पर आ जाते हैं क्या इनको भी स्वप्न आता है क्या ये भी जागरूकता में रहते हैं हे पुत्रवत यदि जागना है सुषुप्ति और स्वप्न है यह सभी प्राणी मात्र की योनि के साथ में लगा हुआ है क्योंकि चित्त के संस्कारों में प्रतिभा कृत होती रहती हैं उस सयम मेरी बालिका ने जो बहुत ही सूक्ष्म विषय को कहा था

भगवन आप चित्त का क्या स्वरूप स्वीकार करते हैं इसका कोई स्वरूप है अथवा ! नही तो मैंने कहा कि हां चित्त का स्वरूप है कैसा स्वरूप हैं हे पुत्री यह आत्मा ! से कुछ ही प्रबल स्थूल है क्योंकि उसमें संस्कार होने के नाते इसीलिए जो चिंटी मार्ग में उसे भ्रमण करती हैं चिंटी के द्वारा भी अन्तःकरण होता हैं अन्तःकरण इतना सूक्ष्म होता हैं कि वह आत्मा की प्रतिभा के साथ रहता है जैसे मैंने तुम्हें आत्मा के स्वरूप का वर्णन कराया था कि जैसे बाल के अग्र भाग लिया जाएं गोल भाग हैं उसके साठ भाग किए जाते हैं और वह जो साठवां भाग हैं उसके भाग किए जाते हैं और वह 99 भाग किए जाते हैं इतना सूक्ष्म हमारे यहाँ इस मानव 99 जो साठवां भाग है उसके शरीर में चित्त की प्रतिभा मानी जाती हैं जिसमें जन्म जन्मान्तरों के संस्कार विराजामन होते हैं यही तो प्रभुकी विचित्रता है इसी को तो विचारना हैं !

आत्मा का स्वरूप ऐसा है जैसे वह जो साठवें भाग के जो भाग किए जाते हैं 99

वे भाग के पुनः साठ भाग किए जाएं इतना सूक्ष्म शरीर में आत 99 औरात्मा रहता हैं परन्तु दोनों की प्रतिभा मैंने तुम्हें यह गणना किसी काल में अशुद्ध रूप में वर्णन करा दी थी आज मुझे शुद्ध रूपों में वर्णन आ गई हैं।

जब यह वाक्या समीप आया तो उन्होंने कहा प्रभु इस वाक्य को मैं कैसे जानूं यह ! जो मुझे प्रत्यक्ष निर्णय कराईए मैं इसको अन्तर्द्वन्द्व में दृष्टिपात करना नही चाहती। जब मैंने एक वाक्य कहा था कि हे पुत्री यह विषय तो ऐसा है जिसको अनुभव किया जा सकता है उन्होंने कहा तो इसका मुझे अनुभव कराईए अन्यथा मैं इसको स्वीकार नही कर पाऊंगी।

जब अनुभव का विषय आने लगा तो मैंने कहा पुत्र इसका अनुभव करो शाब्दिक अनुभव मत करो शाब्दिक अनुभव से तो मैं उच्चारण कर रहा हूँ इसका आन्तरिक अनुभव किया जाएं जब यह वाक्य आया कि यह कैसे हो सकता है मैं इस तत्त्व को कैसे अनुभव कर सकती हूँ तब मैंने कहा कि जैसा भी तुम्हारा अनुग्रहित हो उन्होंने कहा कि प्रभु जब तक गुरु का अनुभव कृपा नही हो जाती तब तक इन सूक्ष्म रहस्यों को मैं नही जा पाऊंगी। क्योंकि मेरा तो सदैव यही एक विषय रहा है मेरी यही विषय की धारा रही है मैं उन विषयों में पारंगत भी होना चाहती हूँ उनका अनुभव भी चाहती हूँ तो इसीलिए अनुपम कृपा आप ही कि होनी चाहिए तब मैंने कहा कि पुत्री इस वाक्य के लिए तुम करो लगभग छह माह तक अन्न का त्यागना होगा जल की प्रतिभा को जानना होगा जल की प्रतिभा को जानते हुए कुछ मैं एक औषध जानता था उस औषध का मैंने स्वयं पान करया मार्ग से लाता और सोम रस बनाता और बनाने के पश्चात उस सोम रस को स्वतः अपने भुजों से उसे कण्ठ के धारण कराता और यह कहा कि हे पुत्र कथं मनों वाचाः अनुसन्धं में गिरि तानि रूद्राः क्योंकि उसका जब औषध बनाया ! जाएं मानो एक तो मन्त्र पाठ करता था और वह मन्त्र था तनु गति भिरागक्षननधने वसु वनस्पति नरके गतं मानः वचिते कृत्याः ततु वन नमन्ति आत्माः विपरोचरन्ति अन्तम् ब्रह्माः मुनिवरोंदेखो !, मैं सदैव इस वाक्य और इस मन्त्र के साथ औषध बना करके अपनी पुत्री को पान कराता रहता था तीन माह में ज्योति प्रकट होने लगी उस ज्योति

का स्वरूप भी स्मरण आने लगा परिणाम यह हुआ कि जब यह अनुभव हो गया कि वास्तव में आत्मा इतना सूक्ष्म है और अन्तःकरण इतना सूक्ष्म है तो मैंने छह माह के पश्चात पुनः प्रश्न किया कि पुत्री बोलो क्या रहा क्या तुम्हें इसका कुछ अनुभव हुआ उन्होंने कहा कि हे भगवन इस वाक्य को उच्चारण करने में असमर्थ हूँ क्योंकि यह ! वाक्य उच्चारण करने मेरे लिए कोई शोभा का वाक्य नही मैं शोभा क्या उस प्रकाश की आनन्द स्वरूप का क्या वर्णन कर सकती हूँ क्योंकि मेरी वाणी में इनती शक्ति नही है जो मैं इसका वर्णन कर सकूं परन्तु यह वाक्य मेरे लिए भी सरल नही था क्यों वास्तव में प्रायः सभी ब्रह्मवेत्ताओं के सम्बन्ध में ऐसा कहा जाता है कि अन्त में नेति नेति का प्रायः प्रतिपादन कर ही देते है। क्योंकि नेति शब्द उच्चारण हो ही जाता है उसी को हमारा अन्तःकरण का अनुभव कहा जाता हैं मानो देखो, इसके ऊपर हमें सदैव बहुत विचार विनिमय करने की आवश्यकता रही हैं आज जब मैं हय विचार विनिमय करता हूँ कि मेरा जीवन कैसा हैं जीवन की प्रतिभा क्या है तो इसके ऊपर मुझे सदैव जानना हैं।

वह औषध जिसका मैं सोम रस बनाता था वह जो अनुभव किया जाता हैं वह चन्द्रमा की पूर्ण रात्रि को अनुभव का एक अनुष्ठान कहते हैं हमारे यहाँ अनुष्ठान की पद्धति बहुत ही प्राचीन परम्परा से हैं अनुष्ठान का अभिप्राय यह है कि अनूठे ज्ञान को प्राप्त कर सकें अनुष्ठान का अभिप्रायः यह नही है इसको रूढ़ि नही कहते परन्तु अनुष्ठान वह व्यक्ति कर सकता है जिसको उस अनुष्ठान का ज्ञान होता हैं और उस अनुष्ठान के प्रति उसे विवेक होता हैं वही अनुष्ठान का अधिकारी होता हैं अनुष्ठान का अभिप्रायः यह है कि जिसको अनूठा ज्ञान प्राप्त हो अनूठे ज्ञान पर नही पंहुचना चाहता हो उसको अनुष्ठान करने का अधिकार नही होता अनुष्ठान का अभिप्राय यह है कि मनु कहते है जो अणु अणु कहते है अणुं ग्रहणं अनुष्ठान अणु को जानने की जिसकी प्रतिष्ठा होने लगती हैं क्योंकि प्रतिभा हमें वही कह रही हैं कि जो अणु है मानो अणु और विभु के जानने के लिए अनुष्ठान करता है संसार में एक सर्वोपरि अनुष्ठान हमारे जीवन में प्रायः आता रहता हैं इसको सदैव हमें जानना है जाते हुए हम अपनी प्रतिभा में इतने तत्पर हो

जाते हैं कि प्रतिभा को हम जानते हुए हमारे ज्ञान मे एक अनुपमता प्राप्त होने लगती हैं।

मेरी बालिका ने यह कहा कि प्रभु आपने मुझे कौन सा औषध पान कराया इसका मुझे ज्ञान कराईए मैं उसे भयंकर वनों में ले गया और नाना औषधियों का वर्णन कराया कि हे पुत्रोंवह ब् !रह्मकाश्चनी नाम की औषध हैं मानो यह अन्तःकृति नाम की औषध हैं दोनो का पान कराने से ही दोनो का विवेक उस मानव के अन्तःकरण में हो जाता हैं औषधियों का और सोमरस उसी को कहते हैं जिससे मानव की जो प्रकृति है उसका रूपान्तर हो जाएं सोम रसों में यह एक विशेषता होती है उसका जो प्राकृतिक विचा है उसका रूपान्तर हो जाता हैं इसी से तो ब्रह्मवेत्ता बनने का अधिकार उसे होता हैं मानो हम सात्विक कामनाओं में परिणत हो जाते हैं और हमारा अन्तरात्मा दुष्ट कामनाओं को धिक्काराता हैं परन्तु जिन कारणों से धिक्कारता हैं जिस कारण के लिए धिक्कारता हैं उस कारण को जानना उसके जीवन का रूपान्त की देना हैं जो इसीलिए जीवन की जो प्रतिभा है उसको जानना हामरे लिए अनिवार्य है उसका ब्रह्मचर्य की गति ऊर्ध्व हो जाती हैं जहाँ ब्रह्मचर्य की गति ऊर्ध्व हुई और ब्रह्म में मानव की प्रवृत्ति हुई तो ब्रह्म की प्रतिभा उसे स्वयं प्रकट होने लगती हैं।

तो मेरी बालिका हर्षध्वनि करने लगी हे प्रभु अब मैं यह जानना चाहती हूँ कि मैं ! अपने किसी भी जीवन में इन औषधियों को अशान्त दृष्टिपात करना नही चाहती तब मैंने अपने वाक्यं ब्रह्म विचारागृते अन्तं ब्रह्मा व्यापनोति कर्मणां हे पुत्रवत ऐसा तो नही ! होगा क्योंकि यह वाक्य तो ऐसा है अन्तःकरण में दर्पण में आ सकता है क्योंकि संसार में यह प्रायः है सार्वभौम सिद्धान्त है कि जो भी मानव प्रकृति में दृष्टिपात कर रहा हैं जो वस्तु वही मानो उसके शरीर में होती हैं मस्तिष्क में उसके सम्बन्धी नाड़ी होत ी हैं विचारधारा हाती है उसी विचारधारा से उस मानव के मस्तिष्क का निर्माण होता रहता हैं जब मैंने ऐसा निर्णय कराया कि मानो यह वाक्य बड़ा ही मार्मिक था मैं इन वाक्यों को मार्मिक इसीलिए स्वीकार किया करता हूँ क्योंकि उनमें ब्रह्म किरो और अन्तःकरणी नाम की दोनो औषधियों का सोम रस किस प्रकार बनाया जाता हैं इन दोनों को बराबर

लिया जाता हैं क्रीकट में अणुवाक में दोनों का इसी प्रकार बराबर लेने के पश्चात इसको पूर्ण रात्रि में उसका सोमरस बनाया जाता हैं उसको खरल किया जाता हैं उसको खरल करते हुए और मन्त्रों का पठन पाठन होता है उसके साथ ही शुद्ध हृदय से जब मन्त्रों का पठन पाठन होता हैं तो उसकी प्रतिभा जैसे गायत्राणी होती हैं गायत्री भी कई प्रकार की होती हैं जैसे गायन के रूप में गाई जाती हैं मानो देखो, इसका पठन पाठन करते हुए शुद्ध हृदय से जागरूक रह करके उसको जल में खरल किया जाता हैं गो दुग्ध की प्रतिभा इसमें होती हैं दोनो की प्रतिभा होने के नाते इसको खरल बनाने से इसको तीन दिवस तक पान कराया जाता हैं इसके पश्चात इसको नित्य प्रति लाया जाएं जब रात्रि का शेष भाग समाप्त हो जाएं रात्रि के तीसरे भाग में सतोयुग की प्रभाव आ जाता हैं शुद्ध इसका पुनः से सोमरस बना करके और जहाँ सूर्य की किरणों उदय हुई और तो उस सोम रस का पान करा देना चाहिए चन्द्रमा और सूर्यसे मानव की नस नाड़ियों का सम्बन्ध रहता हैं इसीलिए ब्रह्मा गता दोनो की एक गति हो करके दोनो का स्वरूप एक होने के नाते वह ब्रह्म कृति और अन्तःकरणी दोनो को जानने में वह सदैव तत्पर होते हैं मैने आयुर्वेद औषधियों के ऊपर बहुत कुछ अध्ययन किया परन्तु आज तो इसका उत्तर देना मेरे लिए कठिन हो जाता हैं क्योंकि हमारे यहाँ परम्परा से ही प्रायः ऋषि इन वाक्यों को जानते थे जैसा महानन्द जी ने वर्णन करया कि आज का संसार को बहुत कलिष्टता के मार्ग पर है परम्परा से ही आयुर्वेद हमारे ऋषियों का गान रहा हैं क्योंकि प्राण होने के नाते उसकी प्रतिभा एक विचित्रवाद में रमण करतीरही हैं जिसका जानना हमारा एक कर्तव्य कहा गया हैं उसी काल में यह संसार सतोयुग में रमण करता था।

मैने एक वाक्य पूर्व काल में प्रकट किया था कि जब हमारे यहाँ गृह आश्रम का अधिकारी मानो ब्रह्मचारी बनता था तो मेरी बालिका ने एक वाक्य कहा कि हे भगवन ! मैं ब्रह्मवेत्ता बन गई हूँ परन्तु मैं यह जानना चाहती हूँ कि यदि मुझे गृह आश्रम में प्रविष्ठ हाने का किसी काल में भी ऐसा समय प्राप्त हो जाएं तो मैं कौन कौन सी औषधियों को पान करके सन्तान को जन्म देने की अधिकारी होती हूँ जब मैंने कहा हे

पुत्री इन वाक्यों को तुम क्यो जानना चाहती हो उन्होंने कहा प्रभु मेरा जीवन प्रत्येक ! वस्तु को जानने के लिए उत्सुक रहता हैं क्योंकि जानना हीतो मानव का जीवन है आपने एक वाक्य कहा था कि जब महाराज सनत् कुमार और नारद दोनों के शब्दों में आप्तता है जब दोनो का सम्वाद होने लगा तो सनतकुमार ने यह कहा कि हे नारद ! यह जो संसार में जानकारी है यह सर्वप्रथम ब्रह्मवेत्ता का लक्षण होता हैं इसीलिए मैं प्रत् !भगवनयेक विज्ञान को जानना चाहती हूँ जिससे मानव को अनुसन्धान करने का अवसर प्राप्त हो जाएं उस सयम मैंने कहा कि हे पुत्री एक रजन्न नाम की औषधि होती हैं किरन नाक की औषध को गो के घृत में और दुग्ध दोनों में मानो उसको अग्नि में तपाया जाता हैं उसकी चालीस दिवस तक पति पत्नी दोनों को पान करना चाहिए। काजंघादि उसमें प्रविष्ठ हो जाती हैं और त्रीपाठ नाम की औषध भी मानो देखो, जैसे तरू नाम का कृतिक नाम का जो वृक्ष होता है उसके पुष्प हो उसकी पती हो उसकी चमड़ी हो उसका मांस हो और उसकी किर किरती हो मानो देखो, उसका पराग हों तो मानो देखो, उसको अग्नि मे तपाने से उसको चालीस दिवस तक मानो इसको एक सोम प्रतिक रस कहते हैं इनका पान कराने से ब्रह्मचर्य की गति इतनी तामस नही रह पाती उसमें एक राजस और सतोगुण का मिश्रण हो जाता है चालीस दिवस के पान करने पर अस्सी दिवस के पान करने पर उसमें सतोगुण की प्रतिभा आज जाती है और सतोगुण की प्रतिभा आने के पश्चात षोडश रात्रि में जब भोग किया जाता है त्यगात किया जाता हैं अनुरूत किया जाता हैं तो हे पुत्री उस समय ऐसा तो नही हो सकता ! कि गर्भ की स्थापना न हो क्योंकि वह कार्य मानो शोभनीय होता है दोनों का शुक्र जब अनुरूत हो जाता है मानो गर्भाशय में चला जाता हैं तो गर्भाशय में जो मैंने 99 प्रकार की ग्रन्थियां होती है। सबसे प्रथम 399 प्रकार की ग्रन्थियों का वर्णन कराया था जो ग्रन्थि होती हैं उसका अग्र भाग और वह जो अन्तिम ग्रन्थि होती हैं उसे स्वगनी ग्रन्थि कहते हैं उसमे उन दोनों का शुक्र मिश्रण हो जाता हैं उस काल देखो, कणाद और गौतम जैसे बालक को तुम पुत्री जन्म दे सकती हो।

जब मेरे समीप यह वाक्य आया कि ऋषि मुनियों को कैसे जन्म दिया जाता हैं तो यह

एक परम्परा का विज्ञान है जिसमें सतोगुण की प्रतिभा आती हैं मेरी बालिका ने एक प्रश्न ऐसा किया कि जिसको मैं जानता भी नही था उन्होंने कहा प्रभु मैंने ऐसा श्रवण ! किया है कि बिना तामस आए मानो एक दूसरे के शुक्र को एक दूसरे के प्रविष्ठ नही कर पाता इस पर तो मेरा अनुसन्धान था ही नही तब मैंने कहा पुत्री इसके लिए तो समय दिया जा सकता हैं क्योंकि तुम ऐसा वाक्य जानना चाहती हो जिसे मैं नही जानता हूँ परन्तु इसका मैं अनुभव करूंगा एक कुश नाम की औषधि होती हैं उसमें एक जनदत नाम की स्थान होता है तो प्रायः पर्वतों में प्राप्त होता हैं इसको ला करके उसको मैंने छह माह तक सोम पान किया जिस औषध के पान कराने से ऋषि को गृह आश्रम का और प्रत्येक नस नाड़ियों का ज्ञान और विवेक हो जाता हैं उसे छह मास तक पान करने के पश्चात मैं अब आसन पर प्रविष्ट हो गया तो पुत्री ने मग्न हो करके कहा कि अब आपको अनुभव हो गया हैं तुम प्रश्न करो मैं उसका पुनः उत्तर दूंगा बालिका ने कहा प्रभुमैंने ! आपसे प्रश्न किया था कि मानव बिना तमोगुण के एक दूसरे के सुकरत को नही कर पा सकता तब मैंने कहा था कि हे पुत्री तमोगुण में कहीं ! कहीं सतोगुण की प्रतिष्ठा होती हैं और जब तमोगुण में केवल तमोगुण होता हैं तो एक तो मानव को यह विचार करने की आवश्यकता रहती है कि एक तो तमोगुण ऐसा होता जो आगे भविष्य के लिए उच्चारण कर रहा हूँ जो भविष्य वाला आगे चल करके मानो देखो, तो उसको आशान्ती वेदी के नाना प्रकार के अशुद्ध नामों का उच्चारण करना यह मानव को शोभनीय नही हैं क्योंकि यह मानव की वाणी की अशुद्ध बना देता हैं मानव के शुक्र में भी अशुद्धता आ जाती हैं उससे शुक्र में भी दूषितपन आ जाता हैं तो एक वाक्य तो यह है कि पुनः यह वाक्य कि तमोगुण की जो प्रतिष्ठा है वह ब्रह्मा का चिन्तन अनिवार्य होता हैं इसमें प्रवृत्ति और विचार बनाया जाता हैं सबसे प्रथम तो मानव को अपने विचार बनाने हैं विचार बनाने के पूर्व एक दूसरे में प्रसन्नता लाने की भी आवश्यकता है जो वह जो प्रसन्नता है वह केवल हम अशुद्ध वाणी से ही नही ला सकते मानो उसमें तमोगुण तो होता हैं क्योंकि तमोगुण का लक्षण संसार में उत्पति तो होता हैं परन्तु उससे पूर्व और पश्चात दोनों की प्रवृत्ति में सतोगुण की प्रतिभा होना बहुत

अनिवार्य हैं उसमें तमोगुण आता है तमोगुण की प्रतिष्ठा से ब्रह्म का चिन्तन मानो चार घड़ी पूर्व ब्रह्म का चिन्तन हो और उसके पश्चात भी ब्रह्म का चिन्त हो उसके मध्य में अपने विचार अकृत तमोगुणी बनाने चाहिए और बना करके मानो उसे एक दूसरे के शुक्र में प्रतिष्ठा होनी चाहिए उसी प्रतिष्ठा में मानो सतोगुण की प्रतिभा ओत प्रोत हो जाती हैं इसीलिए क्योंकि वह जिन विचारों से वह सोमरस बनाया जाता या जो हमने अस्सी दिवस तक पान कियाहै उस समय का जो तमोगुण होता है वह सोमरस बनाया जाता है या जो तमोगुण होता है वह रजोस्तम एक दूसरे के शुक्र को वह विचारा कदापि भी प्रभावित नही कर पाते यह एक महान वाक्य है जिसको अनुसन्धान किया है क्योंकि जो अपने अस्सी दिवस तक अपने विचारों से सोम को पान कर लिया है तो उससे वीर्य और रजोस्तम दोनों का ऊर्ध्वा गति बन गया है तो उस सयम का जो तमोगुण है उससे वाणी तो अशुद्ध नही करनी चाहिए क्योंकि मानव की वाणी का जो सम्बन्ध है वह अन्तरिक्ष से रहता हैं अन्तरिक्ष का सम्बन्ध माता के उदर से होता हैं और उदर का जो सम्बन्ध है वह प्राण से होता है और प्राण का सम्बन्ध ऋत से होता हैं और ऋत का सम्बन्ध अन्न और जल से होता हैं और अन्न का जल का सम्बन्ध फिर अन्तरिक्ष से होता हैं जिसको महत कहते हैं और महत का सम्बन्ध चन्द्रमा से होता है और चन्द्रमा का सम्बन्ध गन्धर्व लोकों से होता है और गन्धर्व लोकों का सम्बन्ध इन्द्र लोकों से रहता है इन्द्र लोकों का सम्बन्ध प्रजापति से रहता है प्रजापति का सम्बन्ध यज्ञ से रहता हैं और बेटा यह सब यज्ञ है या का सम्बन्ध दक्षिणा में रहता है और दक्षिणा का सम्बन्ध ! श्रद्धा से रहता है और श्रद्धा हृदय से जन्म लेती हैं सारा जगत इसमें ओत प्रोत हो जाता हैं तो इसीलिए जो हृदय में हमने अपने विचारबना लिए हैं उन विचारों को उस समय का तमोगुण उनको कदिप नही व्यापता क्योंकि व्याप्य और व्यापक का बड़ा महान सम्बन्ध होता हैं जिसके ऊपर विचारना हमारे लिए बहुत अनिवार्य है।

आज हम संसार में सतोयुग की घोषणा करते हैं परन्तु घोषणा अनुसन्धान से होती हैं हम कर तो कुछ पाते नही ऐसी दशा में घोषणा करना हमारे लिए अनिष्टकारी हो जाती है तो इसीलिए हमारे जीवन की जो प्रतिभा है वह हमारा जीवन एक ऐसा कृत्य बन

जाता हैं जिसको बहुत ही जानने की आवश्यकता रहती हैं हम संसार में सन्तान को जन्म तो देना चाहते है परन्तु सन्तान को जन्म देने के अधिकारी बहुत ही दिवस के पश्चात बनते हैं।

तब मेरी बालिका ने कहा कि हे भगवन जब आप इतने योग्य है तो क्या आप सन्तान ! को जन्म नही दे सकते मेरा मस्तिष्क आवेश से प्रभावित हो गया और तब मैंने कहा कि तू धूर्त हैं यह प्रश्न तेरे लिए सुयोग्य नही है क्योंकि तू बालिका है वह मग्न हो करके बोली कि हे भगवन क्या आप ऐसे ही वाक्यों से रूष्ट हो गएं है यह तो कोई अनुचित्त ! शब्द नही हैं क्योंकि संसार में सतोगुण को लाने के लिए महापुरूषों की आवश्यकता तू वास्तव में इन वाक्यों को उच्चारण करने योग्य नह !रहती हैं तब मैंने कहा हे पुत्रीी हैं उस समय कहा कि हे प्रभु मैं इसलिए इन वाक्यों को आज उच्चारण कर रही हूँ ! कि इस वाक्य को उच्चारण करने का मुझे आज अधिकार हो गया हैं तब मैंने कहा कि तुम्हें कैसे अधिकार हो सकता हैं उन्होंने कहा कि इसीलिए अधिकार हे कि इसका आपको ज्ञान है और विवेक हैं जब इसका ज्ञान और विवेक हैं तो आप इसको क्यों जन्म नही दे सकते मैंने कहा कि मैं इसीलिए जन्म देने का अधिकारी नही हूँ कि यह तो इन्द्रजाल है इसमें मैं जाना नही चाहता क्योंकि यह एक बड़ा भयंकर जाल हैं और ऐसा है कि इसमे जाने के पश्चात मानव के संस्कार बना करते हैं तो प्रभु आप मुझे ! इस प्रकार की शिक्षा क्यों प्रदान कर रहे हैं मैंने कहा कि पुत्री मैंने यह नही कहा कि तुम इसमे चली जाओ मैं तो केवल एक वाक्य है कि तुम्हे जानकारी करा रहा हूँ कि संसार का कितना ज्ञान है उस समय मेरी बालिका ने एक वाक्य बहुत महत्वपूर्ण कहा म !कि हे भगवनहापुरूष इस जाल से भयभीत हो जाते है तो संसार में जाने का कोई अधिकारी ही नहीं उस समय मेरा मस्तिष्क ऊर्ध्व बन गया और मैंने कहा पुत्रवत ! तुम्हारा वाक्य यथार्थ हैं परन्तु मेरे से तुम्हें यह वाक्य उच्चारण करने का अधिकार नही हैं क्योंकि संसार में एक उपदेशक होता है और एक श्रवण करने योग्य श्रोता होता हैं हे पुत्री संसार में ज्ञानियों की भी तो आवश्यकता रहती है यहाँ तो ऐसे शिष्य आने ! चाहिए और ज्ञान पान कर वहाँ से जाने चाहिए वह अनिवार्य नही कि हम ही उस

परिस्थिति में चले जाएं।

जब यह वाक्य उने समीप आया तो पुत्री ने कहा कि भगवन मेरे प्रश्न की पुष्टि नही ! हुई है तब मैंने कहा इसकी पुष्टि यह है कि जो ब्रह्म में किलोल करता रहता हैं ब्रह्म यह तो ज्ञान !में लीन हो जाता हैं उसके लिए यह सब वाक्य तुच्छ हो जाते हैं तो प्रभु है इसका स्रोत क्या है क्योंकि जितना भी ज्ञान है विज्ञान है इसका स्रोत कौन हैं तब मैंने कहा कि इसका स्रोत अपने विचार हैं विचारों का स्रोत क्या है इसको स्रोत मानव का मस्तिष्क हैं और मस्तिष्क का स्रोत चेतना है और चेतना का मस्तिष्क ब्रह्म है और ब्रह्म का स्रोत यह संसार रूपी जो यज्ञ हो रहा हैं यह ब्रह्म का स्रोत हैं और ब्रह्म में निहित रहता हैं ब्रह्म में यह जगत निहित रहता हैं तब मेरी बालिका ने कहा कि प्रभु जब यह सब आनन्द का स्रोत ब्रह्म हैं तो ब्रह्म में लीन हाने वाजे व्यक्ति को क्या अधिकार है कि वह संसार के इस आनन्द में नही आना चाहता तब मैंने कहा कि हे बालिका जो मानव संसार के उपरान्त हो जाता हैं वह उस तुच्छा आनन्द में नही जाता जिस आनन्द में नाना प्रकार के अशुभ संस्कार और आवागमन की प्रवृत्ति बन जाती हैं यह संस्कसार इसी प्रकार के होते हैं बालिका ने कहा तो भगवन यह उपदेश किसके ! लिए हैं उपदेश तो एक बहुत सहज होता हैं इसकोभोगने वाला कौन है समागच्छम ब्रह्मे कामनोति दुष्टनः तब मैंने कहा कि बालिका संसार में सभी मानव एक ही प्रकृति के नही हो पाते क्योंकि नाना प्रकार की प्रवृत्ति वाजे व्यक्ति होते हैं सब ब्रह्मवेत्ता नही होते न सब गृह आश्रम का अधिकार होता है और कोई तो संसार में गृह आश्रम का अधिकार होता है और कोई कोई ब्रह्मवेत्ता होता हैं और उन ब्रह्मवेत्ताओं मे भी कोई कोई ऐसा होता है जो ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेता है और ब्रह्मपद प्राप्त करने वालों में भी कोई कोई ऐसा होता है जो पुत्री चेतना में चेतनित हो जाता हैं इए वाक्य से बालिका ने कहा कि भगवन इस वाक्य से मेरी सन्तुष्टि हुई परन्तु जिसको वास्तविक सन्तुष्टि ! कहते हैं वह नही हो पाती क्योंकि उसमें मेरे नाना प्रकार की शंकाएं होने लगती हैं तो इसी प्रकार का हमारा जो जीवन है हम उस जीवन में यह प्रतिष्ठा चाहते हैं जिस

प्रतिष्ठा से यह प्रतिष्ठा से यह संसार प्रतिष्ठित हो जाता हैं।
उस समय मैंने कहा कि पुत्री यह सारा संसार मानव की प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित हो रहा हैं जिसको जानने से हमारा जीवन वास्तव में प्रतिभाशाली बन जाता हैं हम उस ब्रह्मनन्द को प्राप्त होने के पश्चात उसमें लीन होना चाहते हैं यही पुत्री हमारे जीवन का सदा लक्ष्य रहा है और रहता है रहेगा न जाने हमारा जीवन क्या है भविष्य को हम पृष्ठ के ऊपर त्यागने को तत्पर हैं
मैं भी अपने वाक्यों को विराम देने ही जा रहा हूँ क्योंकि वाक्यों की जो प्रतिष्ठा है जिसके लिए मैं सदैव अनुसन्धान लग्न रहा हूँ तो नाना प्रकार की विचारधाराओं को जानने के पश्चात हमारा जीवन सदैव उस महान प्रभु के आनन्द में संलग्न होना चाहिए क्योंकि बिना प्यारे प्रभु के संसार में हम कोई कार्य सफलता से नही कर पाते क्योंकि जितनी भी हमारे जीवन की प्रतिभा है उस सबको आनन्द का केन्द्र चेतन ब्रह्म माना गया हैं अब आज का वाक् यह समाप्त होने जा रहा हैं अब वेद पाठ होगा।

३ 17 02 1970 पुष्प 21 यज्ञशाला में चार व्यक्ति प्रमुख

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का जिसमें उस परम पिता परमात्मा की प्रतिभा ओत प्रोत है उसी का प्रसारण होता रहता है, क्योंकि उस परम पिता परमात्मा की प्रतिभा में ही यह सर्व चेतना अपना कार्य करती चली जा रही है। हमारे यहाँ जो चेतना इस जगत में अपना कार्य करतीं चली जा रही है उस चेतना को ही स्वरवत माना गया है। तो मेरे प्यारे जब हम यह !ऋषिवर ! विचार विनिमय करने लगते हैं कि हमारा यह वेदों का पाठ क्या कह रहा है? वेदों की वैदिक ध्वनि हमारे लिए क्या आदेश देती चली जा रही है।
आज के हमारे इस वेद पाठ में कई प्रकार के यज्ञों का वर्णन आता चला जा रहा था। मैं यज्ञशाला के सम्बन्ध में यज्ञवेदी के सम्बन्ध में अपना कोई विचार व्यक्त नहीं करना चाहता हूँ। वेद का एक उपदेश है कि यज्ञशाला में जो कर्मकाण्ड की पद्धति का एक

मानव जीवन से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। और विज्ञान से कितनी उसकी प्रतिभा प्रतीत होने लगती है। तो मेरे प्यारे जब हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं !ऋषिवर ! कि हमारी जो वैदिक ध्वनि है वेद का जो सुन्दर विचार है वह उस परम पिता के सम्बन्ध में ही विचार विनिमय करता रहता है। तो आओ प्यारे ऋषिवर आज का यह हमारा वेद पाठ क्या कह रहा है? वेद की पवित्र ध्वनि हमारे लिए क्या क्या आज्ञा देती चली जा रही है? जब हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं कि हमारा जो मानवीय विचार है वह उस परमपिता परमात्मा से सुगठित रहता है तो विचार सुमन सुहृदय से जो मानव कर्म करने में अपनी मानवता को धारण करता है, बेटा वह जगत में एक ! महान श्रेष्ठ कहलाया जाता है।

एक समय बेटा जब परमपिता परमात्मा की अनुपम कृपा से महाराजा अश्वपति के ! यहाँ यज्ञ की पद्धति का प्रश्न होने लगा तो उसमें एक ही वाक्य आ रहा था। कि हमारे यहाँ यज्ञशाला में चार व्यक्ति प्रमुख होते हैं, जिन में हमारे यहाँ एक का नाम ब्रह्मा, द्वितीय का नाम उद्गाता, तृतीय अध्वर्यु और चतुर्थ में यज्ञमान होता है। परन्तु ये चारों एक महान् व्यक्ति अप्रत्यक्ष चुने जाते हैं। यज्ञशाला में इनको कौन चुनता है? ब्राह्मण चुनता है और कौन ब्राह्मण चुनता है जो तपस्वी होता है, आनन्दवत होता है और किन को चुनता है यह भी बहुत विचार का विषय है। बेटा देखों किन को चुना ! जाता है जो महान् होते हैं। मन, कर्म वचन में यथार्थ होते हैं। जो अपने मानवता के संकल्प से पूर्ण होते हैं मानव यज्ञशाला में विशिष्ट व्यक्ति होते हैं। हमारे यहाँ परम्परा से माना गया है। आज का हमारा वेद पाठ कह रहा है यज्ञस्यम् ध्रुवप्रभः गच्छप्रवे अत्यानम् लोक प्रवे अस्वन्ति ध्रुवः ब्रह्मःप्रवे यौनि ध्रुवस्ति यज्ञः। वेद का आचार्य यह कह रहा है कि यज्ञ की ध्वनि क्या है? तो आचार्य कहता है कि वेद की जो ध्वनि है वह महान तपस्वी पुरोहित का विचार होता है। क्योंकि उन विचारों में ही मानो उस ध्वनि से अप्रत वायु मण्डल और मानवता से सुन्दरता को प्राप्त हो जाता है। तो मेरे प्यारे ! आज का यह हमारा वेद पाठ क्या कह रहा है !ऋषिवर? हमें उस परम पिता परमात्मा के सम्बन्ध में और उस पद्धति के सम्बन्ध में बहुत कुछ विचारना है। जिससे बेटा यह !

जगत् सुन्दर बने और वह पद्धति बढ़ती चली जाए। जो पद्धति महान् पुरुषों के मस्तिष्क में निर्माण का कार्य करती रहती है।

आओ मेरे प्यारेमैं उसी अपने प्रकरण को ल !ऋषिवर !ेना चाहता हूँ कल बड़ा सुन्दर विवेचन होता चला जा रहा था। मुनिवरोंदेखो !, मेरी केवल सात वर्ष की बालिका ने जो मुद्गल गोत्र में उत्पन हुई थी। जब मध्यम रात्रि में विचार विनिमय होने लगा तो यह प्रश्न किया सुन्दरे ब्रह्मे सूक्ष्मः लोकः इदनमम् व्याप्नोति कर्मः कि इस सूक्ष्म शरीर की जो उज्ज्वल गति है मानो इसमें जो स्थिरता है उसका क्या स्वरूप होता है? सूक्ष्म शरीर का स्वरूप क्या होता है। मुनिवरोंदेखो !, वह स्वरूप जो होता है वह इन बाह्य नेत्रों से दृष्टिपात नहीं आता। वह केवल मानव के अनुभव का विषय होता है। अनुभव के विषय में ही उसकी प्रतिष्ठा एक उज्ज्वलता को प्राप्त होने लगती है। तो प्यारे ऋषिवर ! मैं वह वाक्य प्रकट करने के लिए जा रहा था कि मेरी बालिक ने जब यह प्रश्न संसार में यह सूक्ष्म शरीर की कितनी प्रबल गति है !किया कि भगवन? तो मुनिवरों ! देखो, गति के सम्बन्ध में ऐसा कहा जाता है कि जैसे वायु की एक अवधि गति होती है उससे भी मानो देखो, कई गुणा इसकी गति प्रबल होती है, जिस गति को लेने के पश्चात मुनिवरों वह सर्वत्र ब्रह्माण्ड का भ्रमण कर लेता है। !

हमारे यहाँ जैसा कल के वाक्यों में कहा गया था कि भौतिक विज्ञानवेत्ता अपने यन्त्रों में विराजमान होकर के एक लोक से दूसरे लोक में अपना यातायात बना लेता है। आवागमन करने लगते हैं। मानो वह नाना किसी अप्रतो प्राणों के परमाणुओं द्वारा भ्रमण करने लगता है। इसी प्रकार वह जो अवगत आत्मा है अद्भुत आत्मा है जिसने अपने सूक्ष्म शरीर को पाल लिया है और वह पचतन्मात्रा प्रकृति की मानी गई है। उन्हीं पञ्च तन्मात्ताओं के आधार पर जो स्थूल परमाणु होते हैं, वह सूक्ष्म को अपने गर्भ में धारण कर लेते हैं। कहीं कहीं यहाँ सूक्ष्म स्थूल को अपने गर्भ में धारण करने लगता है। और वह कैसे कर लेता है? क्योंकि जितना भी विज्ञान है। वह सूक्ष्मवाद में है। चाहे वह आध्यात्मिक विज्ञान हो अथवा भौतिक विज्ञान। परन्तु उसको जितनी सूक्ष्म धाराएं हैं, सूक्ष्मवत है, वे सब सूक्ष्मतम हैं। वैज्ञानिक मंगल मण्डल में जाने का प्रयास करता है

तो कितने सूक्ष्म परमाणुओं की उसे आवश्यकता होगी? इसी प्रकार जो महापुरूष आज सूक्ष्म शरीर को जानने के पश्चात् लोक लोकान्तरों का भ्रमण करता है। क्योंकि उसका जो अन्तरात्मा होता है परमाणु से भी सूक्ष्म होता है। परमाणुओं की भी हजार 99 प्रकार की प्रवृत्तियां अर्थात् उनकी गतियाँ होती हैं।

उसके पश्चात् हम अणु जगत् में जाते हैं। अणु की भी उतनी सूक्ष्म अबाध तथा (विराद) जाति कहलाई गई हैं। जैसे सूर्य का प्रकाश कितने योजनों से चला हुआ कितना प्रकाश देता है, मानव को उज्ज्वल बनाता रहता है। इसी प्रकार अबाध तथा विशद वह जो सूक्ष्म शरीर है वह भी अपना काम करता रहता है। उसकी ऐसी महान गति हो जाती है कि वह सर्वत्र पृथ्वी मण्डल नहीं, चन्द्र मण्डल क्या, बृहस्पति मण्डल क्या, एक क्षण समय में सर्वत्र भ्रमण करने योग्य बन जाता है। मेरे प्यारेदेखो !ऋषिवर !, जब हम वैदिक विचार पर जाते हैं तो वेद का प्रकाश हमें क्या कह रहा है? अतः वह वाक्य यह कहता चला जा रहा है कि हमारी महत्ता सूक्ष्म शरीर की जो गति है वह महत्ता में परिणित हो जाती है। देखो, जब यह वाक्य आता है कि इसको अनुभव किया जाए। मेरी बालिका ने यह प्रश्न किया कि हे भगवन मैं यह जानना !हे पूज्यनीय ! चाहती हूँ कि इसको मैं कैसे स्वीकार करूं? क्योंकि मेरा हृदय तो यह नहीं कह रहा है कि मैं इन वाक्यों को स्वीकार करूं। इस पर यह कहा गया है हे पुत्री गच्छम् ब्रह्मे ! लोकः क्योंकि हृदय की प्रतिष्ठा जान जाता है कि हृदय क्या है? हृदय को तुम जानती नहीं हो। जब हृदय की मानव प्रतिष्ठा जान जाता है कि हृदय कया है? हृदय को ज्ञान में परिणित करते हुए ऐसा कहा गया है कि जैसे यह ब्रह्माण्ड में पृथ्वी मण्डल है यह जल में ही तो प्रतिष्ठित रहता है और यह जो जल है यह अग्नि में प्रतिष्ठित हो जाता है। और अग्नि वायु में प्रतिष्ठित हो जाता है वायु अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित हो जाता है और यह जो अन्तरिक्ष है यह गन्धर्व लोकों में महः लोकों में चन्द्र लोकों में प्रतिष्ठित हो जाता है और चन्द्र लोक गन्धर्व लोकों में प्रतिष्ठित हो जाते हैं और देखो, गणधर्व लोक इन्द्र लोकों में प्रतिष्ठित हो जाते हैं और इन्द्र लोक प्रजापति में प्रतिष्ठित हो जाते हैं और यह जो प्रजापति है यह यज्ञ में प्रतिष्ठित हो जाता है और यह जो यज्ञ है यह मानव

को दक्षिणा में प्रतिष्ठित हो जाता है और दक्षिणा मानव के हृदय में प्रतिष्ठित हो जाती है। इसीलिए आज हमें इस हृदय को जानने की आवश्यकता है। क्योंकि जितना भी जगत है यह सारा हृदय में समाहित हो रहा है। हृदय में ही योगी जन ध्यानावस्थित हो जाते हैं और अपनी प्रवृत्तियों को जानने में वे संलग्नता को प्राप्त हो जाते हैं। तो मेरे प्यारे जब तू इन वाक्यों को जानने के लिए तत्पर रहेगी कि !तब बालिका !ऋषिवर ! मेरा वास्तव में स्वरूप क्या है? जब तुम हृदय को नहीं जानती यह हृदय और बाह्य हृदय की जब दोनों की एक क्षमता हो जाएगी, दोनों का एक ही सम्मिलन होता चला जाएगा, उस समय तुम्हारे मुख से यह शब्द उच्चारण करने का किसी भी काल में समय प्राप्त नहीं होगा।

मेरे प्यारेम !बालिका ने उस समय कहा भगवन !ऋषिवर !ें यह जानना चाहती हूँ कि आपके हृदय में जो यह महान यज्ञ हो रहा है। उसमें यज्ञमान का क्या कार्य है? होता जनों का क्या कार्य है। ब्रह्मा की कैसी प्रतिष्ठा? और अध्वर्यु इत्यादि कैसे होने चाहिए? मुनिवरों मैं यह नहीं जान पाया !उस समय यह कहा गया कि है हे बालिका ! कि तुम इन वाक्यों को क्यों जानना चाहती हो? तब उन्होंने कहा कि भगवन मेरे ! हृदय में यह आकांक्षा है कि मैं प्रत्येक वस्तु की ज्ञाता बनना चाहती हूँ। क्योंकि प्रत्येक वस्तु को जानने के लिए मैं तत्पर रहना चाहती हूँ। उस समय बालिका के प्रश्नों का उत्तर देना कर्त्तव्य था। शास्त्रीय विधान और वैदिक पद्धित के सम्बन्ध में मैं अपने विचार व्यक्त करने लगा। और यह कहा गया कि हे बालिका सबसे पहले यज्ञमान ! होता है। उस को किस प्रकार रहना चाहिए। उसको किस प्रकार का अपने जीवन में अभद्र विनोद भी नहीं करना चाहिए। यदि अभद्र विनोद उसके समीप आ जाएगा तो उसकी प्रवृत्तियों में अन्तर्द्वन्द्व आ जाएगा। मानो इसी प्रकार अहः सपत्नीक जब वह विराजमान होता है, जब यज्ञ का जितना कार्यक्रम प्रारम्भ होता रहता है और जब तक उसकी पूर्णता नहीं होती तब तक परमात्मा का ही चिन्तन किया जाता है। उस सम्बन्ध में और कोई विषय नहीं होता। यदि और कोई विषय को लिया जाता है तो हमारे यहाँ शास्त्रीय पद्धति यह कहती है कि ऐसे यज्ञमान को यज्ञशाला से दूर कर देना चाहिए।

क्योंकि वह उसके योग्य नहीं होता। योग्य अयोग्य को तो बहुत ही सुन्दर विवेचन हमारे यहाँ धर्म शास्त्रों में वैदिक पद्धतियों में प्रायः आता रहता है। किसी प्रकार की द्वेष की यदि मात्रा आ जाती है तो वह जो यज्ञ के परमाणु हैं जो यज्ञवेदी में स्वाहा दिए जाते हैं वह उस यज्ञमान के सुकृत का हनन कर लेते हैं। इसी प्रकार इन वाक्यों के ऊपर विचार विनिमय होना चाहिए। क्योंकि सुकृत का विचार विनिमय करना है मानो देखो, यज्ञशाला में प्रतिष्ठित रहता है। और संसार का विषय यदि उसके समीप होता है तो उसको भी बहुत गम्भीरता से और मानवीय पद्धति के आधार पर विचार विनिमय करना चाहिए। ऐसा हमारे यहाँ शास्त्रीय पद्धति कहती है। पति और पत्नी को भी यज्ञमान सपत्नी को भी अपने किसी प्रकार का विनोद विशेषतः अभद्रपूर्ण विनोद नहीं करना चाहिए। क्योंकि यज्ञ के परमाणुओं में उसके सुकृत का हनन होता रहता हैं यह हमारे यहाँ वैदिक पद्धति परम्परा के स्पष्ट करती आई है। तो मेरे प्यारे आज मैं इस !ऋषिवर ! सम्बन्ध में अधिक विचार देना नहीं चाहता हूँ।

ब्रह्मा कैसा होना चाहिए? ब्रह्मा की जो पद्धति है परन्तु ब्रह्मः गताम् ब्रह्मे जो बेटा ! अमृतम् ब्रह्मे जो वेद को अमृत जान करके पान करता है अमृत उसको स्वीकार करता है। मानो देखो, अशुद्धियों से दूरी रहता है। उसके नेत्रों में मन कर्म, वचन में यथार्थवाद होता है। वह जो महापुरुष होता है उसको यज्ञशाला मे प्रविष्ट किया जाए। यज्ञशाला में आदर के सहित स्वागत किया जाए। यह यज्ञमान का कार्य है कि वह उस ब्राह्मण को, उस महान् बुद्धिमान को आसन दे। आसन देकर के उसका पूजन करे।

इसके पश्चात् अध्वर्यु होता है। अध्वर्यु इतना प्रबल होना चाहिए, देखो, श्रम करने वाला है, एक सुन्दर प्रतिभा उसके समीप होनी चाहिए। और उसके संरक्षण में सुन्दर सामग्री तथा साधन होने चाहिए कि जिससे वह अच्छी प्रकार अपना कर्त्तव्य कर सके।

इसी प्रकार देखो, उद्गाता उद्गान गाने वाला हो। कैसा उद्गम् उसका विचार हो कि उद्गमता से वह संसार मं मानवत्व की प्रतिष्ठा में सदैव तत्पर रहे। यज्ञ की पद्धति का सम्बन्ध मैंने प्रकट किया।

मेरी बालिका ने कहा कि प्रभु इन वाक्यों से मेरी संतुष्टि नहीं हुई है। मैं तो अपनी

संतुष्टि चाहती हूँ। उन्होंने कहा क्या संतुष्टि चाहती हो? कि यज्ञमान क्या होता है? तब कहा गया यज्ञानि भूषणाम् ब्रह्म याजक उसे कहते हैं। जो हव्य होता है। हव्य उसे कहते हैं जो हवि देने वाला होता है। वह किसकी हवि देता है? अपने दुर्गुणों की हवि देता रहता है। जो यज्ञमान दुर्गुणों की हवि देता है उसे याजक क (होता)हते हैं। यज्ञ का अभिप्राय है कि याज्ञम् ब्रह्म जो मानो देखो, दूषितों से सदैव जागरूक रहता है। यज्ञ का दूसरा रूपान्तर है कि मानो यज्ञमान को जागरूक रहना चाहिए। जागरूक किससे रहना चाहिए? नाना प्रकार की जो आपत्तियां आती है, नाना प्रकार के जो पाप कृत्य आते हैं उनसे उसे वियोग रखना है, यही जागरूक रहना है जागरुक का अभिप्राय यह नहीं है कि आज हम निद्रा में तल्लीन न हों। निद्रा से तो आत्मा अपना भोजन लेता है, मन अपना भोजन लेता है। निद्रावस्था को निद्रा नहीं कहते। निद्रा उसे कहते हैं जो मानो अपने विषयों से वियोग नहीं रखता अर्थात् विषय वासनाओं की नींद में डूबा) जागरुक नहीं रहता। वह मानव संसार में न होने के तुल्य कहलाया गया (रहता है। आज तुम मेरे से क्या प्रश्न कर रही हो !हे मेरे पुत्रवत !ऋषिवर !है। तो मेरे प्यारे? यज्ञ उसी का होता है जो याजिक होता है। अभिप्राय यह है कि जो अपने शरीर का यज्ञ करता रहता है। दूषितपन उसके द्वारा नहीं, आना चाहिए। क्योंकि यदि दूषितपन आ गया तो वह मानो यज्ञ नहीं कहलाता। याजिक वही पुरुष होता है जिसकी ब्रह्म में प्रतिष्ठा होती है। ब्रह्म में जिसकी विचार धारा होती है। ब्रह्म में जिसका अन्तरात्मा प्रतिष्ठित हो जाता है, उसको संसार में याज्ञिक कहते है। तो मेरे प्यारे हमारे !ऋषिवर ! आचार्यों ने बड़े सुन्दर सुन्दर विचार व्यक्त करते हुए ऐसा कहा है?

मेरी पुत्री ने कहा कि भगवान मेरी अब तक संतुष्टि नहीं हुई है। तब उसका उत्तर देते ! हुए कहा हे बालिका तुम्हारीसन्तुष्टि क्यों नहीं हुई? उन्होंने कहा, भगवन् ः यज्ञमान ! कौन होता है? तब मुनिवरो, देखो, उत्तर देते हुए कहा कि दार्शनिक आचार्यों ने कहा है कि यज्ञमान उसे कहते हैं जो यज्ञमान प्रवे कृतानि जो यज्ञ का मान करता है। यज्ञ का मान कौन करता है? जो अपनी अन्तरात्मा का मान करता है। और अपनी अन्तरात्मा अनुकूल जो कार्य नहीं करता वह यज्ञ का अभिमान किसी काल में कर ही नहीं सकता।

तो मेरे प्यारे मेरी बालिका आनन्द मुग्ध होकर के बोली कि प्रभु यह वाक्य !ऋषिवर ! वास्तव में मेरी अन्तरात्मा के अनुकूल आया है कि वही यज्ञमान होता है जो यज्ञ का मान करता है। यज्ञ का कौन मान करता है? जो अपनी अन्तरात्मा का मान करता है। अन्तरात्मा का कौन मान करता है? जो निष्ठावादी होता है, जिसके द्वारा निष्ठा होती है। निष्ठावादी कौन होता है? जो भयभीत होता है और जो ब्रह्म से भयभीत होता है उसकी ब्रह्म में प्रवृत्ति होती है। मेरे पुत्रवत। मानो देखो, हमारे यहाँ ब्रह्म में प्रवृत्ति होना ही तो याज्ञिक कहलाया गया है। बेटा तुम्हें स्मरण होगा। जब महाराजा ऋतु के यहाँ यज्ञ ! हुआ था। उस समय यज्ञमान से यही कहा गया था, राजा ने यही कहा था कि मेरी जो प्रतिष्ठा है वह जनता जनार्दन में है और जनता जनार्दन जो है वह ब्रह्म में प्रतिष्ठित हो रही है।

मेरी पुत्री ने कहा भगवन मेरी अब तक संतुष्टि नहीं हुई कि यज्ञमान किसे कहते हैं। ! यज्ञमान उसे कहते हैं यज्ञमाना सप्तनम ब्रह्म जो मानव देखो, योनि का मान करता है। योनि किसे कहते हैं, योनि कहते हैं यज्ञवेदी को जो अग्नि की योनि होती है। अग्नि की योनि क्या है? यज्ञमान का हृदय कहलाया गया है। यज्ञमान का हृदय ज्ञानरूपी अग्नि से परिपक्व रहता है। ज्ञान में ही ब्रह्म है। ब्रह्म की जो प्रतिष्ठा है वह यज्ञमान के हृदय में प्रदीप रहती है। इसीलिए देखो, उसको यज्ञमान कहा जाता है।

मेरे प्यारे अब तक मेरी संतुष्टि !मेरी सात वर्षीय बालिका ने कहा कि भगवन !ऋषिवर ! नहीं हुई कि यज्ञमान किसे कहा जाता है। मुनिवरो, देखो, मेरा नत मस्तक हो गया। मैंने कहा हे बालिका तू अति प्रश्न न कर अन्यथा तेरा मस्तक नीचे गिर जाएगा। ! उन्होंने कहा भगवन मेरे प्रश्नों का यदि आप उत्तर नहीं दे सकते तो आप मौन हो ! जाइये क्योंकि आप इसके उत्तर देने के अधिकारी नहीं रहे। मुनिवरो, देखो, ये कटु शब्द थे। परन्तु दार्शनिक सिद्धान्त से परिचित्त होने के कारण शब्द सहन नहीं हो सके। तब कहा गया कि यज्ञमान उसे कहते हैं जो जन्मःब्रह्मा जो से द्वेष नहीं करता। क्योंकि द्वेष अन्तरात्मा से उत्पन्न होता है। अन्तरात्मा को जो द्वेष होता है उसमें क्रोध की मात्रा होती है। दुर्गुणों को यदि कोई मानव यह कहता है कि मैं दुर्गुणों को अपनाना चाहता

हूँ तो हे पुत्रीसंसार में उसक !ा जीवन नष्ट हो जाना चाहिए। क्योंकि उसको अपने जीवन को सदैव धिकारना चाहिए।

मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे प्रेरणा दे रहे हैं परन्तु इनकी प्रेरणा के आधार पर मुझे ! आज यज्ञ की पद्धति के सम्बन्ध में, यज्ञमान के सम्बन्ध में, मुझे स्मरण आ रहा है। महाराजा दशरथ के यहाँ बेटा एक यज्ञमान के सम्बन्ध में एक माह तक इस पर ! विवेचना चलती रही। इस पर वार्त्तालाप चलता रहा, ज्ञान पूर्वक याग की वार्त्ता प्रारम्भ होती रही। उन्होंने कहा कि संसार में वह यज्ञमान होता है जो संसार में निर्भय रहता है। और निर्भय कौन होता है? निर्भय वह होता है जिसे अपनी अन्तरात्मा से भय नहीं होता। जो मानव परमात्मा से भी भय उसी प्राणी को होता है जो अपराधी होता है। परन्तु जो परमात्मा का नियम और सिद्धान्त है उसके अनुकूल जो यज्ञमान अपना कर्तव्य करता रहता है। उसे परमात्मा का भय नहीं। परमात्मा उसे अपनी लोरियों में धारण कर ही लेता है।

तो मेरे प्यारेआज का हमारा यह वाक्य क्या कह रहा है !ऋषिवर !? हम अपने जीवन में वास्तव में ऐसी महत्ता को अपनाना चाहते हैं, जिस महत्ता को लेकर के बेटा ! देखो !हमारी ब्रह्म में प्रतिष्ठा होती चली जाए। मेरी बालिका ने कहा कि भगवन, ब्रह्मा किसे कहा जाता है? तब मुनिवरोंकहा गया कि ब्रह्मा !, ब्रह्म के जानने वाले को कहा जाता है। जिसकी ब्रह्म में निष्ठा हो जाती है उसे ब्रह्मा कहा जाता है। वह ब्रह्म में परणित हो जाती है, उसका जो जीवन है वह ब्रह्म के ध्यान में परणित हो जाता है। तब पुत्री ने कहा हे भगवनब्रह्मा किसे कहा जाता है !? तब कहा गया कि ब्रह्म उसे कहते हैं देखो, जिस ब्राह्मण का एक एक श्वांस देखा ब्रह्म से दूर न हो। उसको ब्रह्मा कहते हैं। उन्होंने तब प्रश्न किया। कि ब्रह्मा उसे कहते हैं जो यज्ञशाला में प्रतिष्ठित होता है। यज्ञशाला उसे कहते हैं जहाँ निर्माण होता हो विचारों का चुनाव होता हो जहाँ अपनी प्रवृत्तियों का चुनाव होता हो। जहाँ विज्ञान का चुनाव होता हो। शाला का अभिप्राय यह कि जहाँ अपने आभूषण को अपनाया जाता है। अपने अपने आभूषणों को अपनाने के पश्चात उसकी प्रवृत्तियों में महत्ता का दिग्दर्शन होता रहता है। इसे ब्रह्मचर्य व्रत को धारण

करने वाला पुरुष कहते है क्योंकि इसकी ब्रह्म में निष्ठा हो जाती है। वही तो ब्रह्मा कहलाया गया है।

तब पुत्री ने कहा कि प्रभु, इससे भी मेरी संतुष्टि नहीं हुई कि ब्रह्मा किसे कहते हैं। उन्होंने कहा कि ब्रह्मा उसे कहते हैं जो राजा का भी पुरोहित होता है, राजाओं का भी अधिराज होता है यज्ञशाला में प्रविष्ट हो करके वह कर्म काण्ड में परणित होता है। विधान का निर्माण जानता है। इसी प्रकार देखो, जो ईश्वरीय पद्धति है, वैदिक पद्धति है वैदिक विचार को लाने वाले को ब्रह्म कहा जाता है। मुनिवरोंदेखो !, इसके पश्चात् आगे चलकर के यह कहा गया कि जिसका ब्रह्म में, जिसकी निष्ठा आत्मा परमात्मा में अन्तरात्मा संलग्न हो जाती है दोनों का मिलान हो जाता है वह ब्रह्म में समाधिस्थ हो जाता है। जनता में जनार्दन में समाधिस्थ हो जाता है। दोनों प्रकार की समाधि को जो जानता है, विचारों में व्यापक वाद आ जाता है। सामूहिक वाद आ जाता है और मुनिवरोंदेखो !, सबके उदय के विचार उसके समीप आने लगते हैं क्या पशु है, क्या पक्षी है, क्या मृग सज है, क्या मानव है प्राणी मात्र के प्रति उसके उज्ज्वल और महान् विचार व्यक्त होते रहते हैं। उसी को मुनिवरो, देखो, ब्रह्मा कहा गया है। वह ब्रह्मवत् को प्राप्त होता हुआ ब्रह्म की सृष्टि में मुनिवरों वह किसी काल में भी पाप कर्म नहीं कर ! पाता।

मेरे प्यारे आज का हमारा यह वाक्य क्या कह रहा है कि हमें परमपिता !ऋषिवर ! परमात्मा की उपासना करनी चाहिए। परमात्मा के प्रति हमारी इतनी निष्ठा होनी चाहिए। कि हमारा जीवन वास्तव में सुन्दर बने और मानवीय विचारधारा को अपनाते हुए हम संसार सागर से पार होते चले जाएं। मेरे प्यारे महानन्द जी यह कहा करते ! हैं कि हम संसार से ऊँचा बनना चाहते हैं परन्तु संसार से ऊँचाबनने के लिए मानव को वास्तव में कितना सौन्दर्य अपनाना है जिससे उसका जीवन एक महान् और पवित्रता को प्राप्त होता रहे। मेरे प्यारेआज का वेद का विचार क्या कह रहा था !ऋषिवर !? मैं अपने वाक्यों को उच्चारण करता हुआ दूर चला गया। वाक्य यह चल रहा था कि मानव सूक्ष्म शरीर के द्वारा क्या क्या कार्य कर लेता है। सूक्ष्म शरीर जब मानव का हो जाता

है तो बेटा इतनी !वह जो पञ्चतन्मात्राएं होती है प्रकृति की उन पञ्चतन्मात्राओं में बेटा ! संकल्प शक्ति का प्रवाह हो जाता है उसके इतने प्रवाह का सञ्चार हो जाता है कि वह अपने जो स्थूल परमाणु हैं उनको ग्रहण करने लगता है। और उसी स्थूलता को प्राप्त होने लगता है। परन्तु इसको त्यागने में और उसको धारण करने में कुछ क्षण का समय ही लगता है। और क्षण समय में उसको त्यागने की क्षमता उसमें आ जाती है। परन्तु यह आता कैसे है? जब तक उसका स्वयं का अनुसन्धान नहीं होगा, स्वयं का विचार नहीं होगा।

मेरे प्यारे ऐसा मैं कैसे बन !मेरी बालिका यह कहा करती थी कि भगवन !ऋषिवर ! सकती हूँ। इसका भी तो कोई मार्ग दीजिए, कि मैं इन वाक्यों को अनुभव कर सकूं। तो मुनिवरोंदेखो !, इसमें मैंने कई प्रकार की औषधियों का चुनाव किया है जिसमें सेलाघृत होता है स्मामिनी नाम की एक औषधि होती है सोमकेतु होता है और सेलखण्डा होता है, मामकित नाम की एक औषधि होती है। इन सब औषधियों का मानो सोमरस बनाया जाता है। उस सोमरस को बारह वर्ष तक पान करना चाहिए। उसी का आसन, उसी की कुशा होनी चाहिए। उसकी के आसन पर विचार विनिमय करना चाहिए। विश्राम करना भी उसी पर चाहिए और ओ३म् का चिन्तन करते हुए उस सोमरस को पान करने से मानव की जो बाह्य प्रवृत्ति होती हैं वह प्रवृत्ति शान्त हो जाती हैं। चंचलत्व उसके द्वारा नहीं आता। उसका जो अन्तरात्मा है, उसके मन की जो प्रतिभा है मन से जो विभाजनवाद की प्रक्रिया है। वह प्रायः चलती तो रहती है। परन्तु वह ध्यान में और हृदय में प्रतिष्ठा होने के लिए मुनिवरों मानव को सुगमता हो जाती है। वह सुगमता ! में जब परिणाम हो जाता है तो इंगला, पिंगला और सुषुमना जो तीन प्रकार की नाड़ियां हैं जो मुनिवरो, देखो, मूलाधार से चलती हैं, मूलाधार से देखो, नाभि चक्र को होती हुई हृदय चक्र के स्थान पर आती हुई कण्ठचक्र से घ्राण, जिसको त्रिवेणी कहा गया है नतमस्तक होता हुआ ब्रह्मरन्ध्र, में तीनों का मिलान हो जाता है। जहाँ मिलान होता है वहां मन की प्रवृत्ति उस मिलान के साथ साथ चलती रहती है। प्राण की प्रक्रिया ब्रह्मरन्ध्र में आती है ब्रह्मरन्ध्र में आ जाने के पश्चात् उस अन्तरात्मा की जो प्रबल गति

है। आत्मा का जो अप्रत है, मुनिवरोंदेखो !, वह जो हमारे ब्रह्मरन्ध्र में, दस सहस्र के लगभग ऐसी वाहक सूक्ष्म नाड़ियां हैं जिनका मुनिवरों लोक लोकान्तरों से सम्बन्ध ! होता है। वे सब जितनी नाड़ियां होती हैं उन सबकी प्रतिभा में साथ साथ एक अक्रात करने वाला नतमस्तक हो करके लघुमस्तक में चला जाता है। एक मस्तिष्क होता है, एक लघु मस्तिष्क में चला जाता है। एक मस्तिष्क होता है, एक लघु मस्तिष्क होता है, एक ब्रह्मरन्ध्र होता है एक महा ब्रह्मरन्ध्र होता है, एक त्रिकाठ होता है। त्रिकाठ उसे कहते हैं जहाँ देखो, सब नाड़ियां मुखाबिन्दु के ऊपर हो करके लोक लोकान्तरों से जिसका सम्बन्ध होता है। मानो देखो, वह जो योगी होता है वह लोक लोकान्तरों में बेटाअपनी प्रवृत्तिय !ों में अनायास भ्रमण करने लगता है।

मेरे प्यारेआज का हमारा वैदिक विचार क्या कह रहा है !ऋषिवर !? वेद का विचार यह कह रहा है कि इस सिद्धांत और विचारधारा में अन्तर्द्वन्द्व आ जाता है। परन्तु यह हमारा यौगिक सिद्धान्त कहता है। योग की प्रतिभा में जब हम अनुभव करने लगते हैं उसी समय तो इसका ज्ञान होगा परन्तु मैं यह वाक्य प्रकट करने जा रहा था कि योगीजन जैसे भौतिक विज्ञानवेत्ता, परमाणु, महापरमाणु, त्रसरेणु महात्रसरेणु आज इसी प्रकार प्रकार के परमाणुओं में अवगत होने लगते हैं। उन परमाणुओं में नाना 24 अवान्तर और अनेक प्रकार की गति होने लगती है। इसी प्रकार महान योगी के द्वारा इतनी सूक्ष्म प्रवृत्ति प्रत्यक्ष होने लगती है। वह मानव स्थूल शरीर को और सूक्ष्म और कारण की तीनों की प्रवृत्तियों में पहुंच जाने के पश्चात लगभग उसके जीवन में एक महत्ता का दिग्दर्शन होने लगता है। उसके पश्चात वह जो महापुरुष है जब उसके ब्रह्मरन्ध्र से आत्मा बाह्य प्रवृत्ति में लाने का प्रयास किया जाता है। उस समय बेटादेखो !, यह जो वट वृक्ष है मानो पीपल वृक्ष है और सोमप्रात नाम का वृक्ष है कृकीत नाम का वृक्ष है इन तीनों वृक्षों का पञ्चांग बना करके इनका एक सोमरस बनाया जाता है। सबसे प्रथम पञ्चांग बनाना चाहिए उसके पश्चात सोमरस बनाया जाता है जिसमें सेलखण्डा ब्रह्मरन्ध्री प्राणाकृति अनुवात नाम की औषधियों का उनमें मेल होता है। रसस्वादन किया जाता है। उसका सोमरस पान किया जाता है। जिससे मानव को प्राणशक्ति में गति

देना उन औषधियों के द्वारा ही सकता है। तो मेरे प्यारे आज मैं केवल इस !ऋषिवर ! विज्ञान को या मैं यौगिक विज्ञान के सम्बन्ध में अधिक वाक्य प्रकट करने वाला नहीं हूँ। क्योंकि मेरी बालिका तो नाना प्रकार के प्रश्न करती रहती थी। उसका उत्तर देने का किसी किसी काल में सौभाग्यप्राप्त होता रहता था।

आज का यह वाक्य अब हमारा समाप्त होने जा रहा है, आज के इन वाक्यों का अभिप्राय क्या है? हम परम पिता परमात्मा की महिमा को जानते हुए हम अपनी महत्ती प्रतिष्ठा से विचलित न हों प्रतिष्ठा को ऊँचा बनाते हुए महत्ता में अपने मानव जीवन को ले जाते हुए, अपने को उत्तम और महान् बनाना चाहते हैं। जिससे हम वास्तव में सुयोग्य और उज्ज्वल बनते चले जाएं।

मेरे प्यारे महानन्द जी कल के वाक्यों में यह वाक्य प्रकट कर रहे थे कि यज्ञम् ब्रह्मे ! प्रभावः नतयम् ब्रह्मे। अहा ऐसा उच्चारण कर रहे थे कि यज्ञों का प्रभाव वि्कृत नहीं हो पाता परन्तु उन्होंने उसका उत्तर यथाशक्ति स्वयं ही उच्चारण किया था। परन्तु उस उत्तर में क्योंकि देखो, जब यजामन भी श्रेष्ठ नहीं होता और ब्रह्मा भी अप्रत नहीं हो पाता तो देखो, यज्ञों का प्रभाव भी उतना नहीं हो सकता जितना परम्परा काल में अनुसन्धान के सदृश उसको प्रकट किया जाता है। आज मैं यज्ञमान के याग, यज्ञशाला, यज्ञ की समालोचना करने नहीं आया परन्तु न मुझे इसका कोइ्र प्रतीति है।

कल मेरे दो प्रश्न और रह गएं थे मेरी बालिका के दो प्रश्न और हैं क्या अध्वर्यु किसे कहते हैं? और उद्गाता कौन होता है? दो प्रकरण हम कल प्रकट करेंगे। आज का वाक् यह समाप्त होने जा रहा है। दो प्रकरणों को लेने के पश्चात् मेरे प्यारे महानन्द जी ! अपने कोई विचार दे सकेगें। क्योंकि इनके हृदय में आधुनिक काल के प्रति बड़ी वेदना रहती है यह भी अपने विचार व्यक्त कर सकेंगे। आज का वाक् हमारा समाप्त अब वेदों का पाठ होगा। लाक्षा मण्डप बरनावा

४ 18 02 1970 पुष्प 20 परमात्मा के साक्षात्कार का एकमात्र वैदिक योग मार्ग

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने

पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। आज के हमारे वेद पाठ की माधुरीहमें यह निर्णयात्मक करती चली जा रही थी। वेदों का परम प्रकाश जो जीवन का आनन्द प्रदान करने वाला है आज हम उस महत्ता को अपनाते चले जाएं। हमारे यहाँ पुरातन काल से ही बेटा महान् ऋषियों की अनुपमता का विवरण आता रहता है। उनके ! विचार उनका अनुभव हमारे मस्तिष्कों में प्रायः ओत प्रोत होता रहा है। परन्तु जब हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं कि हमारा जो जीवन है वह उस परम पिता परमात्मा के आँगन में होना चाहिए जो हमारे जीवन का महान्् स्रोत कहलाया गया है। क्योंकि जितनी भी चेतना है, उस चेतना का जो स्रोत है वह परम पिता परमात्मा ही कहलाया गया है।

परन्तु मुझे इतना समय आज आज्ञा नहीं दे रहा है कि मैं आगे के सम्बन्ध में अपना विचार व्यक्त करने लगूं। वास्तव में हम जब विचार विनिमय करते हैं तो यह जो सर्वत्र ब्रह्माण्ड मुझे प्रतीत हो रहा है यह उस परम पिता परमात्मा की एक अनुपम प्रतिभा कहलाई गई है। मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे कई काल में प्रकट कराते हुए कहा ! था कि हम वास्तव में एक महान् योगेश्वर बनना चाहते हैं। हमें सूक्ष्मतम को जानना चाहते हैं।परन्तु मेरी एक सूक्ष्म सी सात वर्ष की बालिका थी। जिसका जीवन सदैव ब्रह्म में रमण रहता था। उसका औषध का पान था, और उसमें जीवन की विशेष प्रतिभा थी।

मुनिवरोंदेखो !, योग उसी को कहा जाता है जहाँ भयंकर वनों में मृगराज भी इसकी छत्र छाया में पनपते हों। मुझे बेटास !्मरण आता रहता है कि एक समय महर्षि जमदग्नि आश्रम में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस आश्रम में बेटा एक जरत्कास ! देखो !गोत्र में उत्पन्न होने वाले महर्षि कूक आनन्द ऋषि महाराज जब मुनिवरों, मृगराज उसके सत्य आँगन में विराजमान हो गए। उस समय दालभ्य ऋषि जी ने महर्षि जमदग्नि जी से एक वाक्य कहा था कि महाराज यह क्या कारण है कि जो आपके आश्रम ! में ये मृगराज ओत प्रोत हो रहे हैं। उस समय एक ही शब्द महर्षि जमदग्निजी ने कहा था। और उस समय गांधीवान महर्षि रेवक भी वहाँ आ पहुँचे। परन्तु गांडीवान

रेवक ने यह कहा कि यह मानव का विचार है, उसकी दृढ़ता है। उसका संकल्प है। उसका जो आन्तरिक हृदय के विचार हैं उसमें इतना आनन्दमय प्रवाह है कि मृगराज भी उसके चरणों में ओतप्रोत हो करके नतमस्तक हो रहे हैं।
आज हम योग की परम्परा को जानने के लिए तत्पर होते हैं। मुझे बेटा कई कालों ! में कई समयों में यौगिक प्रक्रियाओं को उच्चारण करने का भी सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। अश्विनी कुमारों और महर्षि दधीचि के आने पर महर्षि दधीचि मुनि महाराज से अश्विनी कुमारों ने यह कहा कि महाराज आज हम यौगिक बनना चाहते हैं। परन्तु ! योग के लिए कौन कौन सी वस्तुओं की हमें आवश्यकता है। तब उन्होंने एक वाक्य बड़ी सरलता से प्रकट किया कि मानव को विचारों के लिए सुन्दर अन्न की आवश्यकता है जैसा बेटा महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि ने भी कहा है कि आज मन को शोधन करने के ! लिए मन की प्रक्रिया को ऊँचा बनाने के लिए आज हमें पवित्र अन्न की आवश्यकता होगी। मुझे स्मरण आता रहता है जब महर्षि गौतम ब्रह्मचर्य आश्रम में थे उनके पिता अरुण ने कहा था कि हे बालकक्या तुम शिक्षा अध्ययन कर आये !? उन्होंने कहा कि हां भगवनहुत प्रहुत किसे कहा जाता है !? उन्होंने कहा कि भगवन मैं इसको नहीं ! जानता। उन्होंने कहा कि जब तुम इसको नहीं जानते तो तुमने जाना ही क्या है? इसी को हमारे यहाँ देखो, जल और अन्न दोनों ही कहा जाता है यह जो जल है इसके आश्रित प्राण रहने वाला है। और अन्न के आधीन मनि राम को तृष्णा होती रहती है। आज हमारे यहाँ ऋषि मुनियों का एक सुन्दर विचार है। जो महत्ता में परणित रहा है आज मेरे प्यारे महानन्द जी भी अपना कोई विचार देने वाले हैं। परन्तु मैं तो सूक्ष्म ! विवेचना दूंगा। इस सम्बन्ध में इसलिए हम अन्न का शोधन करें। अन्न के शोधन करने हमारी प्राण और मन दोनों मिलकर के दोनों का सुगठित हो जाने !के पश्चात मुनिवरों को ही योग की प्रणाली कही गई है। इसको हमारे महर्षि पतंजलि जो में और भी अन्य ऋषियों ने बेटा इसके ऊपर विवेचना दी है। !
मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक वाक्य कहा था कि हम भौतिकवाद में जाना चाहते हैं। ! भौतिक परमाणुओं को जानना चाहते हैं। उस सम्बन्ध मेरा एक ही विचार रहा है कि

आज हमें भौतिक परमाणुओं को जानने से पूर्व अपनी मानवता को जानना हमारे लिए बहुत अनिवार्य होता है। क्योंकि जिससे हम संसार में एक महत्ता में परणित होते चले जाएं उसी में हमारी मानवीय एक गति और महत्ता का जन्म होता रहता है। तो मेरे प्यारेआज का विचार हमारा क्य !ऋषिवर !ो ं कह रहा है कि परम पिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते हुए आज हम एक मानवीय जगत में विराज मान हो करके हो उस महान परम्परा को ऊँचा बनाना चाहते हैं। बेटा आज का हमारा यह ! वाक्य यह कहता चला जा रहा है कि हम परमपिता परमात्मा को ही जाने। क्योंकि परमात्मा को जानन े से पूर्व हमें अपने विचारों को सुगठित बनाना होगा। यदि हमारा विचार नहीं होगा हमारी विचारधारा उज्ज्वल नहीं होगी तो हमारा जीवन किसी काल में भी ऊँचा नहीं बनेगा। अब मैं इन वाक्यों को विराम देने जा रहा हूँ। मेरे प्यारे ! महानन्दजी कुछ अपना विचार व्यक्त करेंगे।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जीवन की उज्ज्वलता में परणित करने वाले !मेरी पवित्र मातृ ! जब हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं कि हमारी जो परम्परागत महिमा है हम पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी !उसको उज्ज्वलता में परणित करना चाहते हैं। परन्तु मेरे प्यारे अभी अपने विचारों को व्यक्त करते हुए जो कुछ भी कहा है वास्तव में वे उससे यौगिक प्रक्रिया को उज्ज्वल बनाना चाहते हैं। परन्तु मेरे प्यारे पूज्य गुरुदेव ने जो भी शब्दावली ! इसके पश्चात् जब !अपने विचारों में प्रकट की है वह एक महत्ता सदैव परणित रही है हम यह विचार विनिमय करना चाहते हैं कि संसार को सुखी बनाना है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी अपनें विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि यह जो जगत है यह आनन्द को प्राप्त करना चाहता है। परन्तु इसमें यौगिक प्रणाली के द्वारा विचार बनाने की आवश्यकता है। आज मैं एक वाक्य प्रकट कराने के लिए तत्पर हूँ। सदैव मुझे वह समय बारम्बार स्मरण आता रहता है कि मैं परम्परा की ओर आधुनिक काल की जगत की तुलना करना चाहता हूँ। आधुनिक काल की तुलना करते हुए मुझे इस संसार को दृष्टिपात करने का सौभाग्य प्रात होता रहा है। क्योंकि आज का संसार आज का मानव जहाँ धर्म को परम्परा का नाद बजाता रहता है वहाँ यह नाद उसके मस्तिष्क में नहीं

है। क्या अपने अपने विचारों को भी सुगठित बनाना है अथवा नहीं? परन्तु जब मैं यह विचार विनिमय अपने पूज्यनीय गुरु देव के समक्ष लाता हूँ, तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव आश्चर्य चकित हो जाते हैं। उनके आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रहती परन्तु रहा यह वाक्य कि आज का यह जगत क्यों नहीं सुखी प्रतीत होता है? जहाँ भौतिक विज्ञान इतनी सीमा को प्रात हो रहा है। जहाँ भौतिक विज्ञान इतना प्रगतिशील मुझे प्रतीत हो रहा है। कैसा विज्ञान है? जहाँ चन्द्रमा में जाने वाले यानों का निर्माण हो रहा है। जहाँ आज एक मानव मानव के यानों के द्वारा, यन्त्रों के द्वारा कितना निकट आता चला जा रहा है। परन्तु मैं यह उच्चारण करने के लिए सदैव तत्पर रहता हूँ जहाँ यह संसार इतना निकटतम आ गया है वायुयान के द्वारा वहाँ मानव अपने हृदय से कितना दूर चला जा रहा है। उसका कारण क्या है? मानव ये आध्यात्मिक वाद न होना आधुनिक काल के आध्यात्मिक वेत्ताओं ने अपने को स्वार्थवाद में परणित करते हुए अपनी मानवता को दूसरे को मानवता को एक संकीर्ण विचारों में लाने का सदैव प्रयास किया है। यह काल आज से नहीं, महाभारत काल के पश्चात से ही यह संकीर्णता इस महान पवित्र भूमि में प्रायः होती रही है। मुझे संसार को दृष्टिपात करने का प्रायः सौभाग्य प्राप्त रहा है। परन्तु मैं यह उच्चारण करने के लिए तत्पर हूँ कि यौगिक परम्परा में मानव पारंगत क्यों नहीं हो पाता? उसे आनन्द प्राप्त इसलिए नहीं हो पाता क्योंकि उसके जो विचार हैं वह इतने व्यापकता में परणित नहीं होते, जितने होने चाहिए। क्योंकि उन विचारों में सूक्ष्मता रहती है।

संसार में केवल साधारण प्रजा पर कदापि दोषारोपण नहीं करना चाहिए। न प्रजा कदापि दोषारोपण के योग्य होती है। जब राजा ऊँचा होता है तो प्रजा स्वयं ऊँची बन जाती है। जब योगी ऊँचे होते हैं तो स्वयं संसार ऊँचा बन जाता है। साधक स्वयं ऊँचे बन जाते हैं। साधक उस काल में ऊँचा बना करता है जब ऊँची होती है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने ऐसा ही कहा है महर्षि पिप्पलाद आश्रम में मैं संसार में एक दुराचारता से ऊपर उठकर ऋषि की पवित्र भूमि पर पनपा हूँ मेरे हृदय में उस समय एक विडम्बना थी। क्या मैं ब्रह्म वेत्ता बनना चाहता हूँ? अपने सूक्ष्म शरीर को जानना चाहता हूँ। परन्तु

जब मैं पूज्यपाद गुरुदेव की शरण में आ पहुँचा तो उस समय यह नियम कराया गया, गुरुदेव की मुद्गल गोत्र में उत्पन्न होने वाली पुत्री ने भी मुझे नाना प्रकार की ताड़ना दी। परन्तु मैं कहाँ शान्त होने वाला था। उस समय पूज्यनीय गुरुदेव ने कहा क्या तुम योगी बनना चाहते हो? मैंने उनसे कहा कि प्रभु मैं आपकी शरणागत आ गया हूँ जैसा आप चाहते हैं वैसा मुझे बना सकते हैं। तब मेरे पूज्यनीय गुरुदेव ने कहा था यदि आज तुम ऊँचा बनना चाहते हो तो नाना प्रकार की औषधियों का पान करना होगा। इस समय तुम्हारे मन का शोधन होगा। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे बारह वर्ष तक पांचांगो का पान कराया। जो बेल के पांचांग का पान करानें के पश्चात पीपल का पांचांग कराया, बट वृक्ष का पांचांग का पान कराया। बारह वर्ष तक इस प्रकार की कठोर तपस्या करने के पश्चात मुझे यह प्रतीत हुआ था कि आज मेरा मस्तिष्क ऊँचा बन गया है। क्योंकि मस्तिष्क का जो सम्बन्ध है वह मानव की प्रवृत्ति से होता है जो अन्तःकरण में संस्कार होते हैं अन्तःकरण में जो प्रवृत्तियां होती हैं। उन प्रवृत्तियों से मनुष्य का मस्तिष्क अधिक सम्बन्ध होता है। इसीलिए आज मैं उन वाक्यों को नहीं उच्चारण करने जा रहा हूँ।

केवल वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय यह है कि आज मैं वाक्यों को प्रकट कराना चाहता हूँ जिन वाक्यों में मेरे जीवन की प्रतिभा सदैव विराजमान रही है। उसके पश्चात जब मुझे यह निश्चय हो गया और पूज्य गुरुदेव ने जब आन्तरिक निरीक्षण किया तो उस समय मध्य रात्रि को मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जागरूक हो रहे थे, परन्तु उनकी चर्चा चल रही थी क्या यह बालक तो अभी उज्ज्वल नहीं बना है। क्योंकि इसके अन्तःकरण में तो ऐसे संस्कार हैं जिन संस्कारों से मानव भ्रष्ट हो सकता है। इसी समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा। इसको सोमरस का पान कराना चाहिए। बारह वर्ष के लिए मुझे संकल्प करा दिया कि तुम सोमरस का पान करो। सोमरस क्या होता है? उसमें एक सुमेन नाम की औषधि होती है, सममुना नाम की औषध होती है, सेलखण्डा होती है, कोकजंघा होती है, सोमगागिनी होती है। नाना प्रकार की औषधियों का मानो अग्नि में तपा करके सोमरस बनाया जाता है। उसमें क्या प्रभाव होता है? यह मैं निर्णय करा देता हूँ जो मुझे अनुभव हुआ है। उसमें यह होता है कि जो मन की गति है, जो

संस्कारों को लाती है जो स्वप्न में मुझे सदैव बाध्य करती रही। उस समय अप्रतम ब्रह्म उसका पान कराने के पश्चात मेरे मन की गति संस्कारों की गति थी वह मन्द हो गई। मन्द हो जाने के पश्चात् इसमें मेरी साधना में प्रवृत्ति हो गई। क्योंकि साधक जो होते हैं वे संसार मैं अधिक नहीं होते है साधक संसार में देखो, कोई कोई होता है। जैसा भगवान कृष्णा ने भी कहा है। मुनिवरों मुझें स्मरण आता रहता है जब मेरे पूज्यपाद ! गुरुदेव आश्रम में प्रविष्ट होते थे उस समय पूज्यनीय गुरुदेव प्रकट कराते थे किसंसार में महापुरुष कोई कोई होता है। उन महापुरुषों में भी आत्मा को जानने वाला कोई कोई होता है। आत्मवेत्ता में भी पूज्यपाद कोई कोई होता है। परन्तु देखो, ऐसा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कई काल में वर्णन कराते हुए कहा था।

सारी रात्रि ब्रह्म का चिन्तन चलता रहता था वेदों का अध्ययन प्रारम्भ रहता था क्योंकि वेद को परम्परा को नष्ट करने के पश्चात कोई संसार में यह चाहता है कि मैं आज यौगिकवाद प्रक्रिया में ला सकता हूँ तो यह मानव का असम्भव विचार रहा हैं क्योंकि मुझे संसार का अनुभव है देखो, यहा महात्मा महावीर ने यह विचारा कि मैं संसार को एक पताका के नीचे लाना चाहता हूँ संसार में देखो, गऊओं को रक्षण अधिक प्रवाह में प्रचलित होगा। बुद्ध ने भी किया परन्तु उन वाक्यों में अधिक नही जाना चाहता हूँ वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्रायः यह है कि हमारे जो वैदिक पद्धति है वैदिक जो यम नियमों का पालन करना है यह मानव के लिए, साधको के लिए बहुत अनिवार्य हैं।

मुझे स्मरण आता रहता है माता गार्गी यौगिक प्रक्रिया को जानने के लिए जब आचार्य के कुल में पंहुची उस समय आचार्य ने यह कहा था कि हे सम्भवनं ब्रह्मे व्याप्नोति तुम क्या जानना चाहती हो उन्होने कहा प्रभु मैं यह जानना चाहती हूँ कि यह जो संसार ! मुझे दृष्टिपात आ रहा है यह किसममें ओत प्रोत हैं मैं इसको ओत प्रोतता को जानना हे चाक्राणी यह जो जगत है तुम्हें प्रतीत हो रहा है !चाहती हूँ आचार्य ने कहा हे देवी यह पृथ्वी में ओत प्रोत हो जाता हैं चाक्राणी ने कहा पृथ्वी में किसमें ओत प्रोत हो जाती हैं चाक्राणी ने कहा उन्होंने कहा यह पृथ्वी जो हैं यहजल में ओत प्रोत हो जाती

हैं जल अग्नि में ओत प्रोत हो जाता हैं अग्नि वायु में ओत प्रोत हा जाती हैं वायु अन्तरिक्ष में ओत प्रोत हो जाती हैं और यह जो अन्तरिक्ष है यह महत मैं ओत प्रोत हो जाता हैं यह जो महतत्व चन्द्र लोकों में ओत प्रोत हो जाता हैं यह चन्द्र लोक हैं यह जो लोक हैं यह मानो देखो, यह इन्द्रलोंकों में ओत प्रोत हो जाते हैं और इन्द्र लोक मानो देखो, प्रजापति में ओत प्रोत होते चले जाते हैं प्रजापति किसमें ओत प्रोत हो जाता हैं उस सयम पूज्यपाद गुरुदेव आचार्य ने कहा यह जो जगत हैं यह हृदय में ओत प्रोत हो जाता है हृदयगं हृदय ब्रह्मा ऐसा कहा है कि श्रद्धा ओर हृदय में मिलान हो जाता हैं जब योगी जब ध्यानावस्थित हो जाते हैं जैसे मेरे पूज्यनीय गुरुदेव ने कल के वाक्यों में ही प्रकट कराते हुए कहा था जब योग में इसकी प्रवृत्ति हो जाती हैं तो हृदय की प्रवृति उज्ज्वल हो जाती हैं अब देखो, महान योगी उसे कहा जाता है जो अपने हृदय और बाह्य जो जगत रूपी हृदय है जब दोनों का मिलान हो जाता हैं दोनो की एक प्रतिष्ठा हो जाती हैं उस सयम मुनिवरों महापुरूष को हमारे यहाँ महान ऋषियों की ! उपाधि प्रदान की जाती हैं मेरे पूज्यपाद ने मुझे कई काल में प्रकट कराते हुए कहा है हृदयंगमे गतम् मयम ज्याति रसः अमृतं ब्रह्मे लोकः क्योंकि हृदय ही मानव की प्रतिष्ठा है और हृदय ही जगत का कृत्य कहलाया गया है जिसको ऋत कहा जाता हैं जो सदैव सत्यता में परणित रहने वाला है यज जो जगत मुझे प्रतीत हो रहा है अहः जो बाह्य है यह मानो प्रकृति का हृदय ब्रह्म की चेतना का हृदय है जब दोनों का एक मिलान एक प्रतिष्ठा हो जाती हैं एक सन्निधान हो जाता हैं उसी समय वह महापुरूष इस संसार को एक आसन पर विराजमान हो करके अपने हृदय में ही ध्यानावस्थित हो कर अनुभव करने लगता हैं

तो मेरे प्यारे परन्तु यह प्रक्रिया मानव को किस काल में अआती हैं उस !ऋषिवर ! काल में आती है जब सबसे प्रथम जनता जनार्दन को जाना जाता हैं अहः अपने प्रवृत्तियों से जनता जनार्दन को कौन जानता है जैसा मैने कई काल में प्रकट कराते हुए कहा है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने भी प्रकट कराते हुए कहा है क्या उस समय मानव की प्रवृत्तियों में अन्तर्द्वन्द्व नही रहता जब मानो इन्द्रियों की सामग्री बना कर उन हृदय

रूपी जो यज्ञशाला है उसमें हवि दी जाती हैं हवि देने के पश्चात मानो देखो, जैसे अहः कश्च प्रवे कृतानम् सब इन्द्रियों को अपने में समेट करके हृदय में ध्यानावस्थित हो जाते हैं

मेरे प्यारे आज मैं एक वाक्य अपने पूज्यपाद गुरुदेव को प्रकट कराना चाहता !ऋषिवर ! था कि आधुनिक काल जगत मानो धार्मिकता में परणित होते हुए आज का यह जगत सुखी क्यों नही प्रतीत होता? इसीलिए सुखी नही प्रतीत होता क्योंकि देखो, इस संसार में मानो स्वार्थवाद का अधिक प्रचलन होने के कारण अर्थात स्वाथवाद की प्रतिभा अधिक होने के कारण उसमें अन्तर्द्वन्द्व आता चला जाता है उसकी अन्तर्द्वन्द्वता है वह उस मानव के हृदय को निगल जाती हैं जैसे यज्ञमान यज्ञशाला में विराजमान हो करके नाना प्रकार का कोई भी अपराध करता हैं उसका सुकृत हनन हो जाता हैं इसी प्रकार मानो देखो, इस प्रजा का स्वार्थवाद में इसका सुकृत नाश को प्राप्त हो जाता हैं उसके पश्चात एक कारण और भी है आज के जगत में सुखी न हाने का एक कारण यह है कि धार्मिकता तो विचारों में अवश्य हैं परन्तु उसका अनुकरण नही होता।

शिक्षक संसार में बहुत होते हैं परन्तु उसको अपने में क्रियात्मक जीवन में लाने वाले व्यक्ति सूक्ष्म हैं क्योंकि यहा केवल महान पुरूषों का आचरण करने वाला राजा महारजा प्रजा सभी होते है उसका अनुकरण जब सुन्दर रूप में किया जाता हैं तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव उसी काल में जगत सुन्दर और धार्मिकता में परणित होता चला जाता है मुझे स्मरण आता रहता है यहाँ उच्च ब्राह्मणों की आवश्यकता हैं मुझे स्मरण आता रहता है।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के केवल मात्र बारह वर्ष की अवस्था थी एक समय महाराजा अश्वपति के यहाँ जा पंहुचे महाराजा अश्वपति के यहाँ कुछ विचार विनिमय होना था परन्तु उस विचार विनिमय कें केवल आदर कुछ सूक्ष्म नही रहा केवल उनके उच्चारण करने में कुछ मानो संकीर्णता रही उस बालिका के दृष्टिपात करने के नाते उसी समय राजा को कहा हे राजन क्या तू शुद्ध है तू राजा के योग्य नही हैं महाराजा अश्वपति ! शान्त हो गएं अश्वपति ने कहा यह बालिका मुझे क्या उच्चारण कर रही है जैसे कोई ऋषि पत्नी मुझे वाक्य प्रकट कराती हैं यह बालिका ही तो है परन्तुउस समय उस

बारह वर्षीय कन्या ने कहा था कि ऋषि पत्नी तो बहुत ही समय के पश्चात बना जाता हैं परन्तु मैं एक बालिका हू हे राजा तू राजा के योग्य नही हैं तेरी वाणी तेरा हृदय ! तो शुद्ध नही हैं जिस राजा का हृदय शुद्ध नही उसके राष्ट्र में तो आना भी हमारे लिए पाप वर्धक हो जाता हैं जब इस प्रकार के धार्मिकवाद से मानववाद में प्रवृत्ति हो जाती हैं कि राजा को भी हृदय के वाक्यों को घिक्कारने वाला हो तो उसी समय धार्मिकता का संसार में प्रचलन हो जाता हैं परन्तु इसी काल में यौगिक प्रक्रियाओं में एक सुन्दरवाद आ जाता हैं।

देखो, यम नियम में प्रायः यह आता है कि सबसे प्रथम योग के लिए हमारा आहार शुद्ध होना चाहिए आज इस मानव सुन्दर नही हो शुद्ध और पवित्र नही हो तो आज यौगिक प्रक्रिया में लाना यह देखो, अस्वाभाविक तथा असम्भव मुझे प्रतीत होता है मुझे स्मरण होता रहता हैं केवल अनुभव भी किया हैं माक्रुतम देखो, योगी बहुत समय के पश्चात मानो साधना में परणित होता रहता हैं सोमरसों का पान कराया जाता है। यह क्या आज मैं प्रथमे ब्रह्मे लोकाः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे कि हे पुत्र संसार में सुन्दर तो कोई कोई होता हैं यों तो संसार में व्यक्तव्य देने वाले विचार विनिमय करने वाले संसार में बहुत हुआ करते हैं परन्तु विचारक, अनुसन्धान करने वाला अपना विचार आत्मिक में हृदय गम्भीरता में परणित करता है मानव के लिए असम्भव नही होता तो पूज्यपाद गुरुदेव मुझे बहुत बहुत सुन्दर वार्त्ता प्रकट कराते रहते हैं

मैने यह काल भी जब अपने दृष्टिपात किया हैं जिस काल में यहाँ महाराज युधिष्ठिर महाराज का न्यायालय में एक महापुरूष का आसन लगता था वह महापुरूष राजा को धिक्कारने वाला होता था परन्तु उसके द्वारा कितनी निष्ठा और राष्ट्रीयता की आवश्यकता रहती थी तो हे भगवनहे मेरे पूज्य !पाद गुरुदेव आज मैं यौगिक वाक्य प्रकट करने नही जा रहा हूँ केवल अपने विचार इसीलिए व्यक्त किए है कि यह जो आज का जगत है। यह इतना पृथकता मे क्यों परणित हो रहा है इसीलिए हो रहा है क्योंकि अध्ययन सुक्ष्मता होने के नाते ओर विचार की सूक्ष्मता होने के नाते विचार नही रहा अध्ययन

नही रहां यम नियम के पालन नही रहे क्योंकि संसार में केवल जैसे न्यायालय के लिए कोई सहायक होता है इस प्रकार के इस जगत में प्रतिष्ठित व्यक्तियों की आवश्यकता रहती हैं।
यह संसार कैसा है कैसी विचित्रता में परणित हो रहा है। यह मैं कल प्रकट करूंगा। आज तो मैं अपने वाक्यों को विराम देने जा रहा हूँ केवल वाक्य उच्चारण करना हमारा यह है कि बिना यम निमय के आहार के शोधन के मुनिवरोंदेखो !, कोई भी संसार में योगी कदिप नही बना करता है योगी उस काल मे बनता हैं जब आहार शुद्ध होता हैं राजा के यहाँ घोषणा की जाती हैं कि राष्ट्र में हिंसा नही होनी चाहिए यदि राजा के राष्ट्र में हिंसा होती है तो उस हिंसा की तरंगें है उन दुःखित आत्माओं की तरंगें प्रायः जगत मे भ्रमण करती रहती हैं मानव के मस्तिष्क को छूती रहती हैं उसी से मानव को प्रवृत्तियों का निर्माण होता है यदि मानव का आहार सुन्दर नही होगा तो व्यवहार भी सुन्दर किसी काल में हो सकेगा। इसीलिए हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मैं इन वाक्यों को विराम देने जा रहा हूँ। अब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव इन वाक्यों पर टिप्पणी कर सकते हैं हास्य....
पूज्यपाद गुरुदेवः आज मेरे प्यारेमहानन्द जी ने अपने व !िचार व्यक्त किए है उनमें कुछ ऐसा मुझे प्रतीत हो रहा था जैसे याग के सम्बन्ध में मेरे प्यारे महानन्द जी बड़ी ! विडम्बना हो क्योंकि विडम्बना केवल मानव के हृदय मे उसी काल में होती हैं जब उसका मन, कर्म, वचन दोनो में आस्था नही होती मेरे प्यारेमहानन्द जी ने एक वा !क्य यम नियम के पालन करने के लिए कहा है संसार में बेटा यम नियम की भी ! आवश्यकता नही होती जबकि मानव के विचारों का उपराम जो जाता है आत्मा का उत्थान उस काल में होता हैं जब मानव जगत से उदासीन हो जाता हैं क्योंकि जगत से उदासीन होना उसके लिए बहुत अनिवार्य होता हैं उसके पश्चात वह वैदिक परम्परा को अपनाने में सफल हो जाता हैं।
मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक वाक्य और कहा कि महात्मा बुद्ध और भी नाना ! महापुरूष पद्धति को लाने में अपने को बहुत उचता प्रकट करते थे परन्तु जहाँ यह

वाक्य है कि यह जो संसार है यह कल्पनावादी एक वृक्ष हे यहाँ जैसा भी कल्पना करोगे बेटा वैसे ही बन जाओगे। और उसी प्रकार का यौगिक प्रक्रिया में मानव सफल ! हो जाता है हमारे यहाँ याग को एक सूक्ष्म सा वाक्य है और वह यह कि जहाँ मन और प्राण दोनों का मिलान हो जाता हैं दोनो आत्मा के सेवत बन जाते हैं चेतना के उसी काल में मानव योग की सुलता को प्राप्त हो जाता हैं और हृदय में भी तो उसकी प्रतिष्ठा होती हैं मुझे एक वाक्य अपने उस काल का स्मरण आ गया है कि एक में विराजामन हो रही हूँ परन्तु मेरी साधना समय मेरी बालिका बोली कि प्रभु मेरी साधना को उज्ज्वल बनाईए उस समय कहा गया कि पुत्री तुम विराजमान हो जाओ मैं तुम्हारी साधना में सहायक बनूंगा तब मुनिवरोंदेखो !, उस समय केवल चार वर्ष की अवस्था की बालिका थी तो वह जब ध्यानावस्थित होने लगी तो मुनिवरों मैं एक औषध जानता ! था उस औषध का नाम था योगाधृतिक यह योग में बड़ी सहायक होती थी मैंने उस औषधि को लिया ओर मस्तक पर उसका लेपन कर दिया लेपन करने से उसकी चेतना उद्गमता में परणित हो गई इतनी प्रज्ञवलित चेतना हो गई कि उसको योग में प्रवृत्ति सहज हो गई कारण क्या है जब व्यक्ति आत्मसुखी हो जाता हैं तो व्यक्ति की आत्मा निर्मल हो जाता हैं अहा उसमे किसी प्रकार का विडम्बनावाद निराशावाद नही होता। विडम्बना भी नही होती उस काल में देखो, मानव यौगिकता में बहुत ही शीघ्रता से उस यौगिक प्रक्रिया मे सफल हो जाता हैं इसीलिए इस जगत से उदासीन होना बहुत अनिवार्य हैं।

एक मानव ऐसा है जो अप्रत अपने विचारों से दूसरों को प्रभावित करता हैं वह योग है याग की नाना प्रकार की प्रतिभाएं मानी गई हैं जैसा महर्षि पतंजलि जी ने योग की एक ही प्रक्रिया प्रकट की कि अपनी प्रवृत्तियों का निरोध कर लो परन्तु यह निरोध कैसे किया जाता हैं निरोध उस काल में होगा जबकि हमारा अपनी इन्द्रियों पर संयम होगा अब संयम कैसे होगा मानो संयम होगा परमात्मा के चिन्तन से परमात्मा का चिन्तन किया जाएं अध्ययन किया जाएं और मुनिवरों निदिध्यासन किया जाएं उस काल में ! मानव अपनी वास्तविक कारण को प्राप्त हो जाता हैं वास्तव में याग की उच्चारण करना

मानव के लिए बहुत सहज होता हैं मेरे प्यारे महानन्द जी मूर्खों वाली मूर्खाप्रवः ! कोई वार्त्ता प्रकट कर रहे थे परन्तु मैं भी उच्चारण कर सकता हूँ।

रहा यह वाक्य कि यह जो जगत हैं यह कैसे धार्मिक हो यह ऐसी अवनति का क्या चला गया इसको तो बेटा मैं पूर्णता से नही जानता परन्तु इसका केवल कारण मैं ! यही उच्चारण कर सकता हूँ यहाँ धार्मिक जो महापुरूष होते हैं उनकी सूक्ष्मता हाने के कारण प्रजा में अशान्ति होती रहती हैं राजाओं महाराजाओं के यहाँ सुन्दर चरित्र का अभाव प्रायः होता रहा है अहः इसमें क्योंकि अधूरे शिक्षक बहुत होने के नाते भी संसार में वह शिक्षा नही आ पाती जो वास्तविक शिक्षा होती है वास्तविक शिक्षा आत्मिक शिक्षा होती हैं आत्मिक पद्धति होती हैं आत्मिक विचारधारा होती हैं उसमें आज का शिक्षक मानव सूक्ष्मता को प्राप्त हो गया हैं।

आज का हमारा वाक्य अब समाप्त होने जा रहा हैं आज के वाक्यों का अभिप्रायः यह कि हम आज यौगिक प्रक्रिया में जाना चाहते हैं यह बहुत ही सुन्दर है संसार में एक मानवता से ही जगत मे एक उन्नतता को प्राप्त हो जाते हैं अब मुझे समय मिलेगा कल मेरे प्यारे महानन्द जी अपनी कुछ भौतिक विज्ञान की चर्चा प्रगट करेंगें अपना कोई ! सुन्दर विचार व्यक्त करेंगें आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पाठ होगा इसके पश्चात वार्त्ता समाप्त हो जाएगीं आज के वाक्यों का अभिप्रायः यह कि हम प्रभु का चिन्तन करते हुए उस यौगिकता में परणित होते चले जाएं यम नियमों का पालन करते हुए प्राणायाम करते हुए क्योंकि प्राण और मन का दोनों का मिलान करना ही योग कहलाया गया हैं उसको किसी भी भाग से अपनाया जा सकता हैं आज का वाक् अब समाप्त अब वेदों का पठन पाठन लाक्षागृह मण्डप बरनावा

५ 19 02 1970 यज्ञ की सफलता के लिए अध्वर्यु, उद्गाता के स्वरूप का वर्णन

जीते रहोआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहां परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा सदैव रमण करती

रहती है। जब हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं कि मानवीय पद्धति उस महान पवित्र यज्ञ से सुगठित रहने वाली है। मानव का जीवन भी एक सुन्दर यज्ञवेदी ही माना गया है। क्योंकि यज्ञम् भूषणाम् प्रतप्रने गीत वन्दना ममः मुनिवरों जैसे मौलिक जगत ! मेंहम यज्ञ में परणित होते है। इसी प्रकार हमारा आध्यात्मिक और आन्तरिक जिसे कहा जाता है वह एक यज्ञ रूप ही माना गया है। हमारे यहां परम्परा से ही उस मनोहर प्रभु की महिमा का गुणगान और उस मनोहर वेदवाणी में जो आनन्द कहलाया गया है, जो आनन्द का स्रोत माना गया है।

आज मैं उन वाक्यों को प्रगट कराता चला जाऊं। हमारे यहां परम्परा से ही वह हृदय रूपी सुन्दर यज्ञवेदी है जिसमें योगीजन ध्यानावस्थित हो जाते हैं। इसी प्रकार जो याज्ञिक पुरूष होते हैं तो मुनिवरों हमें वास्तव में याज्ञिक बनना है। क्योंकि जगत में ! हम बाह्य और आन्तरिकदोनों का मिलान करना चाहते हैं जहां हमारा यह विचार परम्परा से रहा है कि हमारे यहां वेदों का जो ज्ञान है वह आनन्दमय कहलाया गया है।

मुनिवरों यज्ञशाला में चार स्थान होते हैं। सबसे प्रथम ब्रह्मा का होता है। उसके पश्चात ! अध्वर्यु और यज्ञमान का होता है। परन्तु हमारे यहां अध्वर्यु की बड़ी सुन्दर मीमांसा आती है। अध्वर्यु उसे कहते हैं। ऊर्ध्वा गति हो जिसकी जो अपने ब्रह्मचर्य व्रत से रहने वाला हो। जिसका उद्गम और ऊर्ध्वा विचार हो, यह इदन्नमं सदैव उच्चारण करने वाला हो। क्योंकि इदन्नमं का अभिप्रायः यह कि संसार में मैं उच्चारण करने का अधिकार हमें किसी भी काल में नही होता, हमारे यहां जो इदन्नमं वाक्य उच्चारण किया जाता है, इसका आशय यह है कि संसार में कोई वस्तु किसी की हो नही पाती। क्योंकि यदि हम ब्रह्मवेत्ताओं के समीप जाते हैं, और ब्रह्म और ऊँचे वैज्ञानिक रूपों से क्या हम दार्शनिक रूपों से इसका निरूपण करना चाहते हैं, और यह विचार विनिमय करना चाहते हैं कि सर्व सम्पदा मेरी भी नही हैं। क्योंकि इस सम्पदा का जो स्वामित्व है, यह जो सम्पदा है, इदन्नमम्। यह मेरी नही हो सकती। क्योंकि यह जो भी कुछ है। यह यज्ञ रूप माना गया है। क्योंकि सभी यज्ञ रूप माना गया है। जो ऐसे विचारों वाला है,

उसे अध्वर्यु बनाया जाता है। यज्ञशाला में क्योंकि उसके मन में उसके हृदय में कितनी व्यापकता होती है। उसके मन में धारणा होती है कि यह सब कुछ मेरा नही हो सकता। जो भी कुछ द्रव्य पदार्थ है, औषधि पदार्थ है, यदि इसके मूल विचारा जाएगा इसका मूल क्या है? इसकी उत्पति क्या है? तो मुनिवरोंदेखो !, उत्पति और उसका जो विनाश है, वह केवल हमें आभास मात्र प्रतीत हो रहा है। हमारे यहां जैसे कहा जाता है कि औषधियों का मूल कौन है? तो कहा जाता है, जल है। जल का मूल कौन है? अग्नि है। अग्नि का मूल कौन है? वायु है। वायु का मूल अन्तरिक्ष को माना है। तो मुनिवरों ! जो अन्तरिक्ष से सुन्दर वृष्टि होती है। इसी से नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म होता रहता है। इन औषधियों को एकत्रित किया जाता है। उन्हीं के द्वारा यज्ञशाला में अध्वर्यु औषधियों का स्वामीवत बन करके उसको अच्छी प्रकार वितरण करता है। और उसको इदन्नमम् सब को यज्ञ रूप स्वीकार करके सब को ही अर्पित कर देता है। जो जैसे जिसका भाग होता है।

हमारे यहां ऐसा माना गया है, हमारे मानव शरीर में बेटा एक समान नाम का प्राण ! होता है। उसका सम्बन्ध उदान नाम के प्राण से होता है। जब उदान नाम का प्राण उसको त्याग देता है, त्याग देने के पश्चात उस प्रतिभा में रमण करने लगता है, जो ज्ञान की कृतिका कहलाई गई है, वह उसको अपने में ही अर्पित स्वीकार करता हुआ, उसको अपने में परणित कर लेता है। मुनिवरोंजैसा उसकी मौलिकता है। व !ैसे उसका वितरण भी माना गया है। जब सामान्य प्राण की मुनिवरोंदेखो !, उदान त्याग देता है। तो उदान अपना वितरण करने वाला अध्वर्यु का कार्य करता है। इसी प्रकार यज्ञशाला में जो अध्वर्यु होता है। उसका एक महान और पवित्र आसन कहलाया गया है। जो त्याग ओर तपस्या में परणित होता है। जिसकी भावना में एक वेदोक्त वार्त्ता प्रगट रहती है। वह संसार में एक महान कहलाया गया है।

तो मेरे प्यारे केवल मैंने कल के इससे पूर्व शब्दों में उच्चारण करते हुए कहा !ऋषिवर ! था कि मेरी बालिका यह कहा करती थी कि यज्ञशाला में भगवान अध्वर्यु कौन होता है? मैंने उसका उच्चारण करते हुए कहा कि जो द्रव्य का सामग्री का स्वामी होता है।

नाना प्रकार की जो सामग्री होती है। **औषधियों का जो समूह होता है। उनका नाम ही तो सामग्री कहा जाता है।** उसका जो अधिपति होता है, उसका अध्वर्यु कहा जाता है। जैसे परोपकार के लिए वनस्पतियों का जन्म होता है। ऐसे ही जो अध्वर्यु होता है, उसका भी ऐसा ही विचार होता है। ऐसा ही त्याग होता है। उसका अपने लिए कुछ नही होता इदन्नमम् में उसकी प्रवृत्ति परणित हो जाती है।

मेरी बालिका ने कहा कि भगवन्देखो !, मैं इससे सन्तुष्ट नही हूँ। इतनी विवेचना से मेरे हृदय से सन्तुष्टि नही हुई। जब मुनिवरोंकहा कि अध्वर्यु कहते हैं !, जो मानव नाना प्रकार की औषधियों को परमात्मा का मूलक स्वीकार करता है। परमात्मा का मूलक स्वीकार करके और उनमें स्थूलत्व है, और उनमें जो सामगस्रवे है वह सब परमात्मा को स्वीकार करके जो अर्पित करता है, जैसे ब्रह्म का यज्ञ हो रहा है, इसी प्रकार वह यज्ञ में साकल्य को अर्पित कराने वाला कहलाता है। इसीलिए उसको हमारे यहां अध्वर्यु कहा जाता है।

बालिका ने कहा कि कदापि नही भगवन मैं इसको स्वीकार नही कर पाऊंगी। क्योंकि ! मेरा हृदय इससे भी सन्तुष्ट नही हुआ है। जब यह कहा गया कि अध्वर्यु उसे कहा जाता है। जो उदगादप्रवे गच्छतम् ब्रह्म जो आत्मवेत्ता आत्मा ज्ञान में जो नाना प्रकार की इन्द्रियाँ है। इनको और बाह्य जगत की जो सामग्री है, इन दोनों विषयों को सामग्री बना लेता है। जैसे अपने विषयों की सामग्री बनाई जाती है। उसके अनुकूल वस्तुओं की सामग्री बना करके उसको ज्ञान रूपी अर्थात आत्मा रूपी अग्नि में ब्रह्म रूपी अग्नि में ब्रह्म ज्ञान रूपी प्रदीप्त अग्नि का जो प्रवाह चल रहा है। उस अग्नि में जो आहुति अर्पित करने वाला है। उसी को हमारे यहां अध्वर्यु कहा जाता है। इसीलिए हमें स्वीकार कर लेना चाहिए कि जो ब्रह्मवेत्ता होता है, ब्रह्म में जिसकी निष्ठा होती है। जिसको ऊर्ध्वा गति बन जाती है। उसे हे पुत्री संसार में ऊर्ध्वा गति वाला हमारे यहां अध्वर्यु ! कहा जाता है।

मेरी बालिका ने कहा प्रभु इससे मेरी सन्तुष्टि नही हुई। मैं और भी !कुछ चाहती हूँ। इसकी विवेचना करते हुए उत्तर मैं और भी कुछ चाहती हूँ। इसकी विवेचना करते हुए

उत्तर में आया कि हे बालिका अध्वर्यु उसे कहते हैं जिसका व्यापक हृदय हो जाता ! है, जैसे नाना प्रकार की वनस्पतियां हैं, और वे संसार में दूसरों के लिए हुआ करती हैं। अपने लिए इदन्नमम् में वे सन्तुष्ट रहते हैं। इसी प्रकार जो अध्वर्यु होता है। वह ब्रह्मवेत्ता बनता हुआ ब्रह्म में परणित होता हुआ, अपनी जो इन्द्रियों पर भी मेरा कोई अधिकार नही हैं। इनसे तो मुझे अपने कर्तव्य का पाला करना है। इन की सामग्री बना करके इनके विषयों को यज्ञशाला में आहुति देने वाले को हमारे यहां कहा जाता है।

तब बालिका ने कहा प्रभु आप तो एक वाक्य को रूपान्तर करते रहते हैं। उसी वाक्य ! को किसी न किसी रूप से लाते रहते हैं। मुझे तो कोई नवीन व्याख्या कीजिए। वेद जैसा वेदमन्त्र में आया !इसकी तब मुनिवरों, वेद ने कहा अध्वर्यु घृतानम् ध्रुवं गच्छन्तु रुद्रो हे बालिकाअध्वर्यु उसे कहा जाता है !, जो यज्ञमान ब्रह्मा होता इन सब की प्रवृत्तियों को जानता हो, वह ब्रह्मत्व में रमण करने वाला हो। ओर ब्रह्म में जिसको निष्ठा हो गई हो हृदय जिसका अगम्य बन गया हो, उसी को हमारे यहां अध्वर्यु कहा जाता है।

बालिका ने कहा प्रभुइससे मेरी सन्तुष्टि नही हुई। जब वहां एक वाक्य आया !, तो बालिका तुम निर्णय कर दो कि हमारे यहां अध्वर्यु किसे कहा जाता है? क्योंकि मैं तो इतना ही जानता था। इतना मैंने निर्णय कर दिया है। परन्तु तब बालिका ने कहा कि प्रभुमुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि अध्वर्यु उसे कहते हैं !, संसार में जिसके द्वारा किसी प्रकार का भी भय नही होता और उसके लिए प्राणीमात्र एक हो आत्म देखो, सर्वे भूतेषु बन जाता है। मुझे तो कुछ ऐसा प्रतीत होता है। मानो देखो, जब यह वाक्य आया कि सर्वे भूतेषु मानो जो सब भूत प्राणियों में एक ब्रह्म की चेतना स्वीकार करने वाला हो, इसको हमारे यहां अध्वर्यु कहा जाता है। यह मुनिवरोंदेखो !, यह वाक्य उच्चारण करके शान्त हो गए।

द्वितीय वाक्य आया कि भगवन संसार में हमारे यहां यज्ञशाला में यज्ञवेदी पर ! विराजमान होने वाला जो उद्गाता है। जो उदगान गाता है, उद्गाता किसे कहा जाता है? तब मुनिवरों कहा कि उद्गाता कहते हैं कि जो गान गाता है। गान गाने वाला है। वेदों !

का स्वर सहित, जटा पाठ, घन पाठ, माला पाठ, विसर्ग का पाठ उदात्त और अनुदात्त आदि नाना प्रकार से जो वेदमन्त्रों का पठन पाठन करता है। वह हमारे यहां उद्गाता कहलाया गया है।

उन्होंने कहा भगवन और कोई इसकी मीमांसा हो। यह कहा कि उद्गाता उसे कहा ! जाता है, जो उदगान गाने वाला हो। जो ऊर्ध्वा गति वाला गान गाने वाला हो। ध्रुवा नही जो ऊर्ध्वा गति वाला गान गाने वाला हो। कैसा गान? जैसे परमपिता परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में ऋत और सत के ऊपर अपना विचार व्यक्त किया था ऋत और सत दोनों ही उसमें परणित रहे। दोनों में उसको विचित्रता सदैव विराजमान रही। उसी को हमारे यहां उद्गाता कहा जाता है। जो उदगान गाने वाला हो जो उद्गमता देने वाला हो उद्गमन्मे व्रतानम् जो आत्मा से और हृदय से गान गाता है। क्योंकि आत्मा का हृदय का हो गान होता है। वह मुनिवरोंदेखो !, पक्षियों के अन्तःकरण को भी पवित्र बना देता है। हे पुत्रीमुझे स्मरण आता रहता है !, एक समय देखो, महर्षि सोमकेतु ऋषि महाराज ने यह विचारा कि मैं यज्ञ करूंगा। परन्तु जब यज्ञ करने के लिए विचार विनिमय बनाया, उन्होंने पर्वतों में से नाना प्रकार की औषधियों को एकत्रित किया। सामग्री बनाई, सामग्री बना करके उनके द्वारा एक कामधेनु गो थी। उसका घृत इत्यादि एकत्रित किया, जब यज्ञ करने के लिए तत्पर होने लगे तो उन्होंने जब यज्ञ में उदगान गाया तो उसमें वहां कोई होता नही था। और वहां कोई और भी ब्रह्मा नही बना। वहां केवल देखो, महान ऋषि का उपदेश चल रहा था। और वह भयंकर वनों में सामग्री से यजन कर रहा है। परन्तु साकल्य को आहुति दे रहा है। उस आहुति को वह जो उद्गाता के वचनों को वेदवाणी को हृदय में ही जो वाणी का उच्चारण किया जाता है। वहां मृगराज आ गए। और यज्ञशाला में सुगन्ध को ग्रहण करने वाले जब मृगराज आ पंहुचे तो उसका हृदय बड़ा प्रसन्न हुआ। ऋषि ने कहा कि आज तो मेरा हृदय बहुत प्रसन्न हो रहा है। यह विचार उनके मस्तिष्क में महता से ओत प्रोत थे। और वह पक्षीगण मुग्ध भी हो गये। अहा यज्ञ हुआ क्योंकि वहां वृष्टि यज्ञ किया। वहां उनका जो हृदय का उच्चारण किया ! हुआ जो वचन है। वह पक्षीगणों को ही नही, प्रकृति में उसकी वेदना प्रगट होती।

उसकी सुगन्ध के द्वारा देवता भी उसे सहन नही कर सके। देवताओं ने इसी समय मेघों से वृष्टि का प्रहार मानो मेघों से उत्पति हो गई, जलों का उत्थान हो गया, अहा, सुन्दर वृष्टि हो गई। वृष्टि हो जाने के पश्चात यह विचार आया कि यह उद्गाता कैसा है। जिसने उदगान गाया।

मेरी बालिका ने कहा हे प्रभुमैं यह जानना चाहती रहती हूँ। कि हृदय का उदगान तो ! सभी उच्चारण करते है। एक मेरी प्यारी माता है, परन्तु वह अपने स्नेह और पूर्ववत अपने प्यारे बालक को व्याकुल हुए को लोरियों का पान करा देती है। तब वह बालक शान्त हो जाता है। शान्त हो जाने के पश्चात उसको द्वितीय विडम्बना होती तो भगवन मैं यह ! जानना चाहती हूँ। कि क्या यह जो मृगराज या पक्षीगण हैं। उनका हृदय कैसे तपा हुआ होता है? और इस प्रकार का गान गा करके सभी प्रभावित हो जाते है। और सान्त्वना को प्राप्त होते हैं। उस समय उसका उत्तर देना हमारे लिए स्वाभाविक बन गया था। हे बालिका मानव के हृदय को तपाया जाता है। किससे !तपाया जाता है ध्यान ? !और तप के द्वारा तपाया जाता है। यौगिक क्रियाओं के द्वारा तपाया जाता है। मुनिवरों देखो, कैसे तपाया है? जैसे मेरी प्यारी माता अपने गर्भस्थल में, अपने उदर में बालक को तपा देती है। कौन माता तपाती है? जो माता सुयोग्य होती है वह माता अपने बाल को गर्भस्थल में विचारों से तपा देती है। आहार और व्यवहार से तपा देती है। वह कैसे तपाती है ब्रह्म का चिन्तन करती है। ब्रह्म का चिन्तन करते हुए अपने बालक को वह ? तुम्हें यह ज्ञान होना !अपने उदर में ऊँचा बना देती है। इसी प्रकार हे मेरी बालिका चाहिए। क्या इसी प्रकार मानव के हृदय को महापुरूषों के द्वारा तपाया जाता है। जैसे माता अपने उदर को तपाती है। गर्भस्थल में तपा देती है। बालक को इसी प्रकार मुनिवरोंदेखो !, महापुरूषों के सत्संग में ही वह ब्रह्मचारी तप जाता है। जिसका हृदय इतना महान और पवित्र बन जाता है। वह मृगराज उसके आधीन बन जाते हैं, और पक्षीगण भी मुग्ध हो जाते हैं। उसका कारण यह होता है कि जिस मानव की ऊर्ध्वा गति बन जाती है। ब्रह्मचर्य से ऊर्ध्वा गति बन जाती है, क्योंकि ऊर्ध्वा गति वाला जो ब्रह्मचारी होता है। उसकी वाणी में उसके मस्तिष्क में उसको प्रत्येक इन्द्रियों में एक

भोलापन आ जाता है। उस भोलेपन में ही उसके ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वा बन जाती है, और कैसा भोलापन आ जाता है? वह क्या उस ब्रह्मचारी के लिए एक देवकन्या है, वह माता के तुल्य है। उसका मातृत्व ही आभूषण बन जाता है। क्योंकि वह सभी संसार में उस परमपिता परमात्मा में ही आनन्दमयी जो माता है। उसे दृष्टिपात करने लगता है। उसके ब्रह्मचर्य की गति ऊर्ध्व बन जाती है। इसीलिए हे पुत्रों उसे उद्गाता कहा गया है। ! क्योंकि जब उद्गम् गाता है, तो वह तपाया जाता है। किसके द्वारा तपाया जाता है? मस्तिष्क को तपाया जाता है।

मेरी बालिका ने कहा क्या मैं यह जानना चाहती हूँ, यदि मैं गृहाश्रम में प्रविष्ट हो जाऊं, तो क्या मैं अपने बालक को तपा सकती हूँ परन्तु यह वाक्य मेरे लिए उत्तर देना ? यह जो जगत में सभी प्रकार का !सहज नही था। तब यह कहा गया हे बालिका व्यापार का कार्य प्रायः होता रहता है। **परन्तु ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए किसी ब्रह्मवेत्ता के सुकृत की आवश्यकता होती है।** जिससे वह तप में बनाया जा सकता है तो मेरे प्यारे ! क्योंकि वह वाक्य एक बड़ा जटिल था जटिल होने के नाते उसका उत्तर नही !ऋषिवर क्या मैं उद्गाता उ !बन सका। उन्होंने कहा तो क्या भगवनसी को स्वीकार कर लूं, जो संसार में दो अपने ब्रह्मचर्यव्रत से रहता है। जो उदगान है, वेदों में जिसकी निष्ठा होती है। वेद किसे कहा जाता है, जिसके हृदय में प्रकाश होता है। आनन्दमय होता है। मानो देखो, उसी को उज्ज्वल बनाया जाता है। बेटामुझे स्मरण है !, तुम्हें स्मरण भी होगा कि जब महाराजा अश्वपति के यहां यज्ञ हुआ था या महाराजा कुडीलक राजा के यहां यज्ञ हुआ था, उसमें बेटादेखो !, अध्वर्यु और होताजन कैसे ऊँचे ब्रह्मचारी ही कहलाऐ जाते हैं। क्योंकि जिनका ऊर्ध्वागति वाला हृदय हो और परमात्मा उज्ज्वलता में निष्ठा हो। अहा, हमारे यहां परम्परा से ही उस महान प्रभु की महिमा का गुणगान गाना और अपने हृदय को तपाना हमारे लिए बहुत अनिवार्य है। जैसे यज्ञमान का हृदय तपा हुआ होता है। इसी प्रकार उसका जो कर्मवाद है। उनका भी हृदय तपा हुआ होना चाहिए। क्योंकि उसी से यह संसार यह महता ऊँची बना करती है। जिसको बेटा हम !

दृष्टिपात कर रहे हैं।

मेरे प्यारेमहानन्द जी मुझे कुछ प्रेरणा दे रहे हैं। आज प्रगट कराना चाहते हैं !, इनका तो विचार है कि बालकम् ब्रह्मे लोकाः कि किसी किसी माता का पुत्र यदि गृह से पृथक हो जाएं तो देखो, वह गृह उज्वल प्रमाणा गच्छन्ति रुद्रो अस्वतम् कैसी प्रकृति में जाने के पश्चात उसकी वह हननता को प्राप्त हो जाता है। तो मुनिवरों आज मैं इसका उत्तर ! क्या दे सकता हूँ। क्योंकि इसका तो उत्तर यही हो सकता है, हमारे सूर्य सिद्धान्त के अनुसार प्राण की गति के सिद्धान्त में कुछ ऐसा माना गया है कि जब स्वर के साथ अपने श्वासों के साथ में प्राण के सञ्चार यदि चन्द्रमा की प्रतिभा रमण करने वाली होती है, तो मानो देखो, उसमें जैसे हमारे यहां पुष्प नक्षत्र होता है। शोभनी नक्षत्र होता है। दोनों को यदि उसमें पुट होती है, यदि मेरी प्यारी माता का बालक माता से पृथक हो जाता है। तो वह बालक माता को द्वितीय प्राप्त नही होता। इसीलिए क्योंकि उसमें ऐसा हमारे यहां कुछ प्रकृति के विशेषज्ञ आचार्यों ने इसी मीमांसा की है।

मेरे प्यारे महानन्द जी यह उच्चारण तो कल किया जा सकेगा। आज तो केवल मैं ! उच्चारण यह कर सकता हूँ। कि माता अपने बालकाण्डन ब्रह्मे मन वचतम ब्रह्मे लोकः जिस माता के गर्भस्थल में मानो जैसे जेठाय नक्षत्र और पुष्प नक्षत्र है। दोनों का मिलान होता है। और उस समय सूर्य सिद्धान्त के अनुसार कृतिका नक्षत्र उसके गर्भ में रहने वाला हो, यदि उस समय माता के गर्भस्थल की स्थापना हो जाती है तो वह बालक सदैव कष्ट में पंहुचाता रहता है। वह बालक उस माता को सुखद किसी काल में बना नही सकता। इसीलिए हमारे यहां देखो, यह वाक्य प्रायः आता रहा है। मैं आज इस विज्ञान पर मानो देखो, प्रकृति विज्ञान पर नही जाना चाहता हूँ। कल मेरे प्यारे ! महानन्द जीप्रश्न करेंगें तो इसका उत्तर मैं कल ही दे सकूंगा।

केवल उच्चारण करने का अभिप्रायः तो अब यह है कि हम यज्ञ के सम्बन्ध में अपना कुछ वाक्य प्रगट कर रहे थे याग के सम्बन्ध में भी अपना कुछ विचार देते चले जा रहे थे, हमारे यहां परम्परा के आधार पर ऐसा माना गया है कि मानव को तपना चाहिए। अहा, उद्गाता उसे कहा जाता है, जो उदगान गाता है। हृदय से गाता है, और ब्रह्म में

लीन होकर गाता है। वह जो गायन होता है वह ब्रह्मवेत्ताओं के लिए महान लाभप्रद होता है। आनन्दमय बनाता चला जाता है। जिसको हमें सदैव विचारना है और महता को लाने में हमें सदैव उज्ज्वलता को प्रगट करना है। यह बेटा आज कोई विशेष चर्चा ! जितना !प्रगट करने नही आया हूँ। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह है बेटा भी यज्ञवेदी में तपा हुआ महान पुरूष होता है, तपे हुए ब्राह्मण होते हैं तपा हुआ यज्ञमान होता है। उतना ही यज्ञ महता को प्राप्त होता रहता है। बेटा मानव की वाणी जितनी ! तपी हुई होती है। उतना उस मानव का व्यापार सुन्दर होता है। जितना आहार सुन्दर होता है उतना उसका व्यवहार सुन्दर होता है।

मेरे प्यारे कल एक वाक्य बहुत सुन्दर प्रगट कर रहे थे कि जो मानव !महानन्द जी ! मांस का भक्षण करने वाले हों वह मानव योग पर पंहुचना चाहते हैं। तो यह असम्भव वाक्य है। क्योंकि मेरे प्यारे महानन्द जी एक ही मन्तव्य था मैं इनके अन्तःकरण की ! वार्त्ता कल जान गया था कि इनके द्वारा यह वाक्य कहां से आते हैं, ये कहां से संसार की वार्त्ता को ले आते हैं? हम इसको जान नही पाते परन्तु इनके सब वाक्यों का विचार यही था कि जो मानव यम नियम का पालन करने वाला नही होता, प्राणायाम की गति जिसकी गति नही होती, उसका हृदय मानवता तपी हुई नही होती, तो वह मानव संसार में योगी नही कहलाया जाता।

हमारे यहां जो यौगिक सिद्धान्त है, परम्परा का जो सिद्धान्त है, वह मानवता से सदैव सुगठित रहा है। क्योंकि मैं यह जानता रहता हूँ कि मन को कैसे साधक बनाया जाता है। प्रवृत्तियों को कैसे साधना में लाया जाता है। मुनिवरों मुझे स्मरण आता रहता है ! हमारे यहां परम्परा से योग के ऊपर बड़ा विवरण आता रहा है योगकी मीमांसा यह है। हमारे यहां मन और प्राण दोनों के मध्य में जो अन्तर्द्वन्द्व होता है, उसी को नष्ट करने का नाम योग कहलाया गया है। क्योंकि जो मत विक्षेप आवरण आदि होते हैं और मल, विक्षेप, आवरणों की जो मीमांसा है। उसमें प्रश्न होता है कि ये मल विक्षेप आवरण जो मानव के अन्तःकरण में आ जाते हैं। वे कैसे नष्ट होते हैं? और कैसे उन्हें नष्ट करना चाहिए। मुनिवरोंदेखो !, उसमें साधना की आवश्यकता होती है, और साधक

कौन होता है? साधक वह होता है, और जिसके द्वारा संयम करने वाला होता है। जिसके द्वारा संयम करने वाला नही होता। और जिसके द्वारा संयम नही होता बेटा ! वह संसार में साधक नही कहलाया जाता। जिसके प्राण की गति में ब्रह्मचर्य का मिश्रण हो करके, ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वागति बन जाती है, उसी समय मन और प्राण दोनों की सन्धि हो जाती है, दोनों की सन्धि में रमण करने वाला जो महापुरूष होता है, वह बेटा इस भौतिक जगत में विचलित नही होता। !

विचलित कौन प्राणी होता है? वह विचलित होता है जो अपने उदर के लिए क्या अह अपने जीवन को एक महान उदर का एक कृतिक बना लेते हैं। साधन बना लेते हैं बेटा वह संसार में यौगिक परम्परा को किसी काल में ला नही सकते। हमारे !यहां परम्परा से ऐसा कहा गया है।

मेरे प्यारेमहानन्द जी बड़े धूर्त हैं !, परन्तु ये धूर्त क्यों हैं, क्योंकि यह संसार की प्रत्येक वार्त्ता को मेरे द्वारा एकत्रित कर देते हैं। अब मैं उसका उत्तर कहां तक दिए जाऊं। केवल उत्तर हमारा यही है मैं यही वाक्य प्रगट अवश्य करना चाहता हूँ। कि संसार में बेटा योगी तो केवल कन्दराओं में रहने वाला होता है। और कन्दराओं में रहने वाला ! होता है, और कन्दराओं में ही साधक चले जाते हैं। कन्दराओं में ही राजा महाराजा चले जाते हैं। परन्तु देखो, अहा, मुझे स्मरण आता रहता है कि बेटाभयंकर व !नों में महर्षि भारद्वाज आश्रम में था पर्वतों में उनका कैसा आश्रम? केवल वहां एक सूक्ष्म सा प्रबन्ध था वहां सुन्दर यज्ञशाला थी। जिसमें नित्यप्रति यज्ञ करते, और उसी में वे अपने शिष्यों को निर्माणशाला में वैज्ञानिक परमाणुओं से सम्बन्ध में कुछ वाक्य प्रगट कराते रहते थे। महर्षि भारद्वाज एक महापुरूष होने के नाते मानो उनके द्वारा सब प्रकार की पुनीत विद्या का निर्माण मानो क्रियात्मक होता रहता था। **देखो, यहां महाराजा सूर्य वन्द माम केतु ऋषि राजा उनके आश्रम में पंहुचे। उनकी ख्याति को पान करते हुए अह महर्षि भारद्वाज को जाकर नतमस्तक हो गये। नत मस्तक हो करके राजा ने कहा कि महाराजमैं कुछ द्रव्य देना चाहता हूँ। उन्होंने कहा द्रव्य क्यों देना चाहते हो !? महाराज आपके उदर की पूर्ति के लिए, आपकी साधना के लिए। उन्होंने कहा कि जो प्रारब्ध**

है, वह हमसे दूर नही जाएगा। क्योंकि यहां नाना प्रकार की औषधियों का पान करते रहते हैं, उन्हीं के पान से हमारे उदर की पूर्ति होती रहती है। मुनिवरों वे ब्रह्मचर्य ! आश्रम में परणित हुए। परन्तु राजा ने बहुत सा द्रव्य फिर भी प्रदान किया परन्तु भयंकर व !वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि संसार में बेटानों में भी ऋषि महापुरूषों के द्वारा राजा महाराजा अपनी आत्मिक शान्ति के लिए चले जाते हैं। परन्तु आत्मिक शान्ति उस काल में प्राप्त होती है। जबकि उसका स्वयं का मस्तिष्क भी ऊँचा महता हो। किसी प्रकार की विडम्बना न हो। देखो, वही तो संसार को ऊँचा बनाता चला जाता है। उसके पश्चात बेटा मैं अधिक वाक्य प्रगट नही करूंगा। !

वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि हम यौगिक परम्परा में जाना चाहते हैं, यौगिकता को लाना चाहते हैं। मेरे प्यारे महानन्द जी एक वाक्य और उच्चारण कर ! रहे थे कल, कि संसार में देखो, धार्मिकता होने के नाते भी यह संसार दुःखित हो रहा है? एक यह प्रश्न है, परन्तु मैं इनके प्रश्नों का उत्तर देता ही रहूँगा। कोई बात नही परन्तु इसका उत्तर केवल यह है कि संसार में सबसे प्रथम साधारण प्रजा की अशान्ति का कारण राजा होता है। जब राजा के यहां स्वार्थ आ जाता है, राजा के यहां त्याग और तप नही रहता, राजा के राष्ट्र की जो प्रजा होती है, वह भी बिखरी हुई होती है। उसमें भी महता किसी काल में नही आती। इसके पश्चात द्वितीय कारण जो धार्मिक पुरूष होते हैं। धार्मिक पुरूषों में जब द्रव्य एकत्रित करने की प्रवृत्ति जब आ जाती है। वहां भी मुनिवरोंदेखो !, प्रजा ने अशान्तिवाद आ जाता है। रहा देखो, द्वितीय वाक्य यह भी है कि ब्रह्मे लोकः एकत्रम् ब्रह्मे व्यापकम् जो द्रव्य का दुरूपयोग करने वाले धार्मिक पुरूष होते हैं। **जो सन्यास आश्रम में जाने के पश्चात अपने को सन्यासी उच्चारण करते हैं। परन्तु वह प्रजा के कामधेनु के द्रव्य को वह दुरूपयोग करते है, तो उनको देखो, सात प्रकार का नरक प्राप्त होता है।** ऐसा हमारे यहां परम्परा से माना है। मानो देखो, वह द्रव्य का दुरूपयोग कैसे होता है। सन्यासी के लिए जब उसकी प्रवृत्तियों में यह आ जाता है कि तेरे द्वारा दिखावा होना चाहिए। और कैसा दिखावा हो कि मानो तू अहा कितना महागुप्त हो रहा है। जब ऐसी प्रवृत्तियां आन्तरिक बन जाती है, वह आन्तरिक

प्रवृत्ति प्रजा में अविश्वास का कारण बन करके वही धार्मिकता को नष्ट करती चली जाती है। क्योंकि उससे धार्मिकता ऐसे नष्ट हो जाती है क्योंकि भूमि के तुल्य वह वाक्य प्रायः प्रगट होते रहते है। इसके पश्चात मैं यह वाक्य प्रगट करने नही जा रहा हूँ।

वाक्य केवल यह उच्चारण करने का अभिप्रायः हमारा यह है कि जब धार्मिक पुरूषों में केवल अपना स्वार्थ पूर्व है, और प्रजा के लिए लाभ का कोई वाक्य कोई शब्द उसके पश्चात है। तो उस राजा के राष्ट्र में या प्रजा में धार्मिकता होते हुए भी अधार्मिकतता रहती है। उसमें शान्ति के स्थान में अशान्ति प्रजा में आ जाती है, एक मूल कारण होता है जिसके ऊपर हमें प्रायः विचार विनिमय करना है। इसके पश्चात वह क्यों कि यथार्थ वाक्य प्रगट नही कर पाते। राजा के राष्ट्र में जब द्रव्य का उदर में अजीर्ण हो जाता है, उस अजीर्ण के कारण संसार में अशान्ति रहती है। अजीर्ण किसको कहते है। जिस राजा के राष्ट्र में वैश्य होते हैं। और वैश्यजन द्रव्य को एकत्रित कर लेते हैं, और एकत्रित करके उस राजा के राष्ट्र में अजीर्ण का कार्य करते हैं। अजीर्ण आ जाता है। तो द्रव्यपतियों के आधीन रहने वाली जो प्रजा होती है। उनके मस्तिष्कों में अशान्ति होती है। क्योंकि जो अजीर्ण होता है, वह उस काल में होता है जबकि दूसरों के अधिकार को एकत्रित किया जाता है। जैसे मानव के शरीर में जब भी किसी काल में अजीर्ण होगा तो उस काल में होगा जब यहां वितरण करने का जो कार्य है, वह शान्त हो जाएगा। वह एक समय रक्त भरी क्रान्ति लाने का एक मूल कारण बन जाता है। इसी प्रकार हमें इन वाक्यों को विचार विनिमय कर लेना चाहिए। जिससे आज हम अपने जीवन की प्रतिभा को ऊँचा बनाते रहें।

सन्त महात्मा हमारे यहां ऋषि महर्षियों का जो एक महान मुख्य लक्ष्य होता है, वह इसी लिए होता है, उनका सामूहिक उपदेश होता है और अजीर्ण होने के लिए मानो वह एक औषध होता है। परन्तु देखो, उस काल में अजीर्ण कदापि शान्त नही होता। जब करने के वह आग्नेय वस्त्र को धारण करने के पश्चात भी एक द्रव्यपति सन्यासी का एक द्रव्यपति के द्वारा सत्य वाक्य कोई प्रगट नही कर सकता। वितरण की वार्त्ता नही उच्चारण कर सकता। तो मानो देखो, वह सन्यासी या सन्यासी या गरेऊ वस्त्र धारण

करने वाला इसीलिए नही उच्चारण करता। क्योंकि वह स्वयं उसकी आत्मिक शक्ति से ही उसका ह्रास हो गया है। वह इसीलिए यथार्थ वाक्य उच्चारण करने के लिए भयभीत रहता है। क्योंकि वह राजा के राष्ट्र में अजीर्ण को दृष्टिपात करना चाहता है। राजा के राष्ट्र में सबसे प्रथम अजीर्ण हो जाता है, उस अजीर्ण का प्रभाव है, उसमें अशान्ति रहती है। प्रजा में शान्ति उत्पन्न नही होती।

आज का हमारा यह वाक्य भी समाप्त होने जा रहा है। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः हमारा क्या था? आज मेरे प्यारेमहानन्द जी के प्रश्न तो बहुत कुछ हैं !, परन्तु इनका उत्तर मैं कल अवश्य दे सकूंगा। कल मेरे प्यारे महानन्द जी भी अपनी कुछ वार्त्ता ! प्रगट करेंगें। आज का हमारा विषय क्या है? कि अध्वर्यु और उद्गाता किसे कहा जाता है मेरी बालिका ने जब यह कहा कि उद्गाता कौन है तो यह कहा कि उद्गाता ? जो हृदय से उद्गम् गान गाता है। जीवन का गुणगान गाता है यथार्थवत वाद प्रगट कराता रहता है। उसी को हमारे यहां उद्गाता कहा जाता है। आज हम उद्गाता और अध्वर्यु के सम्बन्ध में अपने विचार देते चले जा रहे थे जिसका उदगान इतना विचित्र हो कि परमात्मा तक उनके जाने वाला विचार हो, उसकी को उद्गाता कहा गया है और वह यज्ञमान को श्रेष्ठ बना देता है। यज्ञमान उसी उद्गाता को चुनता है। यह आज का वाक् अब हमारा समाप्त हो गया हैं, कल इनका विचार बहुत सुन्दर कटुता को त्याग करके प्रारम्भ होगा आज का वाक् समाप्त।

६ 20 02 1970 पुष्प 21 मांसभक्षण विषय तथा महानन्द द्वारा लाक्षागृह के इतिहास

मानव जीवन सर्वोत्तम है। वेद ज्ञान से मानव जीवन सुन्दर बनता है। परमात्मा मानव को सचेत करता है। 2 मानवता से गुथे हुए मानव जीवन पर सदा विचार विनिमय होना चाहिए। 3 मानव को सुखी बनने के लिए अपनी इन्द्रियों का अनुसन्धान करते हुए यौगिक प्रक्रियाओं एवं साधना को करना चाहिए। 4 ब्रह्म चेतना के स्मरण करने से मानव में आत्मवाद की जागरूकता आती है। जागरूकता से महत्ता के दर्शन होते हैं। जीवन में अनुसन्धान के द्वारा मौलिक तत्त्व का जन्म होता है। 5 (क मानव मन तप (

प्रत्येक इन्द्रियों को संयम में रखना ही तपस्या है। (ख) से सुन्दर और महान बनता है। मानव (ग) का आहार तथा व्यवहार सुन्दर होना चाहिए। 6 अहिंसा परमों धर्मः। की वेदी पर आहार को और व्यवहार को शुद्ध करके इन्द्रिय संयम रूप तप की साधना से संसार सुखमय बन सकता है। इसीलिए हिंसामय भोजन साधना में बाधक होता है। इससे मानवता की स्थापना असम्भव है। 8 मांस भक्षण से अन्तःकरण की शुभ प्रवृत्तियाँ दूषित हो जातीं है। मांस भक्षण पापवर्धक है। दूषित अन्तःकरण वाला व्यक्ति भयभीत रहता है। महापुरुषों के जीवन में हिंसा नहीं होती। 9. आज के लोग योग का बहुत थोड़ा सा ज्ञान प्राप्त करके योगी बन जाते हैं। ये लोग गुरुड़मवाद का प्रचार करके अपने उदर की पूर्ति तथा स्वार्थ की सिद्धि करते हैं। 10. धार्मिक होकर भी आत्म विश्वास के अभाव में मानव सुखी नहीं बन सकता। आत्मचेतनावादी महात्मा के सत्संग से आत्मविश्वास होता है। 11 (क महात्मा बुद्ध एवं गुरु नानक आदि अनेक महापुरुषों (ने अहिंसा परमोधर्मः काउपदेश दिया। मानव को अपने मन की पापवृत्तियों का (ख) मानव मन के (ग) बलिदान करना चाहिए। पशुओं का बलिदान नहीं करना चाहिए। 12 संयम से ही साधक बन सकता है। (क महात्मा ईसा ने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन (कर सदाचारी और शान्त रहने, तथा सेवक बनने का उपदेश दिया। रूढ़िवाद ने समाज को नष्ट भ्रष्ट किया है। 13 जीवन संसार में ऊँचा कर्म करने के लिए दया करुणा करने के लिए देवता तथा मानव बनने के लिए आता है, दैत्य बनने के लिए नहीं आता। 14 (क (वारणावत) बरनावा (ख) दूसरों को नष्ट करने वाला व्यक्ति स्वयं नष्ट हो जाता है। (नामक स्थान पर पान्डवों के नाश के लिए कौरवों ने लाक्षागृह का निर्माण किया था। कौरव नष्ट हो जाए। पाण्डव शेष रहे। महाभारत काल में महाराजा अर्जुन तथा (ग) उस (घ) घटोत्कच ने इसी स्थान पर विशाल पुस्तकालय की स्थापना की थी। पुस्तकालय में, सूर्य मण्डल चन्द्र मण्डल और मंगल मण्डल आदि के विज्ञान के ग्रन्थ रखे थे। 16 माता हिडम्बा के तथा पिता भीम के पुत्र महाराजा घटोत्कच की लिखी चौदह सहस्त्र पृष्ठों वाला सुरंगत नामी नाम वाला ग्रन्थ भी यहाँ के पुस्तकालय में था। 17 मंगल ग्रह के विज्ञान विषय पर महाराज अर्जुन का लिखा मंगल केतुक नाम का

ग्रन्थ भी इसी पुस्तकालय में था। 18 (क महाराजा परीक्षित का न्यायालय भी इसी (संकीर्ण विचारों वाले लोगों ने उस पुस्तकालय को भस्म कर दिया। (ख) स्थान पर था। 19. पन्द्रह सौ बाईस वर्ष पूर्व व्यापार वैश्य वर्ग ने यहाँ कूप का निर्माण किया। संकीर्ण विचारों वाले लोगों ने इस स्थान को नष्ट भ्रष्ट किया। 20. साधना के बिना मानव जीवन शून्य के समान है। साधक का आहार तथा व्यवहार दोनों सुन्दर होने चाहिए। साधना से जीवन का निर्माण होता है। 21 महाभारत काल में इस स्थान पर विद्युत पर अनुसन्धान होता था। अब चार हजार वर्ष पश्चात इस स्थान पर विद्युत का आगमन हुआ है। 22 संसार परिवर्तनशील है। 23. अपनी प्रतिभा और अपनी संस्कृति (बुद्धि) 24 को सबल तथा पूर्ण बनाने के लिए अपने ऊपर बल देना चाहिए।. आहार तथा व्यवहार से संसार सुन्दर बनता है।

मांसभक्षण विषय तथा महानन्द द्वारा लाक्षागृह के इतिहास का वर्णन 20 फरवरी लाखा मंडप 1970, बरनावा।

जीते रहोआज हम तुम्हारे समक्ष !मुनिवरों !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। वे भी तुम्हें प्रतीत हो गए होंगे। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण किया जाता है। जो वास्तव में मानतत्व को सुन्दर बनाने वाली है। क्योंकि मानव जगत एक महान कहलाया गया है। जिसके ऊपर हमें सदैव विचार विनिमय करना है, अनुसन्धान करना है। आज हम अपने मानतत्व को सुन्दर बनाना चाहते हैं। मेरे प्यारेह !ऋषिवर !मारे यहाँ आचार्यजनों ने ऋषियों ने वेद के लिए बहुत कुछ सुन्दर अपने विचार दिए हैं। परन्तु उन विचारधाराओं में हमारा जो एक मानवीय जगत् है वह सुन्दर कहलाया गया है। मेरे प्यारे आज का जो हमारा वेद का प्रकाश है !ऋषिवर ! !वह मानव को सुन्दर बनाने वाला है। मेरे प्यारे ऋषिवर हमारे यहाँ उस परमपिता ! सुन्दर बनाने !परमात्मा की प्रतिभा का सदैव गुणगान गाया जाता है। हे आनन्दमय तू हमारे जीवन को उद्बुद्ध करने वाला है। जब हम तेरी प्रतिभा पर विचार !वाले

विनिमय करने लगते हैं तो हमारा जीवन सुन्दर होने लगता है।

मेरे प्यारेश्रा !ऋृषिवर !ज जब हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं कि हमारा जो जीवन है उसमें कितनी सुन्दरताएं श्रौर कितनी महत्ता होनी चाहिए? उसके ऊपर हमारा सदैव विचार होता रहा है। श्राज का हमारा वेदपाठ उस महान पाण्डित्य से युक्त था, जिस परम्परा से वह युक्त रहा है। मेरे प्यारे हमारे !ऋृषिवर !जीवन में एक महत्ता को लाने की सदैव श्रावश्यकता रहती है। क्योंकि हमारे जीवन में जो सूक्ष्मता रहती है, वह हमारी ही धृष्टता होती है। परन्तु उसमें सुन्दरवाद नहीं होता। मेरे प्यारे मुझे !ऋृषिवर ! नाना प्रकार की प्रेरणा देते रहते हैं। उनका विचार विनिमय होता रहता है।जहाँ हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं कि हमारी मानवीय जो संकलित प्रतिभा है, उस प्रतिभा में एक श्रोज होना चाहिए। जिस श्रोज के द्वारा हमारे जीवन में एक मौलिक तत्त्व उत्पन्न हो जाता है। जिस मौलिक चेतना के श्राधार पर हमारे जीवन में एक महत्ता का दिग्दर्शन होने लगता है। तो मेरे प्यारे जब हम यह विचार विनिमय !ऋृषिवर ! करने लगते हैं कि हमारा जो मौलिक जीवन है मानवत्व से गुथा हुश्रा है। हमें उस पर सदैव विचार विनिमय करना है।

श्राश्रो मेरे प्यारे मैं श्राज तुम्हें यह वाक्य प्रकट कराने जा रहा हूँ। हमारे !ऋृषिवर ! यहाँ परम्परा से ही ब्रह्मवेत्ताश्रों के सम्बन्ध में नाना प्रकार की विचारधारा श्रथवा उसका विनिमय होता रहा है। हमारे यहाँ जैसे महर्षि जमद्गि श्राश्रम, महर्षि भारद्वाज श्राश्रम की विवेचना श्राती रहती है। नाना प्रकार की वार्ता जो मानव में मस्तिष्क में प्रायः श्रोत प्रोत रहती है, वह मानवता से ही तो सुगठित रहती है। हमारे यहाँ एक समय महात्मा दधीचि श्राश्रम में सभा हुई महात्मा श्राश्रम में जो ब्रह्मवेत्ता कहलाए जाते थे। श्रश्विनी कुमार क्योंकि श्रायुर्वेद के महापण्डित होने के नाते श्रौषधियों के ऊपर बड़ा उनका श्रनुसन्धान रहा है। ये महर्षि दधीचि के ब्रह्मज्ञान में शिष्य थे। संसार में प्रत्येक वस्तु श्रनुसन्धान चाहती है। कोई भी वस्तु ही, मानव के चक्षु भी श्रनुसन्धान चाहते हैं, घ्राण भी श्रनुसन्धान चाहती है। परन्तु जब हम यौगिक साधना में जाते हैं। उस समय भी हमें श्रपनी प्रवृत्तियों पर श्रनुसन्धान की श्रावश्यकता रहती है। मेरे प्यारेजब हम !ऋृषिवर !

अनुसन्धान की दृष्टि से अन्वेशरा करने लगते हैं, तो उस समय हमें यह प्रतीत होने लगता है कि हमारा जो जीवन है वह वास्तव में महान् पवित्र कहलाया गया है। मेरे प्यारे आज का हमारा वैदिक परिचय यह है कि वेद की प्रतिभा को लाने !ऋषिवर ! के लिए सदैव तत्पर रहें। महात्मा दधीचि के आश्रम में एक सभा हुई जिसमें अश्विनी कुमार इत्यादि विराजमान थे, आदि ऋषिवरों का विचार विनिमय प्रारम्भ होने लगा। मुनिवरोंदेखो !, एक भौतिक तत्त्व से विराजमान रहता था। केवल महात्मा दधीचि ने आदि ऋषियों के समक्ष एक प्रश्न किया। कि यह जो संसार है यह सब प्रकार से सुखद रहना चाहिए। मानव सुखद होने का कारण क्या है? आज मानव कैसे सुखद बन सकता है? कैसे उन्नत बन सकता है? तो मेरे प्यारे यह वाक्य महात्मा दधीचि के !ऋषिवर ! ही द्वारा नहीं महात्मा जमदग्नि इत्यादियों ने इस वाक्य को समर्थन किया। कहा कि वास्तव में विचार विनिमय होना ही चाहिए कि मानव का जीवन कैसे सुखद बनता है? कैसे आनन्द को प्राप्त होता है? तो मेरे प्यारे यह वाक्य उनके विचारों में !ऋषिवर ! था। परन्तु इस समय महर्षि भारद्वाज जो सभापति बनाए गए थे उनके द्वारा ही नाना प्रकार के प्रश्न आने लगे। क्या यह संसार कैसे सुखी बनेगा? संसार को सुखद बनाना है। मुनिवरों उन्होंने एक विचार धारा मानव के लिए नियुक्त की। नियुक्त करते हुए ! उन्होंने कहा कि आज मानव को सुन्दर बनना है अथवा प्रत्येक मानव समाज को उन्नति के एक शिखर पर जाना है। हमें वास्तव में उन्नत बनना है। क्योंकि जिसको लाने के लिए हमारा जीवन हमारी मानवता उस महान् भौतिक तत्त्व से सुगठित रहती है। मेरे प्यारेआज का हमारा यह विचार क्या कह रहा है !ऋषिवर !? हमारी एक धारा क्या वह रही है? महर्षि भारद्वाज ने अपनी शब्दावलियों में कहा है कि मानव को सुखी बनना है। मानव को उत्तम बनना है। तो संसार में अपनी इन्द्रियों के ऊपर अनुसन्धान करना है। हमें यौगिक प्रक्रियाओं में जाना है। यौगिक साधना में जाना है।

यौगिक साधना है क्या? जिससे मानव उस ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। ब्रह्मवेत्ता बनता चला जाता है महात्मा भारद्वाज महर्षि जी ने अपना वक्तव्य देते हुए अपने अनुभव का एक वाक्य प्रकट किया। उन्होंने कहा था कि संसार में जो यौगिक साधना में जाना

चाहता है। साधक बनना चाहता है, उसको आवश्यकता है कि वह अपने मन को संयम में लाए। परन्तु मन में संयम में कैसे उपरामता में लाया जाता है? मुनिवरों जब ! मानव के प्रत्येक श्‌्वास के साथ उस महान् चेतना का स्मरण होगा। देखो, ब्रह्म की चेतना का स्मरण करना ही मानव को आत्मपद की चेतना को जागरूता में लाना है। वह जो जागरूक चेतना है उसी के द्वारा तो एक महत्ता का दिग्दर्शन होता है। अहा, उसी के द्वारा एक मानवता के सुन्दर सुन्दर अंकुर मानव में उत्पन्न हो जाते हैं। तो मेरे प्यारे आज मैं अधिक विवेचना नहीं प्रकट करने जा रहा हूँ। केवल वाक्य !ऋषिवर ! उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह है कि हम सदैव उस आनन्दमयी चेतना को हम जानने में कितनी उन्नति को प्राप्त हो सकते हैं। इसके ऊपर हमें बारम्बार अनुसन्धान करना है। विचार विनिमय करना है। जिससे हमारे जीवन में एक मौलिक तत्त्व उत्पन्न होता चला जाए।

मेरे प्यारे जब हम यह विचारते रहते हैं कि हमारा जीवन वास्तव में यौगिक !ऋषिवर ! प्रक्रियाओं से सन्नद्ध रहता है, तो बेटा मानव योग की विवेचना करने में सफल ! नहीं हो पाता। मानव के लिए हमारे आचार्यों ने तप के लिए बड़ी मीमांसा की है। कि मानव का जो मन है, वह तपने से सुन्दर बनता है। हमारे यहाँ तप किसे कहा जाता है? तप की मीमांसा क्या है? आज जो मानव तपस्वी बनना चाहता है उसके द्वारा कौन सी ऐसी प्रतिभा है? जिससे वह तप को प्राप्त हो सकता है। मुनिवरों वह तप है प्रत्येक ! इन्द्रियों को अपने संयम में बनना उसका आहार सुन्दर हो उसका व्यवहार सुन्दर, उसकी वाणी पर संयम हो, प्रत्येक इन्द्रिय उसकी अपने अपने संयम में हो। तो वह मानव संसार में साधक बनने, यौगिक, प्रक्रिया के यौगिक आसान पर, यौगिक मार्ग पर जाने के लिए वह अपनी एक प्रतिभा बनाता है। उस प्रतिभा से ही जगत को उन्नत बनाया जाता है। तो मेरे प्यारे आज मैं कोई अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं !ऋषिवर ! जा रहा हूँ।

महर्षि जी ने कहा कि यदि संसार को सुखद बनाना है, तो केवल एक ही प्रक्रिया है, एक ही साधना है, जिस साधना के द्वारा यह जगत उन्नत बन सकता है, पवित्रता को

प्राप्त हो सकता है कि वह अपनी इन्द्रियों को संयम में बनाए और तप में बनाए। हमारे यहाँ तप की जो मीमांसा है, वह सबसे प्रथम आहार है। क्योंकि आहार उत्तम होना चाहिए, आहार में हिंसा के विचार भी नहीं होने चाहिए। मेरे प्यारे महानन्द जी यह ! कहा करते हैं कि मांस भक्षण करने में दोषारोपण नहीं होता। परन्तु मैं यह कहा करता हूँ क्या वास्तव में मांस भक्षण करने के लिए मानव को किसी प्रकार का दोष तो नहीं होता? परन्तु जो मानव किसी प्राणी को नष्ट करता है। आह, जिस समय वह अपनी भुजाओं से किसी भी को नष्ट करता है, उसके प्राण दूर चले जाते हैं, वह जो रक्त है, वह जो मांस है, उस मांस के, रक्त के कण कण में हिंसा ओत प्रोत हो जाती है। जब हम उस हिंसा भरे आहार को पान करते हैं, आह, वही मौलिक जो परमाणु होते हैं, हिंसक परमाणु होते हैं, सूक्ष्म परमाणु होते हैं, वे मानव की प्रवृत्ति को नष्ट और भ्रष्ट करते चले जाते हैं, इसीलिए हमारे यहाँ विचार आता रहता है। हमारे ऋषि मुनियों ने बेटा अहिंसा परमोधर्म के सम्बन्ध में अपने बहुत बहुत सुन्दर विचार दिए हैं। अपने ! विचारों को व्यक्त करते हुए आचार्योंने कहा है, क्या हम जगत को उन्नत बनाना चाहते है? परन्तु इससे हमारा जीवन उन्नत होता रहे और यौगिक प्रक्रियाओं पर हम वास्तव में साधना को प्राप्त कर सके। मानव को अंहिसा परमोधर्मः। की वेदी पर इतना पहुंच जाना चाहिए जिससे मृगराज भी उसके लिए सामान्यता को प्राप्त होती है। जगत् एक सामूहिक रूप बन जाता है। ऐसा जो मौलिक विचार होता है ऐसी जो धारा होती है, वही तो इस जगत् को उन्नत बनाती चली जाती है। मेरे प्यारे आज मैं अपने !ऋषिवर ! महानन्द जी अपने कुछ वाक्य !इन वाक्यों को विराम देने जा रहा हूँ। अब मेरे प्यारे प्रकट करेगें। हमारा तो केवल यही विचार था कि हम यौगिक प्रक्रियाओं को उत्तम बनना चाहते हैं।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् यमा सर्वम ब्रह्मे लोकाम्वरी गतः मानम् भगः विश्रवम् धनम् मामकेतुमयः। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अथवा भद्र मण्डल। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी ! अभी कुछ योग के सम्बन्ध में अपना कुछ विचार व्यक्त करते चले जा रहे थे। वास्तव में इनकी यौगिक प्रक्रियाओं का जो विचार है, वह बड़ा सुन्दर कहलाया गया है। उनके

विचारों में प्रायः यह आता रहता है। कि हम सदैव अपनी मानवता को उज्ज्वल बनाना चाहते हैं। जहाँ यह वाक्य प्रकट होने लगता है कि हमारे जीवन की जो महान् प्रक्रिया है वह अनुसन्धान वेत्ताओं के लिए एक महान् दिग्दर्शन कहलाया जाता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी अपने वाक्य प्रकट करते हुए कहा था कि मानव को मांस भक्षण नहीं करना चाहिए। क्योंकि उसमें दोषारोपण होते हैं। क्या दोष होता है? उस दोषारोपण के लिए हमारे यहाँ एक वाक्य प्रायः आता रहा है, एक विचारधारा हमारे समीप आती रहती है। मांस भक्षण करने में कितना दोष और क्या होता है? मुनिवरोंदेखो !, उसमें यह होता है कि मानव जब किसी भी प्राणों का हनन करता है उस समय उसकी जो वेदना होती है जब इस शरीर को त्याग करके आत्मा जाता है। उसकी जो वेदना होती है, उसका जो अपर्ण विचार होता है वह उसके कण कण में ओत प्रोत हो जाता है। ओत प्रोत हो जाने से ही उसके विचारों में अन्तर्द्वन्द्व आते हैं। विचारों में ही हिंसा भाव आकर के ही उन विचारों में एक ऐसी प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है जिन विचारों से ही मानव किसी काल में भी साधक और मानवत्व को लाना उसके लिए असम्भव हो जाता है।

हम यह विचार करते रहते हैं कि मानव को अहिंसा परमोधर्मः की वेदी पर आ जाना चाहिए। मैं यह विचार व्यक्त करने लगता हूँ कि यह संसार कैसे उन्नत होता है? कैसे यह विचारधारी आती है? आज हम अंहिसा परमोधर्मः को अपनाते चले जाए। मांस भक्षण करने वाले प्राणियों को यह विचार विनिमय कर लेना चाहिए कि हमारी जो अन्तःकरण में शुभ प्रेरणा है, वह दूषित हो जाती हैं। ऊँची तंरगे नहीं उत्पन्न होती। क्योंकि उसका भक्षण करना हमारे लिए पापवर्धक कहलाया गया है। क्यों कहलाया गया है? इसका मूल कारण यह है कि हम वास्तव में अपने जीवन की प्रतिभा को हम में ले जाना चाहते हैं। इसके पश्चात मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी कहा है। परन्तु मैं आज महात्मा जमदग्नि की चर्चा नहीं प्रकट करने आया। महात्मा दधीचि की चर्चा भी नहीं प्रकट करने आया हूँ। मैं तो केवल अपनी विचारधारा व्यक्त करने आया हूँ। आज के जगत में आज के यौगिकवाद में कितना अन्तर्द्वद्व आ गया है? मानवीय विचारधारा

में कितनी अकृतता आ गई है? जिसको हम स्पष्ट उच्चारण करते हुए संसार में भयभीत होते रहते हैं। क्या उस मानव को आज हमारे यहाँ जब में योगियों के द्वारा जाता हूँ। आधुनिक काल के राष्ट्र के द्वारा जाता हूँ, तो हम भयभीत होते हैं। भयभीत होने का कारण क्या है? क्या स्वयं हमारा अन्तःकरण दूषित होता है? जो महापुरुष होते हैं उनके जीवन में देखो, हिंसा नहीं होती। अहा, अंहिसा परमोधर्मः की प्रतिभा सूक्ष्म होने से ही हमें भयभीत सदैव प्रभावित करती रहती है। हम भयभीत होते रहते हैं। उस भय का कारण क्या है, क्या हममें आत्मिक बल न होनें के कारण नाना प्रकार के उन व्यक्तियों से दुःखित अथवा हम उन व्यक्तियों से भयभीत होते हैं। जिसको हम परम्परा से मानवता के स्तर पर लाते चले आए हैं।

हमारा यह विचार क्या कह रहा है? वैदिक विचार में आता चला जा रहा है आज का जो यौगिकवाद है, वह कोई भी योगी हो, परन्तु वह केवल अपनी एक विचारधारा होती है। अपना एक मार्ग होता है। परन्तु उस मार्ग में आगे चल करके एक महान वाक्य भी आ सकता है। परन्तु अधिकतर इस प्रकार के होते हैं, जिन्होंने मन की सूक्ष्म सी प्रकाश की तरंगे को जान लिया। परन्तु अपने में यह हो गया कि मैं योगी बन गया हूँ। आज के संसार में गुरुड़म की आवश्यकता नहीं थी। परन्तु देखो, गुरूड़म की आवश्यकता से संसार के लोग इसके आधार पर अपने जीवन अपने उदर की पूर्ति करना चाहता है। मैं यह नहीं उच्चारण करने आया। आज के जगत को मैं दृष्टिपात करता रहता हूँ। परन्तु जब मुझे यह विचार आता है कि यह कैसे उदर कि पूर्ति की जाती है? हमारी वैदिक परम्परा क्या है? किसके आधार पर अपने जीवन को लाया जा सकता है? जीवन की प्रतिभा को उन्नत बनाया जाता है।

हम संसार में योगी बनना चाहते हैं, तो योगी बनने के लिए हमें साधना की आवश्यकता होगी। आत्मा विश्वास की आवश्यकता होगी। हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव संसार में मानो ! जब आत्मविश्वास नहीं होता, तो यह जगत कैसे उन्नत बनेगा। मैंने क्या मेरे पूज्यपाद ने भी कल के वाक्यों में कहा था कि यह संसार धार्मिक होते हुए भी सुखी नहीं हो पाता। इसका मौलिक कारण केवल यहीं है। सुखी बनने का कारण केवल यही है न

ब्रह्मो कामा वृतम ब्रह्म क्योंकि मानव में एक एक आत्म विश्वास नहीं होता। आत्मविश्वास उस काल में होता है, जब किसी आत्म चेतनावादी के दर्शन किए जाते हैं। आत्मा में उसके स्वतः ही आत्मा की प्रतिभा ओतप्रोत ही जाती है। उसका विचार, उसकी मानवता उसे बाध्य करती रहती है कि वास्तव में मुझे उन्नत बनने के लिए उत्तमता की सदैव आवश्यकता है।

आज तक समाज में हमारे यहाँ नाना प्रकार के महापुरुष हुए। मुझे स्मरण आता रहता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को तो ज्ञान नहीं है, परन्तु यहाँ महात्मा बुद्ध ने कहा था कि संसार को उन्नत बनाना है। संसार को मौलिकता में लाना है तो अंहिसा परमोधर्मः को अपनाओ। उन्होंने एक मार्ग को अपनाया। उस मार्ग को अपनाने का परिणाम यह हुआ कि उनका जो व्रत था वह ऊँचा बना। परन्तु अन्त में क्या हुआ क्या वे उस मार्ग से विचलित हो गए? दूर चले गए मानसं ब्रह्मे अहिंसा परमोधर्मः को त्याग दिया। इसी प्रकार मुझे संसार का इतिहास स्मरण आता रहा है। महात्मा नानक ने एक वाक्य कहा था कि रक्त की जो एक कृति होती है। वह देखो, वस्त्र को भ्रष्ट कर देती है। अरे, मानव तू नाना प्रकार के प्राणियों का रक्त पान करता है। तेरा अन्तःकरण कितना ! दूषित हो गया है, तेरे अन्तःकरण में कितने रक्त भरे हिंसा के चिन्ह हो गए हैं। अह ! देखो, कितने पराधृत हो गए हैं? जो रक्त के चिन्ह होते हैं उन्हें तू नष्ट नहीं कर पाता। मुनिवरों यही तो महात्मा नानक ने भी कहा है। परन्तु महात्मा नानक के पुजारी क्या ! करते हैं? महात्मा मोहम्मद ने भी एक वाक्य कहा था। वास्तव में मोहम्मद को मैं महात्मा स्वीकार नहीं करता हूँ। परन्तु किन्हीं किन्हीं वाक्यों में मैं महात्मा मोहम्मद को स्वीकार कर लेता हूँ। क्योंकि राष्ट्रीय विचारधारा में मुझे महात्मा मोहम्मद बहुत ही प्रिय लगे। इसीलिए मैं इनका किसी किसी काल में आदर भी कर देता हूँ। परन्तु महात्मा मोहम्मद ने यह कहा था कि दूसरे के रक्त को पान न करो। क्या दूसरों की बलि देना हमारे लिए बहुत अनिवार्य है। अरे, मोहम्मद के मानने वालोअरे !, बलि देना, पुत्र की बलि देना तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। आज कोई पिता यह कहता है कि मेरी सबसे प्रिय जो वस्तु है वह मानो मेरा पुत्र है। अरे, मोहम्मद के मानने वाले पुत्र को नष्ट करने का

तुम्हें अधिकार नहीं होता। क्योंकि पुत्र राष्ट्रीय सम्पत्ति होती है। वह प्रभु की एक सम्पति होती है। इसीलिए पुत्र को भी कोई नष्ट नहीं कर सकता इसीलिए आज तुमने जाना नहीं कि आत्मा का जो पुत्र है। वह मन है। आज मन को नष्ट कर देना चाहिए। क्योंकि बिना मन के मानव कदापि भी संसार में साधक बन ही नहीं सकता। मानव साधक जब तक नहीं बन सकता जब तक कि वह मन के ऊपर संयम यहीं कर लेता। इसीलिए हमारे यहाँ नाना प्रकार के विचार आते हैं।

महात्मा ईसा ने एक वाक्य बहुत ही ऊँचा कहा है। महात्मा ईसा ने कहा कि संसार में वास्तव में देखो, ब्रह्मचर्य व्रत्त से रहना चाहिए, ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वगति बना लेनी चाहिए अह उन्होंने अपने सदाचार के ऊपर और शान्त रहने के लिए, सेवक बनने के लिए, संसार में बड़ा बल दिया है। आओ मेरे प्यारे आज हम संसार में उनकी !ऋषिमण्डल ! चर्चा कर रहे हैं जो आधुनिक काल में परमात्मा के कुछ उपासक हुए हैं। परन्तु उनका विचार नाना प्रकार से संसार के लोगों ने रूढ़िवाद में ले लिया। वह रूढ़िवाद इस समाज के लिए, राष्ट्र के लिए बड़ा घातक बनता चला गया है। विनाश के मार्ग पर लेता चला गया है। परन्तु मैं उन वाक्यों को प्रकट कराने जा रहा हूँ कि आज हमें दूसरे के मांस को दूसरे के रक्त को पान नहीं करना चाहिए। आज जो मानव दूसरे के रक्त को पान करने वाला होता है वह मानव संसार में साधक नहीं बन सकता। न अपनी प्रवृत्तियों को ही सात्विक बना सकता है।

तो आओ मेरे प्यारेहम जो जगत में आए हैं !ऋषिवर !, परमात्मा की सृष्टि में आए हैं हम किसी प्रकार का भी पाप कर्म करने नहीं आए हैं। हम तो इस संसार को ऊँचा बनाने आए हैं और संसार में ऊँचा कर्म करने के लिए आते है। आह, यहाँ संसार में दया करने के लिए आते हैं। करुणा करने में लिए आते हैं। देवता बनने के लिए आते हैं। और मानव बनने के लिए आते है। यहाँ संसार में दैत्य बनने के लिए मानव नहीं आता।

हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव नाना प्रकार की विचारधारा मुझे प्रायः प्रकट होती रही है। ! मैं यह जानता रहता हूँ कि जिस आसन पर हमारी आकाशवाणी जा रही है आज मैं

उस आसन को जो दृष्टिपात करके अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा मैं बड़ा प्रभावित हो रहा हूँ। मेरा हृदय सदैव गदगद रहा है। क्योंकि देखो, यहाँ यवन मोहम्मद के मानने वालों को नाना प्रकार की विचारधारा प्रायः बनती रहती है। परन्तु जो मानव दूसरों के नष्ट करने की विचारधारा बनाता है, वह संसार में स्वयं नष्ट हो जाया करता है। यह प्रायः सिद्धांत होता है। परन्तु इसके ऊपर विचार विनिमय करना है। जब हम यह विचारते रहते हैं कि महात्मा मोहम्मद क्या विचार था? मोहम्मद ने कहा है कि संसार में प्रीति से रहना चाहिए, प्रेम से रहना चाहिए और देखो, रूढ़िवाद को त्याग देना चाहिए। कुरीतियों को त्याग देना चाहिए। जब यहाँ नाना प्रकार की कुरीतिएं हमारे समक्ष आती हैं, परन्तु मोहम्मद की मैं विशेषता यही केवल प्रकट करता हूँ। परन्तु जहाँ यह वाक्य आता है कि उनके मानने वाले कितनी प्रीति करते हैं? कितना स्नेह करते हैं? कितनी मानवता को लाने का प्रयास करते हैं? कितना अपनत्व में ऊँचा बनना चाहते हैं? केवल एक ही नाद रहता है कि यह संसार सब यवन हो जाए। परन्तु यवन हो करके द्वितीय कोई प्राणी न रहे। यह केवल उसका विचार सुन्दर नहीं है। क्योंकि यह विचार स्वयं उनके सुकृत को नष्ट कर देता है। उनकी प्रतिभा में उज्ज्वलता नष्ट हो जाती है। इसलिए आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव का जो मृत्यु लोकी शरीर है, परन्तु जो एक भोला भाला सा भ्रमण करता रहता है। आज मैं उसके सम्बन्ध में अपने विचार क्या व्यक्त कर सकता हूँ? क्योंकि विचार देना मेरे लिए कोई आवश्यक नहीं है।

परन्तु रहा यह कि संसार में यह प्रायः होता रहा है जो भी मानव शुभ कर्म में आगे चला है उसके द्वारा निराशा भी आती है। आशाएं भी आती हैं। उसके जीवन में नष्ट करने की भावना भी बनाई जाती है। उसके जीवन में चरित्र की भावना भी बनाई जाती है। परन्तु उस महापुरूष का दोष नहीं होता। जो मानव बिना दृष्टिपात किए, बिना विचारे किसी वाक्य को प्रकट करता है। उस मानव का पुण्य हनन हो जाता है। उस मानव का पुण्य ऐसे नष्ट हो जाता है, जैसे सांय काल का सूर्य अन्धकार के आने पर शान्त हो जाता है। इसी प्रकार हमें विचार विनिमय कर लेना चाहिए। मैं आज यह वाक्य प्रकट करने जा रहा हूँ। क्या संसार में जैसा भी विचार व्यक्त करना हो उस पर पहले

विचार विनिमय कर लेना चाहिए। अहा, विचारधारा के लिए मुझे स्मरण आता रहता है। जिस आसन पर आज जो लाखा ग्रहम् ब्रह्मे, जो महाराजा दुर्योधन ने एक लाख का गृह का निर्माण किया था। मानो उस निर्माण के सम्बन्ध में मैं एक चर्चा प्रकट करता चला जाऊं कि महाराजा को !दुर्योधन ने जो लाखा गृह बनवाया था पाण्डव पुत्रों ! नष्ट करने के लिए। उस समय क्या हुआ? पाण्डव तो जीवित चले गए। परन्तु संग्राम हुआ। अरे, दुर्योधन न रहा संसार में देखो, पाण्डवों को विजय हो गई। कारण क्या है? उसके पश्चात भी इसी स्थान पर देखो, महाभारत के ही काल में उसके पूर्व काल में भी यहाँ घटोत्कच और महाराजा अर्जुन का यहाँ बहुत विशाल पुस्तकालय रहा है। देखो, यहाँ सूर्य विज्ञान पर इतना विशाल पुस्तकों का भंडार था। सूर्य विज्ञान है क्यों? चन्द्र विज्ञान क्या है? और मंगल विज्ञान क्या है? देखो, दो मण्डलों का विज्ञान उसमें निहित रहता था।

परन्तु महाराज घटोत्कच्छ जो भीम के पुत्र होते थे, मानो जो हिडम्बा के पुत्र कहलाए जाते थे अहा, उनका एक पुस्तकालय था। एक पुस्तक उन्होंने लेखनीबद्ध की थी विज्ञान के सम्बन्ध में। उस लेखनीबद्ध पुस्तक में चौदह सहस्र पृष्ट कहलाए जाते थे। उस पुस्तक का नाम ही सुरगत नामी था। सुरंगतनाम के यन्त्र का कैसे निर्माण कर सकता है? देखो, सुरंगतनाम का वह यन्त्र होता है जिस यन्त्र में इतना प्रवाह होता है जिस व्यक्ति को तुम्हें नष्ट करना है उतना ही वह यन्त्र उस व्यक्ति को नष्ट करके उस व्यक्ति के द्वार पर आ जाता था। उस यन्त्र में यह विशेषता रहती थी। उस पुस्तक में सर्व यन्त्रों का निर्माण लिखा था।

इसी प्रकार महाराजा अर्जुन देखो, मंगल मण्डल में जब रहे, मंगल मण्डल में तीन वर्ष और तीन मास तक रहे। उन्होंने वहाँ जाकर के मंगल मण्डल के प्राणियों से वार्त्ता प्रकट की। वार्त्ता प्रकट करते हुए उन्होंने मंगत केतुक नाम का एक पुस्तकम् लिखा था। जैन काल में उसको अग्नि के मुखारबिन्द में अर्पित किया गया था। इसी प्रकार आगे चलकर के महाराजा कृत्तम ब्रह्म, महाराजा कृषिअस्ते, सुगानमः ब्रह्मे राज जिसको हमारे यहाँ राजा परिच्चित कहा जाता है। महाराजा परिच्चित के समय में यहाँ उनका एक

न्यायालय रहा है। परन्तु समय आता रहा, इसकी प्रतिभा में मैंने इससे पूर्व काल में भी प्रकट कराया था कि सबसे प्रथम जैन काल में महावीर के मानने वालों ने पुस्तकों के भण्डार को नष्ट कर दिया। कारण क्या हुआ? क्यों नष्ट कराया? जिससे कि जैन समाज का ऊँचा प्रभाव हो। अह जब तक ये पुस्तक रहेंगे, विज्ञान ऊँचा रहेगा, तो तुम्हारा जो नवीन अहिंसा परमोधर्मः है, यह ऊँचा नहीं बनेंगा। इसी प्रतिभा से, इन संकीर्ण विचारों से यह सब नष्ट भ्रष्ट होता रहा है।

इसी प्रकार आगे चल करके आज भी मुझे स्मरण आ रहा है यवन काल में यह हुआ जब यवनों का राज्य आ गया, उन्होंने उस स्थान पर बलि दो। देखो, चन्द्रकान्त का नाम एक मानो वैश्य था जो मनन करने वाला था उन्होंने उसके पश्चात भी मन्दिर की प्रतिभा चलती रही। नया सुन्दर भव्य एक मन्दिर बनवाया। उन्होंने कूप बनवाया। परन्तु जिस काल को हमारे यहाँ लगभग पन्द्रह सौ बाईस वर्ष हो चुके हैं जब महाराजा देखो, वाणिज्य करने वालों ने कूप इत्यादि का निर्माण के हेतु मानो नाना प्रकार की प्रतिभा रही थीं इसी प्रकार यवन काल आया उसमें अह, देखो, पुजारियों को राज्य बल के कारण उसका परिणाम यह हुआ तथा जो पण्डित रहने वाला था उनको नष्ट कर दिया। ऐसा कृत्य कर दिया गया कि उस पवित्र मन्दिर को भ्रष्ट कर दिया गया। इस वाक्य को मैं आगे प्रकट नहीं करूंगा। इसके पश्चात यहाँ सब कुछ ऐसा होता रहा है जिसके ऊपर मैं आज विवेचना देने से असमर्थ रहता हूँ।

आज जब वह समय आता है जब यह हमारा सुन्दर काल एक ऊँचे पन पर दृष्टिपात आने लगता है वह समय बाम्बार स्मरण आता रहा है। वाक्यों को मैं पुनरुक्ति देना नहीं चाहता। परन्तु रही यह वाक्य कि आज भी उनकी नष्ट भ्रष्ट करने की योजना बनती रहती हैं। परन्तु प्रभु की अनुपम कृपा रहती है। आज जो मानव सदैव दूसरों के विचार दूसरों की मौलिकता, दूसरे के कार्य को नष्ट करने के लिए तत्पर रहता है, वह स्वयं इस संसार सागर से नष्ट हो जाता है। परन्तु आज मैं क्या वाक्य प्रकट कर सकता हूँ। आज केवल मैं अपने विचार इसीलिए व्यक्त करने जा रहा हूँ कि आज जो जगत है वह अहिंसा परमोधर्मः की वेदी पर आना चाहिए। साधक बनना चाहिए। क्योंकि बिना

साधना मानव का जीवन शून्य रहता है। परन्तु साधक उस काल में बनता है, जब उसका आहार, व्यवहार सुन्दर होता है। परन्तु आहार, और व्यवहार के लिए हमें सदैव सावधान रहना चाहिए। साधना में युक्त रहना चाहिए। उसी साधना से हमारे जीवन का पुनः निर्माण होता रहा है।

महान सुन्दर जहाँ हमारी आकाशवाणी जा रही है, इसी लाखा गृह पर आज लगभग वर्ष के पश्चात इस पर पुनः विद्युत प्रकाश का निर्माण हुआ है। मानो देखो 4000, उससे पूर्व भी था। जो मानव कृतियों में रमण करता रहा हूँ। आज मैं इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना नहीं प्रकट करूंगा। केवल वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि आज हम अपने जीवन को, अपनी मानवीयता को लाना चाहते हैं। क्योंकि महाभारत के काल में बड़ा निर्माण होता रहा है। विद्युत के ऊपर अनुसन्धान होता रहा है। विज्ञान के सम्बन्ध में नाना यन्त्रों के सम्बन्ध में विचार विनिमय प्रायः होता रहा है। इसीलिए आज मैं इन वाक्यों को इसीलिए प्रकट कर रहा हूँ। क्योंकि मुझे इसका इतिहास देना बहुत ही अनिवार्य है। आज मानव को जहाँ मैं यह उच्चारण करने को बड़ा प्रसन्न रहता हूँ। जहाँ हे प्रभुतेरी कैसी अनुपम महिमा है। जहाँ शमशान भूमि हो सकती है !, वहाँ सुन्दर सुन्दर यज्ञ हो सकते हैं। और जहाँ यज्ञ हो सकते हैं वहाँ घृत भी हो सकता है। इसीलिए आज का हमारा वाक्य यह कह रहा है कि आज मैं अपनी प्रतिभा देना नहीं चाहता। वास्तव में वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि संसार ऐसा ही चलता रहा है। परम्परा से ही मानो जहाँ शमशान भूमि हो जाती हैं। वहाँ राष्ट्र गृह बन जाते हैं। जहाँ राष्ट्र गृह होते हैं। वहाँ शमशान भूमि भी बन जाती हैं इसी प्रकार यहाँ न्यायालय रहा हैं तो शमशान भूमि भी रही है, शमशान भूमि रही है तो देखो, यज्ञ भी होते रहे हैं। इसीलिए हमें विचारना है।

हमें वास्तव में अपनी प्रतिभा, अपनी संस्कृति को सबल बनाकर पूर्ण करने के लिए अपने ऊपर बहुत बल देना है। जिससे जीवन में एक महत्ता का सदैव दिग्दर्शन होता रहे यह है आज का हमारा वाक्य। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा कि

मुझे आज्ञा दें। मैंने अपने वाक्यों को पुनः से प्रकट किया है।

पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने सुन्दर !आज मेरे प्यारे !ऋषिवर ! विचार व्यक्त किए हैं। इनके विचारों में कितनी विडम्बना है, इनके विचारों में कितनी वेदना है। परन्तु साधना के सम्बन्ध में इनका कितना सुन्दर विकास रहा है। मैं कल समय मिलेगा तो कल महानन्द जी का परिचय दे सकूंगा। क्योंकि महानन्द जी का जो परिचय है इनका जीवन भी बड़ा अनुसन्धान वाला रहा है। जैसा यह इस महान पाण्डव भूमि का सुन्दर परिचय होते हैं, इसी प्रकार मैं यौगिक प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में अपने कुछ विचार प्रकट करूंगा कि कैसे कैसे मानव योगी बनता है। और यह भी उच्चारण करना बहुत अनिवार्य है कि मानव योगी कैसे बनता रहे? और योग के लिए कौन कौन सी वस्तु की आवश्यकता है? कैसे योगी बना जाता है? और एक योगी ही संसार को कैसे उन्नत बना सकता है। यह मेरा विषय कर रहेगा। आज मेरे प्यारे महानन्द जी ! ने कुछ शब्द तो बहुत ही विद्वतापूर्ण प्रकट किए हैं। परन्तु उसके पश्चात मैं इन्हीं वाक्यों को यहाँ विराम देने जा रहा हूँ। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि मानव को साधक बनना चाहिए। साधना में परणित रहना चाहिए। आहार और व्यवहार दोनों सुन्दर होनें चाहिए। आहार और व्यवहार यदि सुन्दर नहीं है तो यह जगत और मानवता भी उत्तम नहीं बनेगी। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

७ 24 09 1970 पुष्प 20 प्राचीन कालीन आयुर्वेद की महत्ता

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, हमारे यहाँ पठन पाठन का जो क्रम प्रायः चलता रहता है वह परम्पराओं से ही विचित्र माना गया है। जब हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं कि हमारी जो मानवता है, हमारा जो विचित्रवाद है जिसको इतना महत्त्व दिया गया है इसको हमें बारम्बार विचार विनिमय करने की आवश्यकता क्या होती है? इस विषय पर ऋषियों और आचार्यों का विवरण आता रहता है। मुझे इस सम्बन्ध में विवेचना नहीं देनी है केवल सूक्ष्म परिचय देना है।

आज का हमारा वेदमन्त्र क्या कह रहा है कि मानवता के लिए मनन करने की जो

आवश्यकता होती है उसके लिए वेद का व्याख्याता बारम्बार व्याख्या करता ही रहता है। क्योंकि वेद का जो स्वतः उपदेश है। प्रकाश ही मानव का जीवन है। अन्धकार में जाना ही मानव को मृत्यु मानी जाती है। इसलिए प्रायः आवश्यकता रहती है कि आज हम प्रकाश में जाने का प्रयास करें। क्योंकि प्रकाश ही हमारा जीवन माना गया है। प्रकाश ही हमारा राष्ट्रवाद है। प्रकाश ही मानव की उन्नत ज्योति कहा जाता है। जब मानव इस संसार में आता है तो उस परम पिता परमात्मा की आराधना करने के लिए आता है। उज्ज्वल बनने के लिए आता है यहाँ दुष्ट कर्म करने के लिए नहीं आता। हमारे यहाँ आदि ऋषियों ने बड़ी बड़ी सुन्दर विवेचनाएं दी हैं। आज मैं उन विवेचनाओं में जाना नहीं चाहता हूँ।

प्रत्येक मेरी प्यारी माता को यह वेदना रहती है कि मेरा पुत्र मृत्यु को प्राप्त न हो जाएगा। पुत्र की इच्छा प्रबल रहती है कि मेरी माता मृत्यु को न चली जाए। पत्नी को पति को रहती है। इसलिए मानव भयभीत रहता है और यह वेदना प्रकट करता रहता है कि अमुक स्थान में जाऊंगा तो मेरी मृत्यु हो जाएगी तो आज मानव को विचारना चाहिए कि संसार में मृत्यु है क्या? जिसको मानव को विचारना चाहिए कि संसार में मृत्यु है क्या? जिसको मानव मृत्यु कहता ही रहता है। प्यारी माता भी चिन्तित रहती है। विचारना यह कि मृत्यु कहते किसे हैं? मुझे स्मरण आता रहता है कि एक समय महर्षि भृंगु आश्रम में एक सभा हुई। जिसमें महर्षि प्रवहण और महर्षिदालभ्य जी और शुक्ल इत्यादियों का वहाँ समागम हुआ। महात्मा जम्दग्नि और महर्षि पनपेतु जी आदि ऋषि मुनियों का एक भव्य समागम था। उसमें महात्मा दधीचि और अश्विनी कुमार भी विराजमान थे। हमारे यहाँ आयुर्वेद के अश्विनी कुमार महान पण्डित कहलाए जाते थे। मुझे स्मरण आला रहता है कि अश्विनी कुमारों का ऐसी ऐसी पवित्र औषधियों पर नियन्त्रण रहता था, ऐसे अनुसन्धान वेत्ता थे और आयुर्वेद पर अनुसन्धान करते रहते थे। उन्होंने कहा है कि संसार में आयु का जो वेद है उसको विचारना है। आयु को देने वाला हो बेद है। जो मानव प्रकाश में जाता है उस मानव को आयु दीर्घ हो जाती है आयुर्वेद किसे कहा जाता है जो आयु का देने वाला होता है। आयु क्या होती है? मानव

का नियन्त्रण होता है जब वह अपनी सब इन्द्रियों पर संयम कर लेता है मानो उसके विचारों में, आचार में संयम आ जाता है तो आयु को देने वाला बन जाता है। मुझे तो इस सम्बन्ध में बहुत अनुसन्धान करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। मुझे स्मरण है जब महाराजा दलीप के यहाँ नाना प्रकार की औषधि पान कराते और सुन्दर औषधियों से यज्ञ होते थे। क्योंकि औषधियों के द्वारा ही तो वातावरण पवित्र होता है। उन औषधियों को जानने से ही तो वातावरण पवित्र होता है। उन औषधियों को जानने से ही मानव के जीवन में उज्ज्वलता आती है। पवित्रता आती है। जिसको जानने के पश्चात मानव का हृदय पवित्र हो जाता है।

मुझे स्मरण आता रहता है अश्वनी कुमारों ने महात्मा दधीचि के मस्तिक को छह माह तक औषधियों के पात में नियुक्त किया था। इसी प्रकार आज हमें विचारना है कि आज हम इस पुनीत विद्या को स्वीकार करने वाले बनें। मुझे स्मरण है जब माता सती महाराजा शिव की आज्ञा पाकर के अपने पिता के गृह में प्रविष्ट हो गई थी। क्योंकि वहाँ महाराजा शिव का अपमान हो रहा था। माता सती उस अपमान को सहन कर न सकी और उसने कहा कि हे पितर आपको यह अभिमान है कि मैं तुम्हारी कन्या हूँ। ! परन्तु मैं अपने पति के अपमान को सहन नहीं कर पाऊंगी कहा जाता है कि उसने अपने शरीर को त्याग दिया। ओर महाराजा शिव के जो गण थे उन्होंने महाराजा दक्ष के मस्तिष्क को अस्त्रों से दूर कर दिया था। कंठसे ऊपर के भाग को। वहाँ भी अश्विनी कुमार विराजमान थे अश्विनी कुमारों ने उसी समय महाराजा दक्ष के कंठ पर मानों वह कंठ तो शान्त हो गया था। उस समय उन्होंने आज का मुखारविन्द कठ के ऊपरले भाग में स्थिर कर दिया। नाना प्रकार की औषधियों का लेपन करने से उनका कठ ज्यों का त्यों बन गया था।

यह जो विद्या है यह हमारे यहाँ परम्परा से चली आ रही है। एक समय मेरे प्यारे ! महानन्द जी ने कहा था कि आधुनिक काल का जगत् यह कहता है आधुनिक काल का वैद्यराज यह कह रहा है कि हम मानव के हृदय का परिवत्रन कर देते हैं। नस नाड़ियों का परिवर्तन कर देते हैं मैं यह कहा करता हूँ कि आज के जगत् में तो मानव

की नस नाड़ियों का परिवर्तन होता है। परन्तु औषधियों के द्वारा मानवकी नस नाड़ियों को बलवती बना दिया जा सकता है। एक एक वर्ष तक मानव के शव को औषधियों में स्थिर करके स्वस्थ बनाया जा सकता है। कंठ को औषधियों में एक वर्ष तक और हृदय को भी इसी प्रकार बनाया जा सकता है। आज मैं इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना देना नहीं चाहता हूँ। उच्चारण करने का अभिप्राय कि यह आयुर्वेद की विद्या हमारे यहाँ परम्परा से चली आ रही है क्योंकि वेदों में से औषधियों के सम्बन्ध में जिन मन्त्रों को चुना जाता है उसकी चुनौती देने वाले अश्विनी कुमार जैसे महा वैद्यराज थे जिन्होंने अपने जीवन में यह अश्विनी कार्य किया था। दोनों विधाता माँ के पुत्र थे। अश्विनी कुमार की माता सोमलता महर्षि शोगंमिक ऋषि महाराज की पत्नी थी उनके दो ही पुत्रों का ! जन्म हुआ था अश्वनि और कुमार का जिनको माता ने अपने गर्भ स्थल में पनपा दिया था।

माता सोमलता के पिता महर्षि भृंगी महाराज थे। जब वह बाल्यकाल में महर्षि भृंगी ऋषि के द्वारा शिक्षा अध्ययन करती थीं तो उनका आयुर्वेद का विषय रहता था। आयु का विषय रहता था। गुरु शिष्य दोनों का वनों में चले जाना और नाना प्रकार की औषधियों का अनुसन्धान करना। उनका यह कार्य हो गया था। एक समय सोमलता ने कहा कि हे प्रभुमैं यह चाहती रहती हूँ कि यह तो संसार में बहुत बड़ा विज्ञान है !, इस विशाल विज्ञान को जानने के लिए वास्तव में मुझे अनुसन्धान वेत्ता बनना चाहिए। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर उन्होंने औषधियों का यहाँ तक निर्णय किया कि कौन कौन से मास में कौन कौन सी औषधियों को पान करने से बालक का कौन कौन सा अंग बलवान होता है।

मेरी प्यारी माता तुझे अपने जीवन में अनुसन्धान करना है क्योंकि बिना अनुसन्धान ! के तेरा जीवन कदापि भी सुन्दर नहीं बना करता है। मैं तो यह कहा करता हूँ संसार में जितनी मेरी पवित्र माताएं हैं आज तक जब से संसार रचा है प्रत्येक मेरी पुत्री और माता को आयुर्वेद का विद्वान होना चाहिए। यह बहुत अनिवार्य है। मुझे स्मरण आता है

माता सोमलता के गर्भ में जब बालकों का आत्मा प्रविष्ट हो गया था।

अश्विनी और कुमार दोनों ने माता के गर्भ से एक ही साथ जन्म लिया था। माता अनुसन्धान करती रहती थी। वह अपने गुरु से बोली हे प्रभु मैं इन औषधियों को ! जानना चाहती हूँ जिस औषधि से बालक के मस्तिष्क का विकास होता है जिससे हृदय बलवावन होता है। भुजा बलवती होती है, मस्तिष्क तीव्र होता है, नस नाड़ियां तीव्र होती है। उपस्थ इन्द्रियां तीव्र होती हैं। ग्रीवा बलवती होती है। मेरे प्यारे !ऋषिवर ! !माता के इस वाक्य को पान करने वाले भृंगी ऋषि महाराज ने कहा था कि हे पुत्री यह तुम्हारा परिश्रम है अनुसन्धान करो। माता अनुसन्धान करने के लिए तत्पर हो गई। वह प्रायः अनुसन्धान करती रहती थी। कैसा अनुसन्धान? जब माता गृह में प्रविष्ट हो गई और गार्हपत्य नामकी अग्नि की पूजा करने लगी। गार्हपत्य नाम की अग्नि वह है जहाँ माता अपने गृह को उस काल स्वर्ग बनाती है जहाँ माता प्रसन्न रहती हैं। माताओं का हृदय प्रसनन रहता है। वह गृह वास्तव में स्वर्ग होता है। माता का हृदय पवित्र होना है। गृह को पवित्र बनाना है। जैसे प्रकृति को जो गति होती है वह जब तक वह सुमार्ग परचलती रहती है तब तक यह संसार सुगति वाला बना रहता है। जब प्रकृति को राहू केतु वाली गति बन जाती है तो उस समय संसार विनाश केभाग की चल देता है इसी प्रकार आज हमें विचार विनिमय करना है, अनुसन्धान करना है।

मेरी माता ने कितना सुन्दर अनुसन्धान किया। उन्होंने यह जाना कि प्रथम माह में मुझे कौन सी औषधियों का पान करना है? क्योंकि उस समय मेरा जो चैतन्य प्रभु है प्रथम माह में पाट का कृत बना देता है, निर्माण करता है। माता के गर्भ में प्रारम्भ के माह से ही निर्माण होना प्रारम्भ हो जाता है। कहा जाता है कि माता के गभ में चतुरर्थ माह में जरायुज पूर्ण हो जाता है। उसका निर्माण कार्य समाप्त हो जाता है। आगे वह प्राणों के द्वारा नाना प्रकार की औषधियों के द्वारा नाना प्रकार की कान्तियों के द्वारा, किरणों के द्वा मानो ओज द्वाराबालक का माता के गर्भ स्थल में बलवान होना एक स्वाभाविक हो जाता है। ऐसा कहा गया है कि छटे माह में बालक की बुद्धि का निर्माण होता है। उस समय माता ने नाना प्रकार की औषधियों का यान किया। इस प्रकार अश्विनी कुमार

का जन्म हुआ। कितने शमन थे, कितने उज्ज्वल थे। यह मुझे स्मरण है। परम् पिता परमात्मा की अनुपम कृपा से उन्होंने पठन पाठन का कार्य महाराजा अश्वपति के राष्ट्र में किया था।

मुनिवरों वही अश्विनी कुमार थे। जो त्रेता काल में राजा रावण के यहाँ विराजमान ! हो गएथे। आज मैं क्या वाक्य उचारण करने जा रहा था कि माता अपने प्यारे पुत्रों ! का निर्माण कर लेती है। ओजस्वी बना देती है, पवित्र बना देती है, महान बना देती है। जिसको जानने के लिए मानव को सदैव उत्सुक रहना चाहिए।

आओ मेरे प्यारेमैं कोई विशेष चर्चा प्रकट कर !ऋषिवर !ने नहीं नहीं आया हूँ हमारे ! यहाँ यह जो आयु को विद्या है यह परम्परा से चली आ रही है जो मानव को आयु प्रदान करने वाली है। मेरी प्यारी माता यदि सुन्दर हो तो यहाँ मानव का शरीर किसी काल में रूग्णता को प्राप्त ही नहीं हो सकेगा। क्योंकि आचार और विचार दोनों माता अपने पुत्र के बना देती है। माता का आचार विचार यदि पवित्र है तो बालक का भी पवित्र होगा। बालक भी ओजस्वी बन जाता है। यदि माता के आचार विचार दोनों भ्रष्ट हो जाते हैं, तो उस समय माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ बालक भी अपने विचारों से पुष्ट हो जाता है। मैं इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना करना नहीं चाहता हूँ। यह तो गृह आश्रम है इसका बहुत बड़ा वन है। मैं माताओं की शिक्षा की पद्धति में नहीं जाना चाहता हूँ। परन्तु वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यही कि प्रत्येक मानव इस संसार में अनुसन्धान करने के लिए आता है। अनुसन्धान वेत्ता मानव को बनाना चाहिए यदि: मेरी माता संसार में यह चाहे कि संसार में रक्त भरी क्रान्ति न हो तो वह हो नहीं सकती।

मेरे प्यारे मुझे स्मरण आता रहता है क्योंकि त्याग और तपस्या मानव के !ऋषिवर ! जीवन को सुन्दर बना देती है। मानव का जीवन उस काल में सुन्दर बनता है जब आचार और विचार दोनों पवित्र होते हैं जब आयुर्वेद के यहाँ पंडित होते हैं। स्वार्थी को आयुर्वेद का पंडित नहीं कहते। जो निस्वार्थ होता है। मानो अपने कर्तव्य का पालन करता है उसी को वैद्यराज कहा करते हैं। द्रव्य को एकत्रित करने वाले को वैद्यराज

नहीं कहा जाता है। मैं इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। अश्विनी और कुमार दोनों को माता ने बाल्यकाल में भी शिक्षा प्रदान की। उन बालकों ने आयुर्वेद का अध्ययन करने के पश्चात् महात्मा दधीचि आश्रम में ब्रह्म का उपदेश पान किया। उसके पश्चात् वे अपना यही कार्य करते थे। आयुर्वेद को उत्तम बनाना मानव का कर्त्तव्य होता है। मुझे स्मरण आता रहता है राजा रावण का वह राष्ट्र। अश्विनी कुमारो ने राजा रावण से एक वाक्य कहा था। जब राजा रावण ने यह कहा कि मेरे राष्ट्र में चिकित्सालय पवित्र होना चाहिए। उस समय अश्विनी कुमारों ने कहा कि हे रावण ! तुम्हारे राष्ट्र पवित्र हो जाएगा। उस काल में जब तुम्हारी प्रवृत्ति सुन्दर बन जाएगी। यह तुम क्या वाक्य उच्चारण् कर रहे हो !राजा रावण ने कहा कि हे अश्विनी कुमारो? क्या मेरी प्रवृत्ति शोधन की हुई नहीं है? उन्होंने कहा रावण तुम्हारी प्रवृत्तियों !में रजोगुण और तमोगुण छाया रहता है। तुम्हारी प्रवृत्तियों में राष्ट्रवाद को कर्त्तव्यवाद की पवित्र भावना नहीं है। राजा रावण ने अपने संग्राम से बहुत से राष्ट्रों को विजय किया था। अश्विनी कुमारों को वैद्यराज की उपाधि प्रदान करके देखा सुधा अमृत वैद्य भी अश्विनी कुमारों को शिष्य कहलाता था। जिसकी सुधोमा कहा जाता है।

मेरे प्यारे आओ मैं आज अधिक चर्चा प्रकट नहीं करना चाहता हूँ। वाक्य !ऋषिवर ! केवल यह उच्चारण करना है कि हमें विचारना है कि राजा रावण के राष्ट्र में अश्विनी कुमार जैसे वैद्यराज रहते हों। क्योंकि अश्विनीकुमार छः छः माह तक कंठ के ऊपर वाले भाग को औषधियों में स्थिर कर देते थे। इसी प्रकार वह नाना प्रकार के लेपन करना जानते थे। एक एक वर्ष तक मानव के हृदय को औषधियों के पात में स्थिर कर देना और मानव के शव को औषधियों के द्वारा ज्यों का त्यों बना देना और एक वर्ष के पश्चात ज्यों का त्यों हृदय को स्थिर कर देना यह अश्विनी कुमार जानते थे। इस विज्ञान के अश्विनी कुमार पंडित थे। आयुर्वेद के महापण्डित जितने राजा के राष्ट्र में होते हैं उतनी ही राजा के राष्ट्र में पवित्रता होती है। परन्तु आयु के वैद्य होने चाहिए। क्योंकि वेदों में ऐसी पुनीत विद्या है जिसको जानने के लिए मानव सदैव उत्सुक रहता है।

आज मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे राजा रावण के चरित्र की कुछ प्रेरणा दे रहे हैं। !

मैं इन वाक्यों कई काल को मैं उच्चारण कर चुका हूँ। आज भी स्मरण आती चली जा रही है। एक समय राजा रावण अश्विनी कुमारों से औषधियों के सम्बन्ध में कुछ विचार विनिमय कर रहे थे। विचार विनिमय करते हुए उन्होंने वहाँ से प्रस्थान किया। भ्रमण करते हुए जहाँ उनके राष्ट्र में वायु के ऊपर अनुसन्धान चल रहा था। राजा रावण उन प्रकृतियों में जा पहुँचे। जहाँ नाना वैज्ञानिक पृथ्वी के ऊपर विश्लेषण कर रहे थे। विचार विनिमय चल रहा था राजा रावण ने अपना कुछ विचार दिया। परन्तु वहाँ वार्त्ता करते करते उनका हृदय अशान्त हो गया। मस्तिक भी अशान्त हो गया। राजा रावण ने कहा कि हे मन्त्रियोंमेरी इच्छा ऐसी है कि मैं भयंकर वन को किसी महापुरुष के दर्श !न करने के लिए जा रहा हूँ। उन्होंने कहा कि प्रभु जैसी आपकी इच्छा क्योंकि आप ! स्वतन्त्र हैं अधिराज हैं आप जाइए भ्रमण किजिए।

राजा रावण मन्त्रियों को आज्ञा पाकर के भ्रमण करते हुए महर्षि शरिडल्य आश्रम में प्रविष्ट हो गए। ऋषि ने पूछा कि कहो तुम्हारा राष्ट्र कुशल है। रावण ने कहा कि प्रभु आपकी महिमा है। क्योंकि महापुरुषों की महिमा ही राष्ट्रों पर हुआ करती है। ऋषि बोले बहुत सुन्दर हमने श्रवण किया है कि तुम्हारे राष्ट्र में नाना प्रकार की अनुसन्धान शालाएं हैं। राजा रावण ने कहा कि हां भगवनयह तो सब प्रभु को और आपको ! अनुपम कृपा है। क्योंकि राष्ट्र को उन्नत बनाना यह महा बुद्धिमानों के ऊपर निर्भर रहने वाला होता है। शारिडल्य मुनि महाराज भृंगी ऋषि महाराज के पांचवे पोत्र होते थे। वहाँ से भ्रमण करते हुए राजा रावण महर्षि कुक्कुट के आश्रम में प्रविट हो गए। महर्षि कुक्कुट मुनि महाराज ने उनका बड़ा सुन्दर स्वागत किया। दोनों का आचार विचार के ऊपर विचार विनिमय होने लगा। आत्मा के सबध में, परमात्मा के सम्बन्ध में नाना प्रकार की विवेकभरी चर्चाएं जब प्रारम्भ हुई तो राजा रावण का हृदय और मस्तिष्क दोनों ही सान्त्वना को प्रात हो गए। उन्होंने निवेदन किया कि प्रभु मेरी इच्छा ऐसी है कि आप ! मुझे इतना समय आज्ञा नहीं दे !मेरी लंका का भ्रमण करें उन्होंने कहा कि हे रावण रहा हैं जो आज मैं तुम्हारी लंका का भ्रमण करूं। मुझे तो परमात्मा के चिन्तन करने से ही समय प्राप्त नहीं होता। मैं तो उसी में संलग्न रहने वाला हूँ। राजा रावण ने नम्र

निवेदन किया, चरणों को स्पर्श किया। देखो, ऋषि का हृदय तो प्रायः उदार होता है। उन्होंने कहा बहुत सुन्दर। मैं तुम्हारे यहाँ अवश्य भ्रमण करूंगा। दोनों महापुरुषों ने वहाँ से प्रस्थान कर लिया। कुक्कुट मुनि महाराज वायु मुनि महाराज के 21वें प्रपौत्र कहलाए जाते थे।

राजा रावण नाना प्रकार की शालाओं का दर्शन कराते हुए अन्त में अपने पुत्र नरान्तक के द्वारा जा पहुँचे जो नित्य प्रति चन्द्रमां की यात्रा करते थे और ऋषि से बोले कि भगवनयह मेरे पुत्र नरान्तक चन्द्रयान बनाते हैं। महर्षि ने कहा ! कहो आप कितने समय में चन्द्रमा की यात्रा कर लेते हैं। उन्होंने कहा कि भगवन एक रात्रि और एक दिवस ! में मेरा यान चन्द्रमा में चला जाता है ओर इतने समय में पृथ्वी पर वापस आ जाता है। इसको चन्द्रयान ही कहते हैं। कृतक यान भी कहा जाता है। इसको चन्द्रयान ही कहते हैं। कृतक यान भी कहा जाता है। इसमें मैं विराजमान होकर चन्द्रमां की यात्रा कर लेता हूँ। मेरे यहाँ ऐसे यान भी हैं जो मेरे बिना भी चन्द्रमां की यात्रा कर लेते हैं मानो यन्त्रों में केवल मेरी ही जाने की आवश्यकता नहीं है। मनुष्य की आवश्यकता नहीं है। मेरे यहाँ जो यह कृतक यान है इसका जब मैं वायुमण्डल में प्रसारण कर देता हूँ तो यह पृथ्वी की परिधि से दूरी हे जाता है। चन्द्रमां की यात्रा करने के पश्चात् यह स्वतः हो पृथ्वी मण्डल पर आ जाता है। मेरे यहाँ भगवन ऐसा भी यन्त्र है जो यान जब ! पृथ्वी की परिक्रमा करता है तो एक परिक्रमा करते ही महान उसका चित्रण आ जाता है। इसके पश्चात जब उस यन्त्र का चन्द्रमां पर जाकर मिलान होता है तो उस समय उसका चित्र इस पृथ्वी मण्डल पर स्वतः हो आ जाता है। मेरे यहाँ सोमभावको नाम के यन्त्र हैं। किरकिट नाम के यन्त्र हैं जिसका मैंने महर्षि भारद्वाज आश्रम में अध्ययन किया है। ऋषि ने कहा यह तो मेरा बड़ा सौभाग्य है आज जो मैं लंका के दर्शन कर रहा हूँ जहाँ इतना विज्ञान है, जहाँ इतनी शालाएं हैं, जहाँ चन्द्रमां से जाने वाले यन्त्र हैं, जहाँ चन्द्रमा में बिना मानव के जाने वाले यन्त्र हां, यह तो बड़ा विशाल विज्ञान है राजा के राष्ट्र में।

वहाँ से प्रस्थान करके राजा रावण चिकित्सालयों में जा पहुँ जहाँ अश्विनी कुमार जैसे

वैद्यराज रहते थे। यहाँ नाना प्रकार की चिकित्सा होती है। माताओं के जीवन की रक्षा होती है, मानव के जीवन की रक्षा होती है। ऐसे ऐसे सुन्दर वैद्यराज है कि गर्भप्रभा अकैति अन्धनम् ब्रह्म लोकाः प्रतिशुद्धोः मानो माता के गर्भ में जरायुज है और माता रक्त के न होने पर मानो उसमें इतना बल नहीं है तो अश्वनि कुमार जैसे वैद्यराज रहते थे। यहाँ नाना प्रकार की चिकित्सा होती है। माताओं के जीवन की रक्षा होती है, मानव के जीवन की रक्षा होती है। ऐसे ऐसे सुन्दर वैद्यराज है कि गर्भप्रभा अकैति अन्धनम् ब्रह्म लोकाः प्रतिशुद्धोंः मानो माता के गर्भ में जरायुज है और माता रक्त के न होने पर मानो उसमें इतना बल नहीं है तो अश्वनि कुमार ऐसा करते थे कि किरकिट अनाद, सेलखण्डा, प्राणानी अमेतकुतु नाना प्रकार की औषधियों का पात बना करके उसमें छः छः माह तक जरायुज को स्थिर कर देते थे। ऐसी चिकित्सा राजा रावण के राष्ट्र में होती थी। मैं इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना देना नहीं चाहता हूँ। ऋषि ने जब अश्वनि कुमारों से पूछा कि यह विद्या तुमने कहाँ से पान की है तो उन्होंने कहा कि यह विद्या माता से पान की, कुछ महर्षि भृंगी से पान की है, कुछ महर्षि सोमकेतु से पान की है और भी जैसे दधीचि इत्यादियों से इस विद्या को पान के पश्चात हमने इस विद्या पर और अनुसन्धान किया है।

आज उसका परिणाम यह है कि तुम्हारी लंका इतने सुन्दर होने पर भी केई चरित्रवान महापुरुष आयेगा और अग्नि प्रदीप्त करके चला जाएगा तुम्हारी लंका में। तो मैं प्यारे ऋषिवर वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय यह कि आज हम अपने चरित्र को ! ऊँचा बनाएं, आयुर्वेद को लाने का प्रयास करें। बेटा मुझे समय मिलेगा तो कल !मैं विज्ञान की अनेक चर्चा प्रकट करूंगा। आज का यह वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है। कल समय मिलेगा तो शेष चर्चा कल प्रकट करेंगे। अब वेदों का पाठ। रामेश्वर) (मन्दिर में दिया हुआ प्रवचन

८ 26 02 1972 पुष्प 19 मानवीय विचारधारा को अपनाओ

देखो, मुनिवरों आज हमने पूर्व !के समान वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारेयहाँ रम्परा से ही मनोहर वेदवाणी का, प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में उस

परमपिता परमात्मा की आभा का प्रायः वर्णन किया जाता है क्योंकि परमपिता परमात्मा एक ऐसी अमूल्य चेतना है जिस चेतना में यह जगत क्रियाशील हो रहा है। यदि वह चेतना नहीं रहेगी संसार में तो प्राणी मात्र इस संसार में गतिमान न हो सकेगा। क्योंकि यह देव गति देने वाला है, गतिमान है। सर्वज्ञ देव प्रकृति के कण कण में ओत प्रोत है। आज हम जहाँ परमात्मा के विशेषणों का उनके गुणों का गुणगान गाएं। उनके गुणों का उच्चारणकरने से वाणी मोहित हो जाती है।

हमें विचारना यह कि हमारा वेदों का मन्त्र, वेदों की आभाएं हमें किस मार्ग के लिए पुकार रही हैं? इसके ऊपर हमें विचार विनिमय करना है। हम इनवाक्यों को लेकर के चलते हैं। हमारा वेद का विचार यह कह रहा है कि मानव में संसार में सुगन्धि देने की भावना होनी चाहिए। मानवीय समाज में प्राणीमात्र में मानव नाना प्रकार के वृक्षों से भी शिक्षा लेता है। परन्तु वह वृक्ष प्राणीमात्र के लिए छाया देता है। इसी प्रकार सूर्य अपना प्रकाश प्राणीमात्र के लिए देता है। इसी प्रकार नाना प्रकार की वनस्पतियां प्राणी मात्र के लिए सुगन्धि देती हैं। तो हमें आज अपने से ही शिक्षा अपने को प्राप्त होती रहती है। जैसे हमारी रसना है परन्तु अपने द्वारा एकत्रित नहीं करती। कितनी त्याग भावना इस मानव शरीर की है। कितनी उत्तम रचना उस मेरे प्रभु की उस देव की है। वह कितना वैज्ञानिक है? कितना कलाकार है? उसकी कलाकृति कितनी विशाल है। हमें इसके ऊपर विचार विनिमय करना चाहिए।

हम वास्तव में अपनी विचाराधारा को विशाल बनाने का प्रयास करें। मेरे प्यारे !ऋषिवर !

जब हम यह वाक्य लेते हैं हमारी विचारधाराओं में एक महत्ता का दिग्दर्शनहोता है। हमें यह प्रतीत होने लगता है कि वे परमपिता परमात्मा कितना विशाल है। किनी उसकी महत्ता इस जगत में ओत प्रोत हो रही है। आज जब हम उसकी महत्ता के ऊपर विचारविनिमय प्रारम्भ कर देते हैं तो यह आता है कि मानव को भी उसी प्रकार उसी की भांति संसार में प्रकाशमान होना चाहिए। मानव को तो सुगन्धि देनी चाहिए। कहीं पदार्थों की सुगन्धि, कहीं उसको अपने विचारों की सुगन्धि। कहीं अपनी ऊर्ध्वगति और अपने आचरणों की सुगन्धि। उस मानव में होनी चाहिए। जिससे संसार, जिससे उससे

लाभान्वित हो। शिक्षा प्रद हो, हमें उस शिक्षा को सदैव पान कर लेना चाहिए। उस मानवीय सुगन्धि को अपने में धारण करना चाहिए। जिस सुगन्धि को अपने में धारण करना चाहिए। जिस सुगन्धि का पान करने से मानव जीवन ऊर्ध्व गति को प्राप्त होने लगता है।

तो मैं आज अधिक अपनी विवेचना नहीं दे सकूंगा। मैं केवल एक ही वाक्य उच्चारण कर रहा हूँ कि मानव को यज्ञमानों को अपनी ऊर्ध्व गति बनानी चाहिए। कैसी ऊर्ध्व गति? जिससे कि अज्ञान इसके समीप न रहे वह नाना लोकों में रमण करने वाला बन सके ऐसा यज्ञमान यज्ञशाला में विराजमान होना चाहिए। उस की ऊर्ध्व गति ऊर्ध्व विचार नाना प्रकार के वैज्ञानिक विचार होने चाहिए। त्रुटियों को त्यागना, महत्ता को लाना यह उसका प्रायः ऊँचा कर्त्तव्य है, ऊँची आभा है। जिसको अपनाने के पश्चात् जगत एक महत्ता को प्राप्त होता रहता है।

कटुता को त्यागकर

अब मैं अधिक चर्चा नहीं प्रकट करूंगा। क्योंकि मेरे प्यारे महानन्द जी अपने कुछ ! विचार प्रकट करेंगे। इनका विचार परम्परा से एक महान रहता है। आधुनिक काल की विचारधारा पर आधृत होता है। मैं आज महानन्द जी से कहता हूँ कि वे अपने कुछ विचार प्रकट करें। पर वे विचार की कटुता को त्याग करके होने चाहिए।

पूज्य महानन्द जीः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव, मेरे भद्र ऋषि मण्डल, मेरे भद्र समाज ! आज मुझे पूज्यपाद गुरुदेव ने पुनः यह समय प्रदान किया। आज मैं इस कुछ सूक्ष्म समय में अपना संक्षिप्त विचार प्रकट करना चाहता हूँ। परन्तु वह विचार क्या है? मैं सूक्ष्म रूपों से इस संसार का दिग्दर्शन करता रहता हूँ। हम इस संसार की आभा को दृष्टिपात करते रहते हैं। संसार में परम्परा से ही देवासुर संग्राम होता रहता है। आज भी देवासुर संग्राम होता रहता है। परन्तु मैं यह विचार दे रहा हूँ कि संसार में आज देवासुर संग्राम, मानवीय धारा में नहीं, समाज में, प्रजा में भी है। यह आज कोई नवीन वाक्य नहीं है। जिस काल से सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ, इसमें चमत्कार, इसमें एक महान

ऐसा प्रकाश आया था। मानवीय समाज में तो देवासुर संग्राम भी प्रायः होता रहता था। मानव की प्रवृत्तियों में भी देवासुर संग्राम होता रहता है।

शत्रुता रहित तथा कटुता रहित प्रकाश

आज मैं जब यह दृष्टिपात करने लगता हूँ कि यह समाज महत्ता को लाने के लिए तत्पर रहता है। मेरे पूज्याद गुरुदेव ने अभी अभी अपना विचार प्रकट किया। इनका जो विचार था। वह एक मानवीय समाज के लिए था। मेरा विचार भी मानवीय समाज के लिए ही रहता है। परन्तु उसमें केवल एक ही विचारधारा है कि जिस मानव में कटुता होती है, शत्रुता होती है तो उसमें कटुता का भाव होता है। जब कटुता के लिए हुए नहीं होती जब समाज उसको स्वीकार कर लेता है। क्योंकि जब समाज अपनी दृष्टि को ऊर्ध्व नहीं बनाता तो सत् वाक्य और सद्गुरुषों के आदेशों को कटुता में परिपादन करने लगता है। परम्परा से ही ऐसा प्रायः होता रहा है।

मैं एक वाक्य यह प्रकट करने चला हंँ कि आज उस यजशाला में जब विराजमान हो जाते हैं, यज्ञवेदी पर जब अपनी आभा को लाने का प्रयास करते हैं तो हमें ऐसा प्रतीत होता है कि वास्तव में समाज में यज्ञों की ज्योति होनी चाहिए। सुगन्धि होनी चाहिए। वह यज्ञों की सुगन्धि और यज्ञों के साथ में यज्ञमान का विचार ऊँचा होना चाहिए।

आज समाज कहाँ है? आज मैं जब यज्ञमानों के ऊपर दृष्टिपात करता हूँ, जब मैं इस समाज पर अपने विचार को लाने का प्रयास करता हूँ तो मुझऐसा प्रतीत होता है कि आज संसार में, प्रत्येक स्थान पर रूढ़ि का प्रचलन हो रहा है। क्योंकि रूढ़ि का जो प्रचलना है वह मानव समाज को मानवीयता के लिए हानिकारक होता है। वास्तव में हानि नहीं होनी चाहिए। क्योंकि रूढ़ि समाज को और राष्ट्र को उन्नत नहीं होने देती। नाना प्रकार के सम्प्रदाय, नाना प्रकार के विवाद होते रहते हैं। सबका एक मूल कारण अज्ञान है। यदि मानव समाज में अज्ञान नहीं हो तो संसार में रूढ़ि भी नहीं बनेगी। रूढ़ि बनती उस काल में है जब कि विचार नहीं आता। जब व्यापक विचार नहीं होते

तो उसमें रूढ़ि होती है।

आज प्रत्येक मानव यह उच्चारण करने लगता है कि अग्नि की जो पूजा है यह एक प्रकार का पाखण्ड है। दूसरे सम्प्रदाय और विचारधारा वाले इसको उच्चारण करते हैं। मैं यह वाक्य उच्चारण करता हूँ कि इसके बिना वातावरण शुद्ध नहीं होता। जब तर्क के आधार पर और धार्मिक, दार्शनिक सिद्धान्त को लेकर चलते हैं तो अग्नि की पूजा को पाखण्ड, पूजा का अर्थ ही संसार में नहीं जाना जा सकता। संसार में पूजा के मूल रहस्य को इसकी मीमांसा को लोग नहीं जानते। किसी भी पदार्थ के सदुपयोग का नाम ही उसकी पूजा है। आज हम अग्नि की पूजा करते हैं, अग्नि में यज्ञ करते हैं, जब अग्नि में सुगन्ध पदार्थों का पान कराते हैं तो वातावरण पवित्र हो जाता है। सूक्ष्म धाराएं द्यु लोकों को प्राप्त होती है। क्योंकि मानव की विचारधारा से सूक्ष्म कोई विचार नहीं होता। मन की गति इतनी विशाल है। क्या एक क्षण समय में यह चन्द्रमा क्या नाना प्रकार के भूमण्डल की परिक्रमा कर देता है। तो कितनी विशाल गति है। कितनी विशाल तरंगे हैं। हम पाखण्ड तो उसे कहा करते हैं जो सम्प्रदाय सुगन्धि के विपरीत अपना कार्य करता है। मैं यह विचारता हूँ कि अज्ञान इतना व्यापक स्वरूप धारण कर लेता है कि मानव उस को अच्छी प्रकार जान नहीं पाता। परन्तु इसमें नाना प्रकार की विडम्बना हो जाती हैं। वह जो विडम्बना है वह विनाश का कारण है। राष्ट्र वाद को उन्नत नहीं होने देती है। राष्ट्र वाद में नाना प्रकार की आभाएं ओत प्रोत देती है। ऐसा मुझे प्रायः स्मरण है।

परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कल यज्ञमान के लिए कामना उच्चारण कर रहे थे उनकी कामना, उनका जो उद्देश्य और निर्देश है कि यज्ञमानों को लोक लोकान्तरों में जाना चाहिए। द्यु लोक को प्राप्त हो जाना चाहिए। परन्तु पूज्यपाद गुरुदेव ने तो बहुत ही सुन्दर कहाँ परन्तु विचारना यह है कि वह यज्ञमान कितना पात्र है? कितना उसमें रजो गुण और तमो गुण है? तन मे देखो, रसना की कितनी विशाल अहः आवृत मात्राएं हैं। इसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। मैं इसको व्यापक रूपों में वर्णन करने जा रहा हूँ। परन्तु मैंने एक अनुभव किया अपने जीवन में कि संसार में जो महापुरुषों की वार्त्ताओं

को अपने से दूर करता है। वह मानव कोई संसार में सफल नहीं होता। परन्तु अपनी विडम्बना के कारण अपनी धुर्तता के कारण अपनी कृति के कारण (छल), मैंनं भी यह कार्य किया है। मैं भी किसी काल में किसी भी महापुरुष की वार्त्ता नहीं मानता था। परन्तु जब महापुरुषों के आदेशों के अनुसार मेरी एक धारणा बन गई, मेरा एक विचार बन गया जो मेरी अवस्था जीवन के अपनों से शून्य बन गई। जीवन मुक्त बन गई। मूल परिणाम यह कि महापुरुषों की जो वार्त्ता और महापुरुषों का जो संदेश है, एक आदेश है? उनका जो विचार है उसमें कितनी पावनीयता है। मानव में सूक्ष्म सा अंकुर होने से नाते ही अभिमान की मात्रा उत्पन्न हो जाती है। अरे, प्रभु के देवो तुम्हें ! अभिमान किस वस्तु पर है? क्योंकि जो वस्तु तेरे द्वारा है वह तो सब प्रभु की है। शरीर का निर्माण भी प्रभु ने किया है। आज मानव अभिमान कर रहा है इसको यह प्रतीत नहीं कि मन में एक क्षण समय में कितनी धाराओं का जन्म होता है। जब कि वह धारा मनुष्य के शरींर में रहती हैं, उससे ही उन की उत्पत्ति होती है। उनके उत्पत्ति होने का समय काल भी प्रतीत नहीं, तो इसलिए अभिमान किसका कर रहे हो? क्या अभिमान की वस्तु तुम्हारे द्वारा है? कौन सा कार्य तुमने जगत् में किया है? जो आज तुम्हें इतना अभियान हो रहा है। क्योंकि प्रत्येक वस्तु चैतन्य देव की ही तो है। और चैतन्य देव की होते हुए आज तुम्हें इतनी अभिमान की मात्रा उत्पन्न हो जाती है, तो यह अभिमान तुम्हारे मानवीयता को विनाश के मार्ग पर ले जाने वाला है। इसीलिए मैं इन वाक्यों को उच्चारण कर रहा हूँ। क्या समाज में निरभिमानता आ जाती है, विचारधारा एक महत्तावाली बन जाती है तो उस विचारधारा को लाने का प्रयास करना चाहिए।

जब मैं यह विचारता हूँ कि समाज वहाँ चला गया? क्या समाज था पूर्व में ऋषि मुनि जब सन्तानोत्पत्ति करते थे तो वे अनुसन्धान करते रहते थे। अनुसन्धान के आधार पर विचारशील सन्तान को जन्म देते थे। वह विचारशील सन्तान राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाने वाली थी। वह पुरातन काल मुझे बारम्बार स्मरण आता रहता है। आज मैं उन वाक्यों की पुनरूक्ति देने नहीं आया हूँ। परन्तु इस काल में जो रूढ़ियों के आँगन में विराजमान होकर के मानवता का ह्रास और विनाश कर बैठा है। महाभारत के काल

के पश्चात् इस संसार में अज्ञानता का प्रसार हुआ। मानव ने हानि लाभ को नहीं विचारा, हीनता को नहीं विचारा केवल स्वार्थ वाद की मात्रा पर अपने समाज को बनाना प्रारम्भ कर दिया। वेद का जो ब्रह्म वाक्य है उसको भी अपने से दूर करने का प्रयत्न करते रहे। परन्तु उसका मूल कारण अज्ञान है। इसी से एक दूसरे में विवाद हो जाता है। जैसे महाभारत का संग्राम हुआ। परन्तु वह अधिकार, अनधिकार के विवेक को त्यागने से हुआ था। उसका मुल कारण केवल यही था। उसकी आभा समाप्त हो गई, परन्तु उस के पश्चात् अपनी नई रूढ़ियां बनती रहीं, अज्ञान आता रहा। अज्ञान के आने का परिणाम यह हुआ कि मानव की जो मौलिक भावना थी, विचारधारा थी वह कहीं की कहीं चली गई। वह शब्दों में रह गई, क्रियात्मक में न रहने के कारण धर्म और मर्यादा का विनाश होना प्रारम्भ हो गया। इसके पश्चात् नाना प्रकार की रूढ़ियां, नाना प्रकार की विचार धाराएं प्रारम्भ होने लगी। यह विचारधारा जातीयता से होती है जातीयता जो मानवीय जाति में मानवीय समाज में भी जब भिन्नता विचारों की आती है तो स्वार्थ में इस प्रजा का विभाजन हो जाता है। नाना प्रकार के विभाजन हो जाते है। उनमें पड़कर अज्ञानी और ज्ञानी को नहीं विचारा जाता। केवल वह एक रूढ़ि बन कर के समान का विनाश कर देती है। आज मैं यह वाक्य इसलिए उच्चारण कर रहा हूँ कि आन हम अपनी मानवता को ऊँचा बनाने का प्रयास करें।

परन्तु देखो, मुझे स्मरण आता है इसका जीवन। महात्मा ईसा का जीवन वास्तव में विचित्र था। परन्तु महात्मा ईसा ने इस भारत भूमि में आ करके देखो, नाना प्रकार की विद्याओं का अध्ययन किया आयुर्वेद की विद्या का अध्ययन ही उसके पठन पाठन का मौलिक विषय रहा था। वे ही मौलिक विचार जब वह समुद्र पार चले गए तो वे विचार वहाँ उनका कार्य करते रहे। परन्तु उन्हीं मौलिक विचारों का, मौलिक धारा का परिणाम यह कि राष्ट्र में उनके धर्म सम्प्रदाय की परम्परा उनके धर्म का प्रसारण हुआ वह भी रूढ़ि बन गई। परन्तु धर्म रूढ़ि नहीं होता। धर्म मानव की इन्द्रियों में समाहित रहता है यहाँ संसार में धर्म केवल यवनों का नहीं है। केवल ईसा का नहीं है। धर्म कोई और रूढ़ि नहीं है। धर्म एक ऐसा शब्द है, जैसे वायु मण्डल में वायु है वह प्रत्येक के लिए

एक ही तुल्य रहती है, सुर्य का प्रकाश है, इसी प्रकार का रहता है। धर्म किसे कहते हैं? धर्म की मीमांसा करते हुए मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा था कि धर्मः प्रवेः आचरणः। जो धर्म को धारण करता है। धर्म क्या है? सत्यवाद, मानव वाद आदि जितनी भी सुन्दरताएं हैं सुगन्धित वस्तुएं हैं, उन सबका नाम धर्म है। अपने कर्त्तव्य को पालन करने का नाम धर्म कहा गया है। तो आज हम जिस धर्म को अपनाने का प्रयास करते रहे। परन्तु आज के समाज ने आज के वर्तमान के जगत् में धर्म को केवल राष्ट्रीय स्वार्थ ही माना है। वहाँ यहाँ संसार में ईसा के मानने वालों ने ईसा को रूढ़ि में बदल दिया। इसी प्रकार महात्म बुद्ध के मानने वालों ने महात्मा बुद्ध को रूढ़ि बना दिया। महात्म महावीर स्वामी के मानने वालों ने महावीर को रूढ़ि बना दिया। उन्होंने अहिंसा परमो धर्मः। को अपनाने का प्रयास किया। उस अहिंसा परमो धर्म को अपनाने के पश्चात् समाज में रूढ़ि बनती चली गई। क्योंकि वेदों का अध्ययन न करने के कारण जो अपने दार्शनिक विचारों को त्यागने के नाते यह मानवीय विचारधारा में रूढ़ि बन जाती है। परन्तु वह रूढ़ि वास्तव में होनी नहीं चाहिए। वह रूढ़ि विनाश का कारण है। वह रूढ़ि राष्ट्र को हीनता देने वाली होती है। इसीलिए जब मैं यह विचारता रहता हूँ। महात्मा मोहम्मद का भी यह विचार नहीं था। परन्तु मैं उसको महात्मा कहता तो नहीं हूँ। परन्तु कोई वाक्य नहीं, वाक्य यह कि उन्होंने रूढ़ि नहीं बनाई। परन्तु वह रूढ़ि उनके आन्तरिक विचारों में थी। शब्दों में रूढ़ि नहीं परन्तु हृदय की जो रूढ़ि होती है वह एक समय समाज में एक सूक्ष्म रूप से स्थूल रूप धारण कर लेती है। तो वही स्थूल रूप संसार के समीप है। वह संसार के, इस जगत् के समीप आता चला जा रहा है। अहः ! उन्होंने क्योंकि धर्म को नहीं जाना, धर्म को न जानने केकारण उन्होंने देखो, इसी को धर्म स्वीकार किया। जो मोहम्मद को मानेगा जो मानव उसकी पुस्तक को स्वीकार करेगा। वही संसार में धर्म और स्वर्ग का गामी बनेगा। वही मानव वैकुण्ठ का स्वामी बनेगा। ऐसा माना परन्तु वास्तव में धर्म इसको नहीं कहते। धर्म तो उसे कहतें हैं जो धर्म मानवीय अच्छाइयों को लाने का होता है। मानव समान के लिए होता है। इसलिए

मैंने कई कालों में प्रकट करते हुए कहा था।

आज हमारी यह आकाशवाणी मृत मण्डल में जा रही है। जहाँ मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का स्थूल शरीर यज्ञम् भूतानी यज्ञम् ब्रह्म मैं अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा यज्ञ की प्रकियाओं को यज्ञ जैसे उत्तम कर्म को मैं दृष्टिपात कर रहा था। मेरा हृदय तो बड़ा ही गदगद हो रहा था। परन्तु जहाँ गदगद हो रहा था वहाँ एक वाक्य को दृष्टिपात करके मुझे बड़ा कष्ट हो रहा था। परन्तु वह कष्ट यह था वह भी समय होता है, मानव का वह भी समय होता है जब भंयकर वनों से उत्सव के समीप लाया जाता है। यज्ञशाला में, ब्रह्मा बनाया जाता हो मानव कहाँ चला जाता है? मानव के कर्म कहाँ रह जाते हैं? वह भी समाज, वह भी विचार है जहाँ समिधा के अध्यक्ष बनने का सौभाग्य प्राप्त होता है। परन्तु मैं इसलिए उच्चारण कर रहा हूँ, मानव का कर्म, मानव की विचारधारा, मानव को कहाँ ले जाती है? किस स्थान पर, किस स्थल पर ले जाती है? परन्तु जहाँ इस समाज में जन्म लेने के नाते नाना प्रकार के समाज में भिन्न भिन्न प्रकार की मतियां होती हैं। यह आज कोई नवीन वाक्य नहीं है।

पुरातन काल में भी नाना प्रकार के ऋषियों में विचार होते रहते थे। ब्रह्म व्यापः विचार धारा, दूषित विचारधारा आज भी है पुरातन काल में भी थी। परन्तु यह तो समाज का विचार है। मैंने अपने जीवन में एक संकलन किया था कि मेरा जो पूज्यपाद गुरुदेव का शरीर है परन्तु उसको मैं भ्रष्ठ नहीं होने देता, होने नही दूंगा। यह मेरा संकल्प है। यह मेरी विचारधारा है। इस विचार को बारम्बार प्रकट करता रहता हूँ इनकी मनो भावना की प्रवृत्तियां ही दूषित न होने के कारण मानव इनके विचारों को एक महत्ता में परणित करता रहता है। सदैव मानव में हृदय की लग्नता होती है, लग्नता क्या है? लग्नता यही है कि पुरातन काल में इस भूमि पर तपस्या की जब यह वारणावत पुरी नहीं थी। इस स्थान पर पांच ऋषियों ने तप किया था। वे पांच ऋषि कौन थे। महाराजा नहुष जिन पर सवार हो कर इन्द्र बनने की कामना लेकर चला था। परन्तु देखो, वह यह स्थली है, यहाँ हर नदी का तट है उसी तट पर चार ऋषि तपस्या करते थे। अहः वही तट है, वही भूमि है जिस भूमि पर नारद मुनि ने इन्द्राणियों को प्रेरणा दी थी।

महाराजा युधिष्ठिर ने द्वापर के काल में यहीं यज्ञ किया था। मैं यह वाक्य इसलिए उच्चारण कर रहा हूँ कि यह कितनी पुण्य भूमि रही है। इस पर कितने ऋषियों ने तप किया है। और वे सबके सब चार ऋषि महर्षि विभाडंक के यहाँ आ पहुंचे। यहाँ परीक्षा मे अवतीर्ण होने लगे। ऋषि मुनियों ने यहाँ महर्षि मुग्दल इत्यादि मुनियों का भी सत्युग के बहुत पुरातन काल में तपस्या एवं निवास का स्थान रहा है। मैं इस वाक्य का अधिक विस्तार नहीं दूंगा। यह पुण्य भूमि है, इस पुण्य भूमि पर संसार की कल्याण की कामना को लेकर के आत्मा आती हैं। वे भौतिक वातावरण में लिप्त न होने के कारण भौतिक द्रव्य को संसार के कल्याण में परणित करके उसका पुनः उत्थान करते हैं। क्योंकि द्रव्य की एक ही मूल ध्येय होता है कि द्रव्य से पुण्य भूमि को ऊँचा बनाना जो पुण्य भूमि में भी अपना पुण्य नहीं दे सकता वह संसार में अपने पाप को निगलता रहता है। मैं यह वाक्य इसीलिए प्रकट कर रहा हूँ पुण्य भूमि को उत्तम बनाना मानव का कर्त्तव्य है। अच्छाइयों को लाने का प्रयास किया जाए।

नदी के तट पर उपासना क्यों।

जब मानव अहिंसा परमाधर्म की वेदी को लेकर के चलेगा तभी अच्छाइयां आती हैं ऐसे ही यहाँ और भी नाना ऋषि पुरातन काल में रहे हैं। परन्तु जब वारणावत क्षेत्र नहीं था उस समय यहाँ नाना ऋषिवर आ करके हिण्डन के किनारे तपस्या करते थे। विचरण करते थे। क्योंकि नदी तटम् ब्रह्म व्यापन प्रवे, नदी के तट पर ही ब्रह्म की उपासना होती है। वह ब्रह्म का स्रोत बन कर रहता है। क्योंकि आपो ज्योति आपो में ज्योति है। और जो जल का दिग्दर्शन करता रहता है उस ज्योति का सम्बन्ध मानव के मन से होता है। और मन का स्वभाव जल समान है। इसी प्रकार उस विचारधारा को लाने का प्रयास करना चाहिए। इसी प्रकार यहा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का बहुत पुरातन काल से हृदय का मिलान होता रहा है।

परन्तु आज यह तो मानव का प्रायः कर्त्तव्य बन जाता है। आज जो मानव सुन्दर कर्म करता है उसके विषय में नाना प्रकार की विडम्बना भरी वार्त्ताएं दूषित विचारधाराएं लोग

थोपते हैं परन्तु पूज्य गुरुदेव का दोष नहीं। इसमें तो जो मानव अपने हृदय में पाप भावना लाता है। उस मानव का सुकृत का नाश हो जाता है। इसलिए यह जो परम्परा का एक सन्देश है, एक विचारधारा है, आज कोई नवीन वाक्य नहीं है। परन्तु देखो, ऋषि मुनियों के प्रति जब मानव की दूषित भवना हो जाती है उस काल में उनका सुकृत हनन हो जाता है। प्रायः मानव यह कहते रहते हैं वर्तमान का ब्रह्मण समाज यह कहता है कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव की आकाशवाणी मृत मण्डल में जाती है उसमें वेदों का पठन पाठन नहीं है, यह वेद धारा नहीं है इसके सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रकार के विचार हैं। परन्तु मैं इसमें यह विचार देता रहता हूँ क्या पुरातन काल में इन सब संहिताओं का पठन पाठन प्रायः होता रहता था। शाखाएं आश्वाति महर्षि और 1127 महर्षि वशिष्ठ काल में रही थी परन्तु उनमें भी भिन्न भिन्न प्रकार का भेदन होता रहता था।

रहा यह वाक्य कि कुछ व्याकरण की भिन्नता है क्योंकि जब से सृष्टि प्रारम्भ हुई है। व्याकरण में नाना प्रकार के परिवर्तन आते रहे हैं।

रहा यह वाक्य कि मेरा यह शब्द यह देवनागरी में क्यों उच्चारण होता है। इस विषय में एक विचार यह आता है मानव के विचार में। क्योंकि यह भाषा ऋषियों के काल में नहीं थी। ऋषियों की विचारधारा में नहीं थी। ऐसा भी समाज कहता है। इस विचारधारा का निराकरण यह है कि प्रत्येक जो भाषा है, प्रत्येक जो वाणी का उदग्म है तथा यह जो देवनागरी है, यह अन्तरिक्ष में अंकुर रूपों से विराजमान रहते हैं। यदि यह विराजमान न होती तो वर्तमान में इस वाणी का प्रचलन कैसे होता।

रहा यह वाक्य कि अज्ञानता के कारण क्योंकि अज्ञानता कहाँ है अज्ञानता का मूल क्या है? अज्ञानता की जो मौलिकता है वह भी तो प्रकृति का मानना चाहिए। परन्तु इस को यदि प्रकृति का स्वीकार करोगे तो विचार यह आता है कि प्रकृति के गर्भ में माता वसुन्धरा के गर्भ में प्रत्येक शब्द अंकुर रूप से विराजमान रहता है। क्योंकि जब देवासुर संग्राम परम्परा से होता रहता है तो व्यज्ञप्क् और अव्यापक, संकीर्णता तथा व्यापकता दोनों यह विचार परम्परा से मानव में आते रहे हैं। इसी प्रकार ये विचार अंकुर रूप से

विराजमान रहते हैं। परन्तु रहा इसका वेदवाणी से सम्बन्ध। यह वेदों की संहिताओं का पठन पाठनहै। रहा मूल वेदों में? परन्तु मूल वेदम् प्रवे। मैं परम्परा से यह कहता रहता हूँ किमूल वेदों की जो शाखाएं हैं, मूल वेद उनको भी संहिता कहते हैं जो चार ऋषियों का उपकरण है। वेद मन्त्रों एवं शाखा ग्रन्थों दोनों का होता है। इस उपकरण की क्योंकि वेदः प्रकाशः वेद तो प्रकाश को कहते हैं। रहा यह वाक्य की समाजमें यह आता है कि ये वेदमन्त्र नहीं है। वेदों की धारा नहीं है। वेदों की आभा नहीं है। इसलिए मैं यह उच्चारण करता हूँ। अतः एक एक मन्त्र की भी एक कृति बन गई। उन कृतियों को समाज नहीं जानता। न जानने के कारण नाना प्रकार की आभा हैं। यदि कुछ वेदमन्त्र हैं, कुछ भाग हैं तो उसमें ब्राह्मण समाज में यह मान, अपमान की मात्रा आ जाती है। आधुनिक काल के कुछ विद्वानों के समाज के ऐसे विचार हैं, हम इनको इतना प्रोत्साहन क्यों दें? यह ऐसा बालक है।

परन्तु कुछ समाज के लोग यह कहते हैं कि इससे हमारी मान, प्रतिष्ठा में हानि आती है। इस प्रकार दो प्रकार के विचार बने। पर इसमें अपना मस्तिष्क क्यों लगाया जाए। क्योंकि सबसे प्रमुख संसारमें आधुनिक काल में यह जो द्रव्य है, यही अनुसन्धान नहीं होने देता। किसी भी वस्तु का संसार में जो अलौकिक वस्तु होती है उनका अलौकिकता से निराकरण होता है। परन्तु अलौकिकता न होने के कारण वेद की आभा, वेदों का ज्ञान आधुनिक अनेक विद्वानों को नहीं है। जब तक वेद के यौगिक पुरुष नहीं होंगे। यौगिक ब्राह्मण नहीं होंगे तब तक इस का निराकरण नहीं हो सकेगा। परन्तु इनका निराकरण उसी काल में में होगा जबकि एक वेद मन्त्रों को श्रवण मस्तिष्क से करेंगे। परन्तु आज तो एक मन्त्र का भी अर्थ नहीं आता। उसकी मीमाँसा नहीं आती। इस मन की धारा को, प्राण की धारा को हृदय में ले नहीं जाते हैं यह जो आत्मा का स्वाभाविक ज्ञान है। इसी ज्ञान में वेदों प्रसार है।

आज मानव को अपनी अन्तरात्मा से इस सवस्तु को जानने का प्रयास करना चाहिए। वह हृदय से अन्तरात्मा से उसका हृदय पुकार करके कहता है कि यह वस्तु इस प्रकार है। इसको कहते हैं मन्त्रों का योग। मन्त्रों के योगी कौन हैं? हमारे यहाँ महर्षि वेद व्यास,

महात्मा जमदाग्नि इत्यादि ऋषि हुए। जो मन्त्रों के योगी थे। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव भी मन्त्रों के प्रायः योगी रहे हैं। रहा यह वाक्य कि वर्तमान में वेदों का जो प्रचलन है इसके ऊपर मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को बल दिया। रहा यह वाक्य कि मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा कि यह जो समाज है आधुनिक काल का जो जगत् है उसमें देवनागरी में प्रचलन होना चाहिए। कुछ अभ्यास के कारण यह पुनः प्रयत्न हुआ।

अब मानव यह प्रश्न करता है कि ये योगी कौन हैं या नहीं? इस को हम स्वीकार कैसे करें। परन्तु जब देवनागरी का इस प्रकार का प्रचलन हो सकता है तो हम भी दूसरे राष्ट्रों में उनकी प्रचलित राष्ट्र भाषा का उच्चारण करना सम्भव हो सकता है? परन्तु वास्तव में यह ऐसा एक प्रश्न है। हमारे समीप जो इस प्रश्न का उत्तर देने में शुद्ध तो रहता हूँ। इसका विचार केवल यह है कि कुछ समय तक जब प्रेरणा प्रदाता वायु मण्डल को अन्तःकरण छू ले तो वह वाक्य उच्चारण हो सकता है।

रहा यह वाक्य कि योगी तो इतना समर्थ होता है कि वह उस भाषा के वाक्य उच्चारण कर सकता है। पर योगी की आत्मा में ज्ञान है वह ज्ञान व्यापक तो होता है। परन्तु उसमें सीमितता भी होती है। मूलतः इसमें भेद यह होता है कि वह उस वाणी को उच्चारण करेगा कि जिस वाणी का अन्तःकरण में संस्कार दिया जाता है। इसलिए संस्कार यदि उसमें भर दिया जाता है उन संस्कारों को व्यापक बना दिया जाता है तो वाक्य उच्चारण करना वास्तव में सम्भव हो जाता है। मैं इन वाक्यों को इसलिए उच्चारण कर रहा हूँ क्योंकि संस्कार का जो प्रचलन है, संस्कार की जो धाराएं हैं उसी के आधार पर मानव को यह वाक्य विचार विनिमय कर लेना चाहिए। परन्तु मैं इस वाक्य को अधिक ले जाना नही चाहता हूँ। वाक्य यह कि संसार में ये वाक्य तब सम्भव हो सकते हैं। वाक्य यह कि संसार में ये वाक्य जब सम्भव हो सकते हैं, परन्तु यदि अप्रहः कृति, होता रहे व्यवहार में आता रहे। इस प्रकार का विचार धारा परम्परा से रही है।

अहाः रहा यह वाक्य कि इन धाराओं के वायु मण्डल में अंकुर कैसे होते हैं? क्योंकि अन्य भाषाओं के अंकुर भी जब रहते हैं। परन्तु इन अंकुरों की एक मूलधारा वेद ही है। जो देवनागरी का भूषण है। उसको धारण करना, उसकी मीमांसा करना यह मानव

का कर्त्तव्य है। तो मैं यह वाक्य उच्चारण कर रहा था कि आज इसके ऊपर अनुसन्धान क्यों नहीं हो पा रहा है। क्योंकि समाज में जो स्वार्थ है, मान प्रतिष्ठा का एक बल है इसलिए अधिक इस स्वार्थ के कारण इसका अर्थ, इसकी मीमांसा, इसका अनुसन्धान नहीं हो पाता। जब तक स्वयं मानव अपना अनुसन्धान कुछ नहीं कर पाता तब तक पूज्यपाद गुरुदेव का अनुसन्धान यह नहीं कर सकता है। क्योंकि अनुसन्धान होना चाहिए परम्परा से ही होना चाहिए। अनुसन्धान जगत में होता रहता है। मैं भी करता रहा हूँ। परन्तु और भी शेष चर्चाएं किसी काल में प्रकट करेंगे। आज का केवल वाक्य यह उच्चारण कर रहा हूँ। कि आज हम जिस महान सुन्दर विचार को लाने का प्रयास करें। रहा वाक्य कि आज का समाज, आज का राष्ट्रवाद, राष्ट्रवाद में मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक वाक्य कहा कि समाज में यज्ञमान ऊँचे होने चाहिए। मैं भी यह कह रहा हूँ कि यज्ञमान ऊँचे होने चाहिए। परन्तु वह उच्चता विचारों से आती है, महापुरुषों के आदेश के अनुसार आती है। यदि उसके अनुसार बरतने लगता है। अहा इसलिए मैं यह भी वाक्य उच्चारण करने जा रहा हूँ कि मानव में यह अभिमान नहीं होना चाहिए कि मैंने जो कोई रचना की है उस रचना का मूल कारण तो प्रभु ही है। और किसी कारण ! से कोई मानव ऐसा होता है क्या? जैसे सूर्य अपने प्रकाश से प्रकाशमान होता है। ऐसे ही कहीं कहीं मानव अपने प्रकाश से प्रकाशमान होते हैं। इसलिए आज हम यह भी अपने में अभिमान न करें। परन्तु मानव को उच्चता का कर्त्तव्य है। उच्च विचार होना यह तो मानव का एक आभूषण है। आभूषण को अपनाना चाहिए। तो इसलिए मैं वाक्य उच्चारण कर रहा हूँ कि समाज में उच्चता और महत्ता होनी चाहिए।

परन्तु मानव कितना भी षड्यन्त्र करने वाला हो इसका जो षड्यन्त्र है इसकी जो एक विडम्बना है वह उसी तक रहती है, जहाँ तक उसकी सीमा होगी। परन्तु जब यौवनों का आक्रमण सीमा से कटिबद्ध हो जाता है। आज देखो, मोहम्मद के मानने वालों ने नाना रक्त की धारा के आधार पर इस मानव सम्प्रदाय को चलाने का प्रयास किया। और वह चलाया। उसका प्रचलन हुआ। परन्तु वह समय बहुत निकट आ रहा है और चल रहा है कि उनमें भयंकर अग्नि उत्पन्न हो रही है। जब आपसी विचारधाराओं में

मतभेद हो जाते हैं। वह शनैः शनैः अग्नि प्रदीप्त होने लगती है। जैसे रक्त के आधार पर सम्प्रदाय का विनाश हो जाता है। इसलिए उसको धर्म और मानवता का कृत्य नहीं कहते। मोहम्मद के मानने वालों ने रक्त के आधार पर दूसरों को नष्ट करने के आधार पर इनके मतवालां ने सम्प्रदाय का प्रयास किया। परन्तु वह समय निकट आ रहा है। अब रक्त की धारा के आधार पर यह सम्प्रदाय समाप्त हो जाएगा। क्योंकि मूल कारण यह सम्भवा कृति आभ्याम् गतम् ब्रह्म व्यापः। क्योंकि जब अग्नि प्रदीप्त हो जाती है जो धर्म की अग्नि होती है, मानवीयता की जो अग्नि होती है वह रूढ़ि की अग्नि को शान्त कर देती है। इसलिए समाज में यह विचार होना चाहिए क्या समाज में एक महत्ता, जब मानवता नहीं होती। क्योंकि मुझ अच्छी प्रकार प्रतीत है। क्या जब मानव अपनी मानवता को नष्ट कर देता है तो वह स्वतः समाप्त हो जाती है।

विज्ञान के प्रचार से रूढ़ि का नाश होता है।

इसी प्रकार महात्मा इस ईसा के मानने वालों ने इस धर्म को कुछ अग्नि की वेदी पर लाने का प्रयास किया। परन्तु जब वहाँ विज्ञान का प्रचलन हुआ तो ईसा के विचार दग्ध हो गए। इसी प्रकार जब विज्ञान पनपेगा, जब विचारधारा पनपेगी तो यह जो अज्ञान है यह जो रूढ़ि का अन्धकार है यह नष्ट हो जाएगा। अन्धकार न रह सकेगा समाज में।

क्या आज मानव राष्ट्रवाद की वेदी पर जाना चाहता है। राष्ट्र को ऊँचा बनाना है तो राष्ट्र में दो भाग होने चाहिए। अहा राजा के राष्ट्र में शिक्षा जो विभाग है। इसमें नाना प्रकार की त्रुटियां हैं। उनमें सबसे प्रथम त्रुटि यह कि कन्याओं के विद्यालय में सूक्ष्मता तथा भिन्नता होनी चाहिए। यदि एक रूपता रहेगी तो हमारे में नैतिकता समाप्त होती जा रही है। यह नैतिकता कदापि नहीं आ सकेगी। क्योंकि विद्यालयों में उपनिषद और वैदिक परम्परा शिक्षा नहीं होगी। ब्रह्मचर्य नहीं बनाया जाएगा। आचार्य सुन्दर नहीं होंगे। तो शिक्षालय और राष्ट्र ऊँचा नहीं बनेगा। इसलिए मैं यह उच्चारण करने जा रहा हूँ? मानव की हमारे यहाँ शिक्षालय में परम्परा से ही पृथ्वी मण्डल से लेकर के और सूर्य मण्डल

तक विद्यार्थियों की उड़ान रही है।

आज का मानव यह कह रहा है कि पूर्व काल में विज्ञान नहीं था। क्यों नहीं था? विज्ञान, कहाँ से आया? विज्ञान कहाँ था। यह विज्ञान, अब कहाँ से आ गया। परन्तु यह विज्ञान परम्पराओं से था। महात्मा ध्रुव जैसा विज्ञान अब तक नहीं आ सका। देखो, वर्षो तक भी इसी प्रकार विज्ञान चलता रहे तो महात्मा ध्रुव वाला अनुसन्धान 100 विज्ञान नहीं कर सकता। जिनमें सहस्रों सूर्य समाहित हो जाते हैं। ऐसे ध्रुव मण्डल में यातायात के यन्त्र बना देना यह महात्मा ध्रुव का कर्त्तव्य था। तो आज का विज्ञान चन्द्रमा पर जा रहा है, परन्तु देखो, चन्द्रमा पर जाने का अभिप्राय केवल समाज ने यह स्वीकार कर लिया। आज के विज्ञान की उड़ान ऊँची बन गई है। यह नहीं यह तो परम्परा से उड़ान ब्रह्मचारियों की रही है। इससे ऊँची रही है। महान् रही है। तो मैं इस वाक्य को इसलिए उच्चारण कर रहा हूँ।

विद्यालयों में एक उड़ान क्रियात्मक ऐसी होनी चाहिए। जिससे वह उड़ान सूर्य तक क्या नाना लोकों की होनी चाहिए। इसी प्रकार इस उड़ान के साथ में और भी विशाल उड़ान होनी चाहिए। आज मैं अधिक चर्चा नहीं प्रकट करूंगा। विचार केवल यह देना है मुझे कि आज समान में एक महत्ता को लाने का प्रयास करना चाहिए। विचार धारा को अहिंसा परमोधर्म की वेदी पर स्थापित करना चाहिए। जिसका कोई दर्शन होता है जिसमें मानवता हो जिसके द्वारा चरित्र हो वही होता है। वह धर्म नहीं होता है जिसके द्वारा चरित्र नहीं होता। वह रूढ़ि होता है। जहाँ एक दूसरे को नष्ट करने की नाना प्रकार की धारा बनाई जाती हैं। घृणा के आधार पर ही उसका जन्म होता है। घृणा के आधार पर वह समाप्त हो जाता है। इसीलिए आज का यह वाक्य मैं समाप्त करने जा रहा हूँ। वाक्य यह कि जिस पुण्य भूमि पर मेरी आकाशवाणी जा रही है वह मैं इसलिए उच्चारण कर रहा हूँ कि यह बहूत पुण्य भूमि रही है। यहाँ अनेक ऋषियों ने तप किए हैं। परन्तु तप के साथ साथ इस भूमि पर पाप भी हूए हैं। यहाँ यवनों ने, मोहम्मद के मानने वालों ने यहाँ कन्याओं के श्रृङ्गार को भी भ्रष्ट किया है। और भी नाना प्रकार के कार्य होते रहे हैं। परन्तु उसके पश्चात् भी पुण्य भूमि तो पुण्य भूमि होती ही है। इसमें कोई

आश्चर्य, सन्देह नहीं होता। परन्तु मैं इसलिए उच्चारण कर रहा हूँ। समाज में जहाँ नाना प्रकार की कुरीतियां होती हैं वहाँ सुन्दरताएं भी होती हैं। जहाँ दुर्गन्धि होती है वहाँ सुगन्धि भी होती है। इसी लिए यज्ञ का खण्डन करना मानव का पाखण्ड है, यज्ञों का मण्डन करना यह मानव का कर्त्तव्य है। यह धर्म है, विचार है, महत्ता है इसको अपनाने का प्रयास करो।

राष्ट्र को ऊँचा बनाने के लिए राष्ट्रीयता होनी चाहिए। राष्ट्रों के राजाओं का कर्त्तव्य है जो राष्ट्र का द्रोही हो उसको नष्ट कर देना चाहिए। अपने चक्र से उसका दमन कर देना चाहिए। आज जिसमें राष्ट्रीय देवतव नहीं है वह राष्ट्रीय नहीं कहलाता है। इसीलिए मैं इन वाक्यों समाप्त करने जा रहा हूँ। मैं शेष वाक्यों को प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ। वाक्य यह कि हम में धर्म, मानवता, विचारशीलता होनी चाहिए। अहिंसा परमो धर्म होना चाहिए उसको लेकर के जब हम चलेंगे तो यह समाल ऊँचा रहेगा। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पाठ होगा उसके पश्चात् वार्त्ता समाप्त हो जाएगी।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपना कुछ सुन्दर विचार !ऋषि मण्डल आज मेरे प्यारे ! दिया, इनका विचार आज मुझे बड़ा प्रिय लगा। क्योंकि जहाँ पुण्य भूमि का इन्होंने वर्णन किया। मैं इस पुण्य भूमि के इतिहास को नहीं जानता परन्तु इनका उपदेश, इनकी विचार धारा में एक महत्ता थी। प्रत्येक मानव को उसे अपनाना चाहिए। इसकी कटुता पर विचार न करते हुए हम यह उच्चारण कर सकते हैं कि मानवीय जो विचारधारा है, उसको अपनाना चाहिए। आज का वाक् समाप्त, कल समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल भी मेरे प्यारे महानन्द जी अपना विचार दे सेकेंगें। आज का वाक् समाप्त। ! लाक्षागृह बरनावा, जिला मेरठ (उत्तर प्रदेश)

९ 18 03 1972 पुष्प 19 दुर्गा का यथार्थ स्वरूप

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदी में उस परमपिता परमात्मा

की महिमा का अथवा उसकी विचित्रता का प्रायः वर्णन किया जाता है। आज के मनोहर गान में उस परमपिता परमात्मा को सर्वत्र माना है। सर्वत्र का अभिप्राय है जो प्रकृति के कण कण में ओत प्रोत है। हम उस परमपिता परमात्मा की आभा का प्रायः वर्णन किया करते हैं। जो परमपिता परमात्मा एक चेतना है और वह संसार को जो चेतनित बना रहे, जो ऋत और सत् में रमण करने वाला है। हमारे यहाँ ऋत और सत् का प्रायः वर्णन आता रहता है और ऋषि मुनियों ने बेटा ऋत और सत् के सम्बन्ध में ! बहुत ऊँची उड़ान उड़ी।

एक एक वस्तु के ऊपर बहुत अनुसन्धान किया गया। तो आचार्यजनों ने कहा है कि मानव को अनुसन्धान वेत्ता बनना चाहिए। अनुसन्धान उसे कहा जाता है जो वस्तु को यथार्थ रूपों से जानने वाला हो, उसकी आभा को ज्यों की त्यों उच्चारण करने वाला ही मानव उस आभा को जानने के लिए तत्पर होता है। मेरे प्यारे आज का !ऋषिवर ! हमारा वेद पाठ यही कह रहा है। यहाँ आज के मानव की उड़ान भी ऊँची नहीं रही है। यहाँ प्राचीन काल में प्यारी माताओं की उड़ान भी बहुत ही विलक्षण रही है। मुझे वह समय पुनः से स्मरण आ रहा है जहाँ बेटा ऋषि कन्याएं एक और चित्त करने ! वाली वह अनुसन्धान करती रहती थी। उनकी नाना प्रकार की यौगिक क्रियाओं में अभ्यास करने वाले, उन क्रियाओं को अपनाना उनका एक मानवीय कर्त्तव्य कहलाया गया है। बेटा मुझे वह समय बारम्बार स्मरण आता है जब माता अनसूया और महर्षि ! रात्रि !अत्रि मुनि महाराज दोनों एकत्रित विराजमान होकर के अनुसन्धान करते थे। बेटा हो, दिवस हो उनका विचारों का यज्ञ प्रारम्भ रहता था। बेटा वह जो विचारों का यज्ञ ! है वह कितना विचित्र है? कितना सुगन्धिदायक है? क्योंकि हम होता बन करके जब यज्ञ करते हैं उस की सुगन्धि से कई गुणी सुगन्धि विचारों की महत्ता की जो सुगन्धि होती है वह कई गुणी बन करके गृह और वायुमण्डल को पवित्र बनाती चली जाती है। हमारे यहाँ नाना प्रकार के यज्ञों का प्रायः वर्णन आता रहता है। आज मैं देवी यज्ञ के सम्बन्ध में अपना संक्षिप्त परिचय देना चाहता हूँ। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, देवी यज्ञ होता रहा है। परन्तु यज्ञ का अभिप्रायः क्या है? उसकी दो प्रकार की रूपरेखा है।

एक भौतिक है, दूसरी आध्यात्मिक है। परन्तु भौतिक जो यज्ञ है उसका वर्णन किए देता हूँ। संक्षिप्त परिचय देना हमारा कर्त्तव्य है। बेटा भौतिक यज्ञ में यज्ञमान विराजमान ! होता है, वह देवी यज्ञ करने के लिए तत्पर होता है। मुनिवरोंदेखो !, देवी यज्ञ का अभिप्रायः है दैविक विचारधारा को और मानव पर जो दैविक आपत्ति आती है उसको शान्त बना देने के लिए बेटा यह यज्ञ किया जाता है। प्रकृति से जितना कष्ट होता है ! उसे दैविक कहते हैं। प्रभु से याचना की जाती है कि प्रभु यह आपत्ति हमें नहीं चाहिए। मानो हमारे जीवन में यह प्रकृति शान्त भाव से रमण करती रहे। यही मानो आवाभ्रवे यह जो प्रकृति है यह संसार का उपकार आप के द्वार पर होता रहे। यह देवी यज्ञ दैविक जो आपत्तियां आती हैं दैविक अर्थात् आधिदैविक, आधिभौतिक, मानव पर आपत्तियां आती हैं। ये नहीं आनी चाहिए। ऐसी कामना के साथ अनुष्ठान किया जाता है। मुनिवरों उस अनुष्ठान की बहुत ही ऊँची उड़ान रहती है। !

परन्तु अभिप्राय यह कि इसको अनुष्ठान कहते हैं। अनुष्ठान की उड़ान कितनी विचित्र है? उस उड़ान के ऊपर मानव को विचार विनिमय करना चाहिए। मुझे स्मरण है माता अनुसूर्या अनुष्ठान पूर्वक यज्ञ करती रहती थी। यज्ञ का अभिप्राय यह यज्ञ करना। यज्ञ किसे कहते हैं। हमारे यहाँ प्रकार की यज्ञशालाएं होती 74 प्रकार के यज्ञ माने हैं। 15 प्रकार की यज्ञशालाएं मुख्य मानी हैं। एक चतुष्कोण यज्ञशाला 15 थी। इनमें लगभग होती है। एक त्रिकोण होती है, सप्तकोण होती है। परन्तु जो देवी यज्ञ करने वाले होते हैं जो देवी के कर्मकाण्ड को जानते हैं वह सप्त जिह्वा वाली यज्ञशाला का निर्माण करते हैं। क्योंकि अग्नि की सप्त जिह्वाएं हैं। सप्त जिह्वाओं के आधार पर सप्तम प्रकार की कोणों वाली यज्ञशाला बनाई जाती है। जिस प्रकार बेटा एक वैज्ञानिक जो परमाणुओं का ! मिलान करना जानता है। वह निर्माणवेत्त निर्माण करने लगता है और उसी प्रकार का निर्माण करता है। विषैली जो वायु है उसका सञ्चार वायुमण्डल में प्रसारित हो जाए

ऐसा विचार रहता है। इसी प्रकार यज्ञशाला का निर्माण होता है।

चैत्र मास में प्रभु के उपासक दैवी यज्ञ

मैं अवैदिकता की चर्चा नहीं करता हमारे यहाँ जो वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है उसकी चर्चा करता हूँ। जब सप्तकोण की निर्माणशाला बनाई जाती है। यज्ञशाला को दोनों रूपों से परणित किया गया है। उसमें अप्रतम् पश्चिम जो भाग है उसमें लगभग तीन जिह्वा आ जाती है। अहा उनके आधार पर ही उस आसन पर यज्ञमान विराजमान हो करके संकल्प करता है। अग्नि के समीप विराजमान हो करके संकल्पवादी बनता है। यज्ञ का अभिप्राय है संकल्प। यज्ञ का अभिप्राय है सुगन्धि देना। इस संसार को, दैवी यज्ञ का अभिप्राय है कि जो चैत्र मास होता है जैसा मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी प्रेरणा दे ! रहे हैं। इसमें जो देवी यज्ञ होते है। उसमें सप्तकोण की यजशाला का निर्माण होती है और यज्ञमान पत्नी सहित विराजमान होकर के यज्ञ करता है। सबसे प्रथम ज्योति को जागरूक करता है। ज्योति को जागरूक करके उस प्रभु से याचना करते हुए वह प्रभु की गोद में जाने का प्रयास करता है। परन्तु प्रभु की उपासना करते हुए महत्ता वाली ज्योति को जागरूक करने वाला जो यज्ञमान है वह दैवी याज्ञ करता है। तो बेटा ! अभिप्राय यह कि वह जो सप्तकोण की यजशाला है उसमें जोक सुगन्धि उत्पन्न होती है, उसमें जो तरंगे उत्पन्न होती हैं, वह बेटा इस पृथ्वी को प्राप्त हो जाती हैं। प्राप्त ! होने का अभिप्राय यह कि जो नाना प्रकार की वनस्पतियां इस पृथ्वी पर, वसुन्धरा के गर्भ में शुद्ध रूप से परिपक्व हो जाती हैं। उसमें सुगन्धि प्रदान की जाती है।

मेरे प्यारेमैं इसलिए उच्चारण कर रहा ह !ऋषिवर !ूँ यज्ञशाला में ब्रह्म को सुन्दर चुना जाता है। उद्गाता होता है। एक अध्वर्यु होता है, होताजन हों, जिनो ऋत्विज कहते हैं। बेटा जो यज्ञशाला में अग्नि प्रदीप्त हो रही है हमारे यहाँ ऋषि मुनि आचार्य द्वारा राष्ट्र ! सहस्त्रों सहस्त्रों वर् !गृहों में यह अग्नि मुनिवरोंषों से प्रदीप्त होती रही है। इसका अभिप्राय यह कि अखण्ड ज्योति जो अग्नि है यह कदापि यज्ञशाला से शान्त नहीं होनी चाहिए। वह जो यज्ञवेदी है उस यज्ञवेदी का अभिप्राय यही है कि अखंड ज्योति है।

अखंड अग्नि गो घृत को लेकर के, जो सुगन्धि करता है, अशुद्ध परमाणुओं को नष्ट करता है। वातावरण उस ही के द्वारा पवित्र होता है। आज हमें उस यज्ञ के ऊपर प्रायः अनुसन्धान करना चाहिए।

यहाँ वैदिक साहित्य में यज्ञशाला के नाना प्रकार की प्रतिज्ञा आती हैं। जो चतुर्थकोण की यज्ञवेदी है उसमें जो सुगन्धि उत्पन्न होती है वह पार्थिव सूर्य की किरणों का प्राप्त होती है। एक पन्द्रह कोण की यज्ञशाला होती है। उसको हमारे यहाँ गो मेध यज्ञ कहा जाता है। उसमें जो सुगन्धित, तरंगों की धाराओं का जन्म होता है उनका ध्रुव मण्डल तक प्रायः सम्बन्ध रहता है।

मुझे वह समय भली भांति स्मरण आता रहता है हमारे यहाँ महर्षि भारद्वाज आश्रम में पांच प्रकार की यज्ञशाला रहती थीं। उनके यहाँ दैवी यज्ञ को विष्णु यज्ञ कहते थे। विष्णु नाम सुर्य का है गो मेध याज्ञ अश्वमेध यज्ञ आदि के लिए नाना प्रकार की यज्ञशाला महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ प्राप्त होती थीं। मुझे स्मरण है महर्षि भारद्वाज के यहाँ जो पन्द्रह कोण की यज्ञशाला थी। उसमें वे आहुति देते थे। उससे जो तरंगें उत्पन्न होती थी उसके साथ में वैज्ञानिक अपनी उड़ान को उड़ान प्रारम्भ कर देते थे। मेरे प्यारे !ऋषिवर ! जिस प्रकार योगीजन सूर्य की किरणों के आश्रित हो जाता है, किरणों को ही लेकर के वह अन्तरिक्ष की उड़ान उड़ाने लगता है इसी प्रकार बेटा हमारे यहाँ दैवी यज्ञ के ! सम्बन्ध में भी ऐसा ही कहा गया है। ये जो भौतिक यज्ञ हैं, जैसा महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ नाना प्रकार की यज्ञशालाएं रहती थीं और उन यज्ञशालाओं में आहुति देते, तो बेटाउसके ऊपर अन !ुसन्धान चलता। उन परमात्माओं को एकत्रित किया जाता वे ही परमाणु इस वायु मण्डल को ऊँचा बनाते हैं। प्रकृति को ऊँचा बनाते हैं। क्योंकि प्रकृति को देवी कहा है। वेदों ने इसको देवी कहा है। धेनु कहा है, रेणुका कहा है। काली माँ कहा हैं दुर्गेवेती का है। सोम धाम केतु कहा है। इसी को वैष्णवी कहा है। परन्तु इसके नाना प्रकार के रूप रेखाएं और नाना प्रकार के भेदन हैं।

आज मैं उन भेदनों में नहीं जाना चाहता हूँ। विचार केवल यह है कि एक प्रकार का यन्त्र बनाया जाता था। उसे सुगन्धि यन्त्र कहते हैं। उसको यज्ञ कुण्ड भर कहा जाता है।

यज्ञ कुण्ड का अभिप्राय यह कि जिसमें घृत की आहुति प्रदान की जाती हैं। ऋषि मुनियों ने ऐसी यज्ञशालाओं का निमार्ण क्यों प्रारम्भ किया? हमारे यहाँ त्रिकोण वाली भी होती है और षटकोण की भी होती है। भिन्न भिन्न प्रकार के देवता होते हैं। प्रत्येक यज्ञ का प्रत्येक देवता होता है। जैसे दैवी यज्ञ का देवता गायत्री है। रैगायत्री जिसे हम इन्द्र कहते हैं उसी प्रकार विष्णु यज्ञ का देवता शिवोप्राप्त कहा जाता है। और ब्रह्म यज्ञ है ब्रह्म यज्ञ का जो देवता है वह देवता आभा गन्धर्व माना गया है। आज मैं बेटा इस ! सम्बन्ध में अधिक विवेचना देने नहीं आया हूँ। अभिप्राय यह कि आज हमें इन यज्ञों को विचारना चाहिए। जहाँ बेटा !

सुगन्धि दी जाती हो, दुर्गन्ध का विनाश किया जाता हो। यह है बेटा भौतिक यज्ञशाला ! की रूप रेखा।

अब इस का अध्यामिक रूप तुम्हें श्रवण कराए देता हूँ। हमारे यहाँ महर्षि भारद्वाज ही नहीं इससे पूर्व काल में भी सत्युग के काल में एक मुनिवरों महर्षि मानकेतु हुए थे ! राजा मानदाता के यहाँ वे राजपुरोहित होते थे। उनके यहाँ नित्य यज्ञ होता था। याज्ञ के उपर उनका विचार विनिमय होता रहता था। आध्यात्मिक रूप रेखा निर्माण करते थे। उन्होंने कहा कि हमें यह आत्मा का यज्ञ करना चाहिए। हमें नाना प्रकार की प्रवृत्तियों का यज्ञ करना चाहिए। हमारे इस मानव शरीर में पांच ज्ञान इन्द्रियां, पांच कर्म इन्द्रियां दस प्राण और मन, बुद्धि, चित्त, अंहकार है। इनसे नाना प्रकार के विषयों को मानव एकत्रित करता है। इनकी धाराएं हैं। इनके विषय हैं। और इन विषयों को जो एकत्रित करता है, उसका साकल्य बना करके उस हृदय रूपी यज्ञशाला में जो आहुति देना चाहता है बेटा वह आत्मिक यज्ञ कर रहा है। उसको हमारे यहाँ दैवी यज्ञ कहा ! यह सर्वोपरि याज्ञ !जाता है। आध्यात्मिक कहलाया गया है। तो बेटाहै वह आत्मिक यज्ञ कहलाया गया है। इसके ऊपर मानव को प्रायः विचार विनिमय करना है, विचारशील रहना है। जिसकी विचारधारा को लेकर के मानव सदैव संसार में एक महत्ता की ज्योति को प्राप्त हो जाता है।

मेरे प्यारेमैं अधिक विवेचना तो प्रकट नहीं करूंगा। आज का हमा !ऋषिवर !रा विचार

केवल यह है कि आज हमें यज्ञ करना चाहिए, उस यज्ञ के ऊपर अनुसन्धान करना चाहिए। जिस यज्ञ के द्वारा मानव मुनिवरों इस प्रकृति और वातावरण को सुन्दर ! यह जो आध्यात्मिक यज्ञ है यह कैसे किया जाता है। यह प्रश्न !बनाता है। मुनिवरों प्रत्येक मानव के मस्तिष्क में उत्पन्न होता है। आध्यात्मिक यज्ञ का अभिप्राय है आत्म चेतना को जानना, उसे जागरूक करना। मुनिवरों हमारे ऋषि मुनियों ने दो प्रकार के ! हृदय माने हैं। एक ब्रह्मरन्ध्र को भी हृदय माना है। दूसरा रसना के और कण्ठ के और नाभि के मध्य दोनों के मध्य में है मध्य भाग को भी हृदय कहा जाता है। मुनिवरों ! देखो, मस्तिष्क का हृदय और इन दोनों हृदयों का समन्वय होना चाहिए। अब दोनों हृदयों का समन्वय किस प्रकार किया जाता है। मुनिवरों वह समन्वय करते इस प्रकार ! ध्यानावस्थित हो जाओ कि वह जो ओ३म् रूपी धागा है उस धागे में प्रत्येक इन्द्रियों का विषय पिरोया हुआ होना चाहिए। जब इन्द्रियों का विषय पिरोया हुआ होता है वह एक माला बन जाती है, साकल्य बन जाता है, हृदय रूपी यज्ञशाला में उसकी आहुति दी जाती है। आहुति का अभिप्राय यह कि मन और प्राण ही जगत में, इस प्रकृति के गर्भ में अपना कार्य कर रहे हैं। जहाँ भी मुनिवरों दृष्टिपात करो वहीं प्राण और मन ! ही है। उस मानवीय शरीर में क्या आज हम पृथ्वी के इस माता वसुन्धरा के, देवी के गर्भ में जाते हैं। जितना भी खाद्य है खनिज है मानो जितना भी इसमें रस का सञ्चार होता है, विभाजनवाद है, वह सर्वत्र विभाजनवाद विश्वभान मन के द्वारा होता है। और वह मन इस प्रकृति के, देवी के गर्भ में परणित होता हुआ खनिज और खाद्य को उत्पन्न करता है। मुनिवरों वह जो नाना प्रकार का खनिज है जिसके द्वारा राष्ट्र की उन्नति ! इस महान् देवी पर अनुसन्धान !होती है। विशाल से विशाल वैज्ञानिक मुनिवरोंकरना प्रारम्भ कर देते हैं।

सबसे प्रथम यह जो आत्मयाग है। संसार का विभाजनवाद है। जितना भी पृथ्वी के गर्भ में जाओगे नाना प्रकार की वनस्पतियां वहाँ हैं, नाना प्रकार के रस स्वादन देने वाली वनस्पतियां हैं परन्तु यह सब मन ही के द्वारा है। प्राण का संसार में विभाजन होता है। परन्तु मन ज्ञान का माध्यम बनकर के आत्मा का प्रतिनिधि बनकर के मुनिवरों वह !

!प्राण को अपनी ध्वनियां देता रहता है। अपनी प्रेरणा देता रहता है। यह मन मुनिवरों प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तत्त्व है। इसीलिए ऋषि मुनियों ने कहा है, विज्ञानवेत्ताओं ने कहा है एक मन को जान लेने के पश्चात् संसार में कोई वस्तु भौतिकवाद में शेष नहीं रह जाती जिस को मानव न जान सके।

यह जो मन है यह तो नारद है। नारद किस प्रकार? जैसे नारद मुनि तीव्र गति से रमण करने वाले हैं। मुनिवरोंदेखो !, उन्हें अहायौगिक क्रियाओं के द्वारा और वैज्ञ !ानिक यन्त्रों द्वारा ऋषि मुनि देखो, ऊँची उड़ान करते थे। कोई ऋषि मुनि विराजमान हो करके सूर्य मण्डल की कल्पना कर रहा है। कल्पना ही नहीं उसको साक्षात्कार, दृष्टिपात कर लेता है। वह देवी की अनुपम कृपा है। क्योंकि देवी के नाना प्रकार के स्तम्भ हैं। मैं कल इन स्तम्भों के ऊपर विचार प्रकट करूंगा। आज तो केवल यह है कि हमें यज्ञ करना चाहिए। यज्ञ का अभिप्राय है कि जहाँ साकल्य अग्नि में प्रदान किया जाता है वहाँ विचार भी पवित्र और ऊँचा होना चाहिए। जब ऊँचा विचार होगा, ऊँचा साकल्य होगा, ऊँची महत्ता होगी उतना ही यह राष्ट्र और समाज ऊँचा बनता चला जाएगा। यहाँ यौगिकवाद भी ऊँचा बनता चला जाएगा।

सात प्रकार का अन्न

आज मैं वाक्य उच्चारण क्या कर रहा था कि आज हमें उस प्रकृति के गर्भ में जाना है इस वसुन्धरा के गर्भ में नाना प्रकार के खाद्य और खनिज उत्पन्न होते हैं। वह प्रभु की कैसी विचित्रता है। माँ तू संसार में कैसी वस्तु प्रदान करती है। जो नाना अन्न हैं जिन्हें खाद्य कहते हैं ये अन्न सात प्रकार के कहलाए गए हैं। एक अन्न वह है जो सबका साझा अन्न हैं जिस अन्न को माता अपने भोजनालय में तपाती हैं। अग्नि में तपायमान कर देती है, वह सबका साझा अन्न होता है, उसी का दूसरा भाग जो अन्न है वह पशुओं को प्रदान कर दिया जाता है मेरे प्यारे तू !प्रभु की कितनी विचित्रता है। हे रचनाकार ! प्रभु की। !जैसा जिसका उदर होता है उस मेरे प्यारे !कितना वैज्ञानिक है। मुनिवरों वह जो यज्ञ हो रहा है वह कितना विशाल !मुनिवरोंहै। बेटा जब हम यह विचारने !

लगने हैं।

सबका साझा अन्न

प्रभु ने संसार में सात प्रकार के अन्न की रचना की है, सात प्रकार के खाद्य दे दिए हैं। प्राणीमात्र के लिए। मुनिवरो, देखो, एक अन्न तो सबका साझा है दूसरा अन्न पशुओं को प्रदान कर दिया, पशु पाकर के उसको दुग्ध देते हैं। घृत प्रदान करते हैं उससे बेटा ! याज्ञिक पुरुष यज्ञ किया करते हैं।

तृतीय अन्न

इसी प्रकार तृतीय अन्न हुत कहलाया गया है हुत का अभिप्राय आहुति देना है। हे ब्राह्मणों, हे यज्ञमान आहुति के साथ साथ तेरे विचारों की !तू आहुति दे। हे यज्ञमान ! गति सूर्य मण्‍्डल में जाने वाली हो। ऐसा वेद का पाठ कह रहा है। वेद का ऋषि कह रहा है। मुनिवरोंदेखो !, वहाँ तक जाने का तुम प्रयास करो। इस की उड़ान होनी चाहिए। राजा के राष्ट्र में भी यज्ञमान की ऊँची उड़ान होनी चाहिए। इस पृथ्वी से लेकर के सूर्य मण्डल तक रमण करने वाला हो।

आत्मा

मुनिवरो, सूर्य क्या है? सूर्य अग्नि प्रधान एक गृह कहलाया गया है। जिसमें अग्नि तत्त्व प्रधान है। बेटा जो आत्मवेत्ता पुरुष होते हैं वह जानते हैं कि उस आत्मा का अग्नि ! कदापि शान्त नहीं कर सकती उस सूक्ष्म शरीर को अग्नि भी अपने में ग्रहण नहीं कर विचार यह है कि आज हमारी इतनी उड़ान इस !ऋषिवर !सकती। तो मेरे प्यारे यज्ञवेदी पर होनी चाहिए।

हमारे ऋषि मुनियों ने सात प्रकार के अन्न की विवेचना की है। हुत होता है जो देवताओं को प्रदान किया जाता है। तृतीय अन्न जिसमें देवताओं की पूजा होती है। बेटा देवता ! कौन है। देवता यह प्रकृति है। देवता वह कहलाया गया है जैसे जल अग्नि वायु है, पञ्च महाभूत जो हैं ये देवता कहलाए गए हैं। इन देवताओं का पूजन होता है, इन देवताओं को अन्न प्रदान किया जाता है। जब यज्ञमान आहुति देता है उसका दूत कौन है? वह

अग्नि देवताओं का दूत बन कर के प्रत्येक देवता को सुगन्धि प्रदान कर देती है। तो उसमें बल और शक्ति प्रदान हो जाती है उस शक्ति को प्रदान करता हुआ मानव अपने जीवन को बेटा अग्रणीय बनाता चला जाता है। !

मेरे प्यारेआज मैं विवेचना देने नहीं आया हूँ !ऋषिवर !, केवल संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ। मुनिवरों हुत और प्रहुत कहते हैं पुरोहित की सेवा करने को। पुरोहित कौन ! है? जो यज्ञमान को पराविद्या प्रदान करते हैं। और ये कहते हैं कि हे राजन् आज ! तू पराविद्या को ले। वह चैतन्य देवता कहा !तू पराविद्या को धारण कर। हे यज्ञमान जाता है, वह बूद्धिमान है। जिनको ब्राह्मणजन कहा जाता है। उनको पुरोहित कहा जाता है।

वह प्रहुत कहलाते हैं। उनको दिया जाता है। वह चतुर्थ प्रकार का अन्न कहलाया गया है। वह जो अन्न है वह अन्न मुनिवरोंदेखो !, जो ब्राह्मण को दिया जाए। विद्या भी इसी के गर्भ में होती है। क्योंकि बुद्धिमान को दिया हुआ जो पदार्थ है, द्रव्य है वह प्रहुत कहलाता है। प्रहुत इसलिए कहलाया है कि वह पुरोहित बनकर के इस संसार को सुन्दर बनाता है और यज्ञमान को ऊँचा बनाता है।

परमात्मा ही यथार्थ में पुरोहित

राजा घोषणा करता है वैदिक साहित्य के आधार पर, वह यज्ञमान को पत्नी सहित ऊँचा बनाने का प्रयास करता है। वह पुरोहित कहलाया गया है। जो पराविद्या प्रदान करने वाला है। वास्तव में हमारे वैदिक साहित्य में पुरोहित नाम जो प्रभु का ही माना गया है। पुरोहित बनकर के हमें ऊँची ऊँची प्रेरणा दे रहा है। उसको पुरोहित कहा गया है। हे प्रभु तू कैसा पुरोहित है। यह चतुर्थ प्रकार का अन्न है। !

तीन प्रकार का और अन्न उस देवी ने, उस देव ने, उस ममतामयी ने बेटा जो आत्मा ! को प्रदान कर दिये। उस अन्न का अभिप्राय यह है कि हम नेत्रों से उस रूप का भरण करते हैं। घ्राण के द्वारा सुगन्ध, दुर्गन्ध का भरण करते हैं, श्रोत्रों के द्वारा शब्दों का भरण करते हैं। बेटा यह आत्मा का अन्न है। जितना यह सुन्दर पवित्र अन्न होगा !

उतनाही बेटा आत्मा बलिष्ठ होगा। जितना नेत्रों से शुद्ध पवित्र और भद्र दृष्टि हमारी ! रहेगी उतना ही आत्मा का बल बुद्धि को प्राप्त होता रहेगा जितना इस घ्राण से हम सुगन्ध का पान करते रहेगें। प्राण की गति को जानते रहेंगे, प्राण की गति को जानते रहेंगे उतना ही आत्मा बलिष्ठ और बलवान होता रहेगा।

इन तीनों से पवित्र अन्न ग्रहण करें।

इस आत्मा के तीन प्रकार के अन्न हैं। जो प्रभु ने दृष्टि के प्रारम्भ में इस आत्मा को प्रदान किए थे। ये जो तीन प्रकार के अन्न हैं वे प्रारब्ध के आधार पर प्राप्त होते हैं। आज हम इनके द्वारा अपनी आत्मा को ऊँचा बनाना चाहिए। आज हमें नेत्रों से रूप का दिग्दर्शन करते हैं, एक पुत्री का दिग्दर्शन कर रहे हैं उसके सौन्दर्य उसकी प्रभु की रचना को जब दृष्टिपात करते हैं तो यह आत्मा का बल ऊर्ध्व बनता है।

काम से दुषित दृष्टि होने पर आयु क्षीण

यदि उस कन्या के द्वारा हमारे दूषित विचार हो जाते हैं, यदि दूषित दृष्टि बन जाती है तो उस से आयु सूक्ष्म बन जाती है। दुर्विचार आते ही उसकी मानवीयता, उसका आध्यात्मिक बल सूक्ष्म होना प्रारम्भ हो जाता है। मेरे प्यारे विचार क्या कि !ऋषिवर ! हमें ये दैवी यज्ञ करने चाहिए। यह सात प्‍्रकार का अन्न है जो प्रभु ने उस ममतामयी माँ ने सृष्टि के प्रारम्भ में अपने पुत्रों को प्रदान कर दिया था। वह जो चैतन्य देवता ! है वही तो मेरी माँ है, वही तो मेरी माँ वसुन्धरा है जिसके द्वारा हमारा कल्याण होता है।

मेरे प्यारेआज मैं अधिक विवेचना प्रद !ऋषिवर !ान करने नहीं आया हूँ। विचार देने का अभिप्राय हमारा यह है कि हम ज्योति को पान करने का प्रयास करें। उस यज्ञ को करें वह जो सप्त जिह्वा यज्ञ है जो मुनिवरोंप्रकृति को ऊँचा बनाता है !, सुगन्ध को देता है, मन्दता को नहीं देता, परन्तु वह बुद्धि को ऊर्ध्व बनाता है, वह यज्ञ हमारे मध्य में होना चाहिए। उस यज्ञ के द्वारा हम अपने जीवन, राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाते

रहते हैं।

यज्ञ की अग्नि

बेटा अहा मैं क्या उच्चारण कर रहा था। यहाँ वेद कहता है यज्ञम् यज्ञा प्रथम देव ! ब्रह्म लोकः कि प्रत्येक गृह में याव होना चाहिए और यज्ञ की जो अग्नि है, ज्योति है यह गृह आश्रम से कदापि शान्त नहीं होनी चाहिए। यह अपनी ज्योति ऊर्ध्व को प्राप्त होती रहे। जिस प्रकार मुनिवरोंदेखो !, सूर्य अपने वेग में रमण करता है, अपना प्रकाश देने वाला है और उस प्रकाश में प्रत्येक मानव अपने कर्त्तव्य का पालन देने वाला है और उस प्रकाश में प्रत्येक मानव अपने कर्त्तव्य का पालन करता चला जाता है। आओ मेरे प्यारे वाक्य क्या है कि हम आध्यात्मिक यज्ञ को करने वाले बनें। यह !ऋषिवर ! जो तीन प्रकार का अन्न है मानो शाब्दिक अन्न, रूप अन्न, सुगन्ध अन्न यह जो नाना प्रकार के परमाणु आते और जाते हैं, रमण करते हैं, मुनिवरों उनका आवागमन लगा ! हुआ है अहा, उसको हमें जानना चाहिए। उन्हीं परमाणुओं को जानते हुए अपनी सुन्दर यज्ञवेदी पर विराजमान होकर के उन परमाणुओं पर अनुसन्धान होना चाहिए। इसमें विस्तृतता होनी चाहिए। महत्ता होनी चाहिए।

बेटाआज म !ैं अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। कल मैं बेटा तुम्हारे समीप ! कुछ स्तम्भ उच्चारण करना चाहता हूँ कि इस माँ प्रकृति के कितने स्तम्भ हैं? मुनिवरों ! यह प्रभु का को भवन है यह जो मानव राष्ट्र है, प्रभु का जो जगत् है इसके कितने स्तम्भ हैं? यह विवेचना मैं कल प्रकट करूंगा। बेटा आज के वाक्य उच्चारण करने ! का अभिप्राय यह है कि हमारे यहाँ आध्यात्मिक यज्ञ होने चाहिए। आध्यात्मिक यज्ञ उसे कहते हैं कि आत्मा के इन मानो पांच ज्ञान इन्द्रियां, पांच कर्म इन्द्रियां, दस प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इनका सबका साकल्य बना करके वह जो हृदय स्थल है, हृदय रूपी जो यज्ञवेदी है, यह एकाग्र हो करके उस वेदी में आहुति देनी चाहिए। उस आहुति देने का नाम ध्यानावस्थित होना है। ध्यानावस्थित हो करके हम अपने को बेटा ! जैसे बालक माता को प्राप्त हो जाता है माता के सामने अपने को समर्पित कर देता

हे इसी प्रकार ध्यानावस्थित हो करके हम अपने को जब प्रभु को समर्पित कर देते हैं उस समय बेटावह जो आत्मिक विज्ञान है !, आत्मिक जो धाराएं हैं आज उसमें जो ज्ञान विज्ञान है उसको हम स्पष्टीकरण कर लेते हैं। उनको हम योगी बन करके हमारी उड़ान पृथ्वी तक नहीं चन्द्र लोकों तक भी नहीं, मंगल क्या सूर्य क्या? बेटा बृहस्पति ! यह है। !और गन्धर्व लोकों को जानने वाले बन जाते हैं बेटा

बेटा आज का वाक् समाप्त। अब मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। ! आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हमें उस माला को धारण करना है, बेटा महानन्द !जिस माता को मैं तुम्हें कल धारण करना चाहता हूँ। मेरे प्यारे ! जी भी समय लेना चाहते हैं परन्तु आज समय नहीं। कल जैसा समय होगा उसके अनुसार वाक्य प्रकट करेंगे। आज का वाक् यह समाप्त अब वेदों का पाठ होगा। इसके पश्चात् यह वार्त्ता समाप्त हो जाएगी। धन्य हो। सैंन्ट्रल लोधी रोड..........., समय रात्रि 6.बजे दुर्गा डिवोटीज एशो 00, द्वारा

१० 19 03 1972 पुष्प 19 मोक्ष प्राप्ति के लिए विज्ञान के पन्द्रह स्तम्भ

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में उस परम पिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है। क्योंकि जिनका यह जगत् आज हमें दृष्टिपात आ रहा है, यह उस परम पिता परमात्मा की एक आभा है। यह उसका एक महान् विज्ञानमय स्वरूप जगत् माना गया है। तो बेटा आज हम उस रचयिता है। ! अथवा उस जगत् का निर्माण करने वाला निर्माणवेत्ता है। हमें अपने जीवन में उस निर्माणवेत्ता को धारण करते हुए इस आत्मा की पिपासा को शान्त करने का प्रयास

करना चाहिए।

रुद्ररूप परमपिता

बेटा जब हम दार्शनिक विचारों में जाते हैं तो वेदों का वह साहित्य हमारे स्मरण आने ! लगता है जिसमें परमपिता परमात्मा की आभा का प्रायः वर्णन किया गया है। अथवा उसके ज्ञान और विज्ञान की आभा का दिग्दर्शन होता है। बेटा आज मैं कोई ! विशेष चर्चा तुम्हें नहीं प्रकट करूंगा। क्योंकि आज तो मैं सूक्ष्म सी माला को धारण कराने आया हूँ। प्रत्येक मानव को उस माला को धारण कर लेना चाहिए। उस माला को रूदाक्ष कहा गया है। मानो वह जो रुद्र प्रभुहै जो पामरों को रूलाने वाला है, अपराधियों को, पापाचारियों को रूलाने वाला है, उसे रुद्र कहा जाता है। मुनिवरों ! देखो, उस रुद्रमय महिमा का गुण गान वाले रुद्राक्ष की माला को धारण करता है। हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने कहा है कि हम जब माला को धारण करते हैं, तो हमारे हृदय में एक उल्लास उत्पन्न होता है। मानो एक ज्योति जागरूक होने लगती है। हमारा अन्तरात्मा यह उच्चारण करने लगता है कि क्या हम परमपिता परमात्मा की आभा का दिग्दर्शन करने के लिए उस आभूषण को अपनाने का प्रयास किया करें। जिस आभूषण को अपना करके हम प्रभु के द्वार पर जा सकते हैं। आओ मेरे प्यारे वह !ऋषिवर ! जो मेरा प्यारा प्रभु है जो रचयिता है, निर्माणवेत्ता है आज हम उस निर्माणवेत्ता की शरण में जाएं। जो ममतामय है। जो संसार को आभायित करने वाला है। यह आत्मा इस जगत् में एक महत्ता को धारण करके इस संसार सागर से पार होने का प्रयास कर रहा है।

तो आओ मेरे प्यारे मुझे वह साहित्य भली भांति स्मरण आ रहा है। आज !ऋषिवर ! अपराधियों को !मैं तुम्हें रूद्राक्ष की माला को धारण कराने आया हूँ। जो मुनिवरों रूलाने वाला है। संसार में अपराधी कौन होता है? बेटा वह मानव अपराधी होता है ! जो अपनी अन्तरात्मा का हनन करता है। अन्तरात्मा के विपरीत कर्म करता है। हृदय कुछ प्रेरणा दे रहा है, मानव कुछ कर्म कर रहा है। तो वह आत्मा के विरूद्ध है, वह

आत्मा का हनन कर रहा है। मुनिवरों जिस प्रकार माता का प्रिय पुत्र माता की आज्ञा ! का पालन नही करता तो वह माता के ऋणाें से उऋण नही होता। परन्तु उस की सद्गती होनी चाहिए, सद्विचार होने चाहिएं, उन सत्य विचारों से ही माता की आज्ञा का पालन करने वाला जो प्राणी है, अथवा पुत्र है वह सदैव इस संसार से उदासीन रहता है। राधी कहा जाता हैं। वास्तव में प्रभु के राष्ट्र में कौन अपराधी है? प्रभु के राष्ट्र में वही मानव बेटा पापाचारों में रमण करता है जो मानव परमात्मा की आज्ञा का पालन ! नहीं करता। अन्तरात्मा की प्रेरणा को स्वीकार नहीं करता।

हमारे यहाँ परम्रागतों में बेटा जब ऋषि मुनियों का विचार विनिमय होता था। एक ! समय मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से एक वाक्य कहा कि हे प्रभु संसार में पापी ! कौन होता है? उस समय मेरे प्यारेदेव ने उत्तर दिया !, हे वत्स वे मानव वे माताएं ! वे पुत्रियां वे ब्रह्मचारी अपराधी होते हैं जो अपनी अन्तरात्मा की प्रेरणा को हनन कर देते हैं, अन्तरात्मा कुछ कह रहा है मानव का कर्म कुछ रहता है। तो वह अपनी आत्मा को हनन कर रहा है। क्योंकि संसार में वेद के पठन पाठन करने वाला ही विशेषज्ञ नहीं होता, वही धर्मज्ञ नहीं होता संसार में वह मानव धर्मज्ञ होता है जो इस संसार में अपनी अन्तरात्मा के अनुकूल विचरण करता है। मेरे प्यारे मेरा !ऋषिवर !प्यारा प्रभु कितना महान् है? कितनी प्रेरणा देने वाला है? संसार का धर्म और मनवत्व का धारण करा रहा हूँ। मैंने यह वाक्य पूर्व काल में भी प्रकट किया। आज भी उस माला को तुम्हें धारण और हूँ। और वह क्या है? श्रवण कराने के लिए मैं उसको धारण और उसकी विवेचना नहीं करूंगा केवल संक्षिप्त विवेचना चाहता हूँ।

मुनिवरोंदेखो !, एक समय राजा जनक के यहाँ महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज और भी आदि ऋषि मुनियों का समाज एकत्रित था। क्योंकि वह ब्रह्मवेत्ताओं का समाज था ब्रह्म विचार हो रहा था। ब्रह्मविचारकों ने महाराजा जनक के पुरोहित अश्वल से कुछ प्रश्न किए। उसके पश्चात् चाक्राणि गार्गी उपस्थित हो गई। जो ऋषि मुनियों में प्रभावशाली और ब्रह्मवादिनी थीं। ब्रह्म को अपने में और अपने को ब्रह्म में जो स्वीकार करता है, वही ब्रह्मवेत्ता कहलाया गया है। मुनिवरोंदेखो !, माता गार्गी ने उपस्थित हो करके

ब्राह्मणों से कहा हे ब्रह्मवेत्ताओं अब यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो मैं भी इस !हे ब्राह्मणों ! ब्रह्मवेत्ता से दो प्रश्न करना चाहती हूँ। उस समय उन ब्राह्मणों से एक स्वर से अवश्य कीजिए। याज्ञवल्क्य मुनि बोले, देवी तुम प्रश्न करो यथाशक्ति मैं उसका उत्तर दे ! सकूंगा। उन्होंने कहा तो मेरा भगवन्प्रश्न यह है कि यह जो जगत् है !, जो आज मुझे दृष्टिपात आ रहा है, यह ब्रह्म समाज है, यह मानव राष्ट्र है, और राष्ट्र में भी नाना प्रकार के भेदन हैं, नाना प्रकार के प्राणी हैं। परन्तु यह जो जगत् मुझे दृष्टिपात आ रहा है, यह नाना प्रकार की वनस्पतियों वाला जगत् नाना प्रकार की आभाओं वाला जगत् है जिसमें नाना प्रकार के वृक्ष स्थावर, जंगम, अंडज और उद्भिज्ज जो चारों प्रकार की सृष्टियां हैं, मानो यह जितना भी जगत् मुझे दृष्टिपात आ रहा है, क्या माता वसुन्धरा के गर्भ में जो खनिज है या खाद्य है यह सब किसमें प्रतिष्ठित रहता है? इसकी प्रतिष्ठा क्या है? उस समय जब ऐसा प्रश्न किया गया तो मुनिवरोंऋषि ने कहाँ हे ऋषि कन्या !, यह जो जगत् है, जितना तुम्हें यह दृष्टिपात आ रहा है, इसकी जो प्रतिष्ठा है इस पृथ्वी में है, इस पृथ्वी को हमारे यहाँ वसुन्धरा कहते हैं। यह वसुन्धरा इसलिए है क्योंकि इस में हम सब वशीभूत रहते हैं। अहा जो माता के गर्भ में वशीभूत रहता है उसी माता को वसुन्धरा कहा जाता है। इसके नाना प्रकार के पर्यायवाची हैं जैसे वसुन्धरा है, गो है, अहिल्या है, रेवनी है नाना प्रकार के रूपों में इसका प्रतिपादन किया गया है। परन्तु यहाँ केवल वसुन्धरा का अभिप्राय है जिसमें हम सब वशीभूत रहते हैं। उसी का नाम बेटा वसुन्धरा है। इसी वसुन्धरा के गर्भ में ही यह सर्वत्र जगत् जो दृष्टिपात आता है ! कि प्रतिष्ठा मानी जाती है।

वसुन्धरा की प्रतिष्ठा आपो ज्योति में

उस समय जब ऋषि ने यह उत्तर दिया तो चाक्राणि ने कहा भगवन् यह जो पृथ्वी है ! इसकी प्रतिष्ठा क्या है? उन्होंने कहा जो पृथ्वी है जो मानो अनेक रूपों से रमण करती रहती है संसार को स्थिर किए रहती है जिस प्रकार माता के गर्भ स्थिल में जब शिशु होता है तो माता उसे स्थिर किए भ्रमण करती है परन्तु उस शिशु की माता के

गर्भ में रहती है। इसी प्रकार मुनिवरोंयह जो पृथ्वी है यह अपनी इस सृष्टि की !, रचना को अपने में धारण किए रहती है। इस पृथ्वी की जो प्रतिष्ठा है यह मानो जल ज्योति में ओत प्रोत हो जाती है जिसे आपोज्योति कहा जाता है। जिस ज्योति में यह संलग्न हो जाती है, प्रतिष्ठित हो जाती है, मेरे प्यारेवह आपः है !ऋषिवर !, वह आपः कहलाया गया है। नाना प्रकार की वनस्पतियों वाली जो वसुन्धरा है मानो पृथ्वी है यही तो जल में ओत प्रोत हो जाती है। जल में ही इसकी प्रतिष्ठा मानी जाती है।

उस समय जब ऋषि ने यह उत्तर दिया तो ऋषि कन्या बोली, कि प्रभु यह जो ! आपोज्योति है। यह क्या है? उन्होंने कहा यह जो आपोज्योति है, यह अमृत है, यही सोम कहलाया गया है। यह जब समुद्रों में ओत प्रोत रहता है तब मानो चन्द्रमा तक इसकी तरंगें जाती हैं। यह आपोज्योति है जिसको वेद ने अमृत कहा है। कैसा अमृत है? माता के गर्भस्थल में जब जरायुज होता है यही तो अमृत है जो चन्द्रमा की कान्ति को माता की नस नाड़ियों के द्वारा मुनिवरोंदेखो !, उस शिशु को प्रदान करता हे, यही तो सर्वत्र विज्ञान है। प्राण इसी के आश्रित रहता है। क्योंकि आपोज्योति है। आपो नाम जल का है। इस जल में जो विद्युत माँ के रूप में है। मानो वह जो ज्योति है वह रमण कर रही है। उसी के कारण यह जल सोम कहलाया गया है। यदि बेटा जल ! जिस प्रकार !ऋषिवर !में ज्योति नहीं होती तो यह सोम नही बन सकता था। मेरे प्यारे मानव लाता है, चेतनावादी कहलाया जाता है। और जिस समय यह ज्योति इस शरीर से पृथक हो जाती है, उस समय यह मानवीय शरीर मृतक बन जाता है। इसको शव कहते हैं। इसे उस अग्नि में प्रविष्ट कर देते हैं जो लोक में प्रचलित अग्नि उस ज्योति रहित को निगल जाती है, यही ज्योति का सबसे उत्तम लाभ है संसार में। इसलिए यज्ञमय ज्योति जागरूक होनी चाहिए। क्योंकि यह ज्योति रहित को निगलती चली जाती है। मेरे देव की महिमा कितनी विचित्र है? कितना महान् वह वैज्ञानिक है। बेटा ! आज मैं उस विज्ञानवेत्ता की चर्चा अधिक नहीं करूंगा। केवल संक्षिप्त परिचय देना हमारा कर्त्तव्य है। वह परिचय क्या है कि यह आपोज्योति अमृतमय कहलाई जाती है, इसी में पृथ्वी ओत प्रोत रहती है। इस पृथ्वी की जो प्रतिष्ठा है यह मानो इस आपो

में रहती है, जल में रहती है। जल ही इसका गृह माना गया है।

उस समय बेटा ऋषि कन्या बोली कि प्रभो मैं यह जानना चाहती हूँ कि यह जो ! ज्योतिहै इसकी प्रतिष्ठा क्या है, यह किसमें ओत प्रोत हो जाती है। उस समय उन्होंने कहा है ऋषि कन्ये यह जो आपोज्योति है यह अग्नि में प्रतिष्ठित हो जाती है। यह ! अग्नि ही है जो लोक में रमण करती है जो लोक इस पृथ्वी से लेकर के द्यु लोक तक अपना प्रकाश करती रहती है। यही द््यु लोक में रमण करती रहती है। हमारे यहाँ बेटामैंने बहुत पूर्व काल में कहा कि अग्नि की नाना प्रकार की धाराएं होती हैं !, अग्नि के नाना प्रकार के स्वरूपों में रमण करने वाला जो प्राणी होता है, अग्नि की पूजा करता है। हे अग्नि तुझे वेद ने अग्निवेतु कहा है। देवताओं का दूत कहा है। जब संसार में देवी यज्ञ होता है तूं ही उस सप्त कोण की यज्ञशाला में प्रदीप्त रहती है तूं ही है जो नाना प्रकार के साकल्प को लेकर के साकल्य के साथ में विचार को लेकर के, साकल्य के विचार के साथ में मानव के चरित्र को लेकर के तू इस संसार में प्रसारण कर देता है। द्यु लोक तक मानव का चित्रण किया जाता है। एक विज्ञानवेत्ता है, बेटा वह ! !चित्रण कर रहा है मानो इस अग्नि की धाराओं के ऊपर विराजमान हो करके बेटा उस अग्नि की धारा को विद्युत कहते हैं।

क्योंकि अग्नि का नाम विद्युत है। इसको अभादकेतु भी कहा है, द्यु अग्नि भी कहा है। द्यु भी कहते हैं। बेटा जब शब्द इसके ऊपर विराजमान हो जाता है तो शब्द व्यापक ! बन जाता है, और मानव का चित्र मुनिवरोंदेखो !, वह इस अग्नि के ऊपर विश्राम करता है, तो चित्रावली संसार में ओत प्रोत हो जाती है। मेरे प्यारे ऐसा !ऋषिवर ! ऋषिजन कहते हैं। कि जब मानव श्वास लेता है, एक श्वास के साथ में जितना मानव का यह शरीर है इसी के आकार का उन परमाणुओं में सूक्ष्म शरीर का निर्माण हो जाता है। और वह जो निर्माण किया हुआ निर्माण हुआ जो मानो चित्र है वही मुनिवरों ! देखो, विद्युत माँ के ऊपर सवार होकर के, अग्नि के ऊपर सवार हो कर के, बेटा ! उस चित्र की जो धाराएं हैं, लगभग एक क्षण समय में अरबों खरबों तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं, उसकी इतनी गति होती है। उसी के आधार पर विज्ञानवेत्ताओं ने, हमारे ऋषि

मुनियों ने ऐसा कहा है कि वही एक धारा है जो मुनिवरोंसंसार में चित्रा !वलियों का निर्माण कर देती है। एक विज्ञानवेत्ता नाना प्रकार की धातुओं को एकत्रित करके एक चित्र बना देता है। मुझे बेटा वह समय भली भांति स्मरण है जब महाभारत के काल ! देखो !में मुनिवरों, संजय को भगवान कृष्ण ने एक यन्त्र दिया था। और वह यन्त्र कैसा था कि महाभारत का जो संग्राम था मानो उसका चित्रण उस यन्त्र में आ रहा था। वही यन्त्र था बेटा जो महाराजा धृतराष्ट्र को संग्राम की सब वार्त्ता प्रकट करा रहा था। एक ! एक कण कण में इस अग्नि की धाराओं में इस संसार का सूक्ष्म चित्रण रहता है। सूक्ष्म रूपों से परमाणु विचरण करता रहता है। वही परमाणुवाद मुनिवरोंदेखो !, वायु में, अन्तरिक्ष में ओत प्रोत रहता है। इसीलिए इन परमाणुओं से इस यन्त्र का निर्माण होता है। मानो उन्हीं परमाणुओं से यह भरण हो रहा है।

मेरे प्यारे मैं अधिक चर्चा प्रकट नहीं चाहता हूँ। मुझे स्मरण आता रहता है !ऋषिवर ! एक समय बेटा मैं अपने आसन पर विराजमान था। महाराजा अश्वपति के पुत्र लोकी ! केत केतु और महात्मा भुजु मुनि महाराज दोनों ऋषिवर तब मेरे द्वार पर आए। आ हमने एक यन्त्र बनाया है। उस यन्त्र में यह !करके उन्होंने हम से कहा कि भगवन् विशेषता थी कि मानव एक आसन पर विराजमान है तो लगभग दो पहर तक, उन दो पहरों में मुनिवरोंदेखो !, उनका चित्रण उस आसन पर ज्यों का त्यों स्थिर रहता था वह यन्त्र इस प्रकार का था। यदि दो पहर के पश्चात् भी हम उस मानव का चित्रण लेना चाहते तो उस मानव का ज्यों का त्यों चित्र प्रसारित हो जाता था ता मेरे प्यारे ! जब हमने उसको दृष्टिपात किया तो जब राजकुमार अपने गृह को चले गए !ऋषिवर तो उनका ज्यों का त्यों चित्र आ गया उसमें। परिणाम क्या? मुनिवरोंदेखो !, जिस आसन पर मानव रहता है उस आसन पर उसकी सूक्ष्म धाराएं, उसकी सूक्ष्म तरंगें अग्नि के ऊपर विश्राम करती रहती हैं। अग्नि की तरंगों में ओत प्रोत रहती हैं। मेरे प्यारे ! मैं एक वैज्ञानिक क्षेत्र में जाना नहीं चाहता हूँ। तो मैं केवल यह उच्चारण !ऋषिवर करना चाहता हूँ कि इस अग्नि की प्रतिष्ठा क्या है? बेटा अग्नि है। संसार में अग्नि की ! कितना धाराएं हैं? मैंने इससे पूर्व शब्दों में कहा है कि अग्नि का कितना व्यापक रूप

है? मुनिवरों प्रकार की धाराएं होती हैं। और 284 अग्नि की स्थूल यप से लगभग ! प्रकार की धाराओं का जन्म 99 वीं धारा है। उसमें से 284 प्रकार की 284 वह जो देखो !वीं धारा है उसमें से लगभग मुनिवरों 99 होता है। वह जो, धा 72राओं का जन्म होता है। और धाराओं का जन्म चला रहा है 101 वीं जो धारा है उसमें 72 यही अग्नि आवत रहती है। !ऋषिवर !परमाणुवाद गति कर रहा है। मेरे प्यारे

अग्नि की प्रतिष्ठा वायु में

उस समय चाक्राणि बोली कि प्रभु वह तो मैंने जान लिया। परन्तु मैं यह जानना चाहती हूँ कि यह जो अग्नि है इसकी प्रतिष्ठा क्या है? प्रभु यह किसमें ओत प्रोत हो जाती है। उन्होंने कहा कि इस अग्नि की जो प्रतिष्ठा है वह वायु है, यह वायु में ओत प्रोत हो जाती है। वायु की भी इतनी ही प्रकार की तंरगें होती हैं। जो वायु इसमें सूक्ष्म परमाणुओं को लेकर के उड़ान उड़ती रहती है अग्नि भी इसमें ओत प्रोत हो जाती है। क्योंकि जहाँ वायु नहीं होता वहाँ अग्नि ही इस वायु प्रतिष्ठित रहती है। अहा अग्नि की माँ यह वायु ! इस वायु में !ऋषिवर !मानी गई है। यही उसका गर्भाशय माना जाता है। मेरे प्यारे नाना प्रकार की तंरगें रहती हैं। यह वायु ही है जिस वायु की और अग्नि को सहकारिता से शब्द की गति उर्ध्व हो जाती है। शब्द की गति तीव्र बन जाती है। मेरे प्यारेइससे यह सिद्ध होता है !ऋषिवर !, विचार आता है कि वायु की तंरगों में यह अग्नि ओतप्रोत रहती है। मानो विद्युत ओत प्रोत रहती है। इसको वेद ने विद्युत आभा कहा है, सोमभाम केतु कहा है। बेटा आज हम वायु के ऊपर अनुसन्धान करते हुए ! चलें।

वायु की प्रतिष्ठा अन्तरिक्ष में

उस समय चाक्राणि बोली कि प्रभु में यह जानना चाहती हूँ कि यह जो वायु है इसकी प्रतिष्ठा क्या है? यह किसमें प्रतिष्ठित हो जाती है? उन्होंने कहा की यह जो वायु है इस वायु की प्रतिष्ठा यह मंतरिक्ष है, अन्तरिक्ष में यह ओत प्रोत हो जाती है। अन्तरिक्ष में ही शब्द ओत प्रोत हो जाते है। बेटा अन्तरिक्ष में यह पेत्रभूत एक सूक्ष्म रूप धारणा !

अन्तरिक्ष !करके ओत प्रोत रहते हैं। मेरेर प्यारे ऋषिवरमें वायु का कोई महत्व नहीं होता। अग्नि का, पृथ्वी का संसार में कोई अस्तित्व नहीं होता। क्योंकि वह तो रूपांतर किया हुआ जगत् उसमें ओत प्रोत रहता है। बेटाआज उसका रूपांतर !, उस जगत् का दिग्दर्शन करने का नाम अन्तरिक्ष कहा गया है। बेटा और जिस वस्तु का रूपांतर ! हो जाता है। स्थूल से सूक्ष्म बन जाती है उसकी प्रतिष्ठा अन्तरिक्ष माना गया है। अहाउसी में यह प्राणी !, लोक लोकांतर प्रायः विचारण करते रहते है।

मेरे प्यारे चाक्राणि बोली कि प्रभु मैं यह जानना चाहती हूँ कि यह अन्तरिक्ष !ऋषिवर ! की प्रतिष्ठा क्या है? उन्होंने कहा कि यह जो अन्तरिक्ष है, यह महत्तत्व में ओत प्रोत हो जाता है। महात्तत्व ही मानो इस एक मूल रूप कहलाया जाता है। महात्तत्व में यह अन्तरिक्ष भी ओत प्रोत हो जाता है। इसका अपना कोई अस्तित्व नहीं होता। यह इसमें प्रतिष्ठित हो जाता है। यह जो महत्तत्व है यही तो इस जगत् का एक मूल आधार कहलाया गया है। यही इन मनकों को धारण करने वाला है। मेरे प्यारे !ऋषिवर ! आज हमें इसको विचार विनिमय करना चाहिए। अनुसन्धान करना चाहिए। अनुसन्धार वेत्ताओं ने, वैज्ञानिकों ने कहा कि यह जो महत्तत्व है यही इस प्रकृति के चक्र को चला रहा है, गतिशील बना रहा है। आज हमें उस प्रकृति के गतीशील जगत् रूपी महत्तत्व को जानना चाहिए, जो शून्य को चेतन बना रहा है, गति दे रहा है, लगातार गति दे रहा है। उस पर हमें बारम्बार विचार विनिमय करना चाहिए।

महतत्व सूर्य लोकों में प्रतिष्ठि होता

मेरे प्यारेचाक्राणि !ऋषिवर ! ने कहा प्रभु मैं जानना चाहती हूँ कि यह महत्तत्व किसमें ! ओत प्रोत रहता है? उन्होंने कहा कि यह जो महत्तत्व है यह सूर्य लोकों में ओत प्रोत हो जाता है। क्योंकि सूर्य लोक ही ऐसे लोक हैं जिसमें महत्तत्व भी प्रतिष्ठित हो जाते हैं, उसी की आभा से यह जगत् अपना कार्य कर रहा है। निरन्तर गति से भ्रमण हो रहा है, गतिशील हो रहा है। यह जगत् मानो सूर्य लोकों में इसकी प्रतिष्ठा रहती है। उस समय चाक्राणि गार्गी ने कहा, भगवन्इन सूर्य लोकों की प्रतिष्ठा क्या है !? उस

समय ऋषि ने कहा, हे देवीइन सूर्य लोकों की प्रतिष्ठा यह चन्द् !र मण्डल हैं। क्योंकि चन्द्रमा इसके रप्रकाश से प्रकाशित होता है। इसकी आभा से आभायित होता है इसीलिए इसकी प्रतिष्ठा इसमें मानी जाती है। मेरे प्यारे ये जो चन्द्र मण्डल हैं ये !ऋषिवर ! ग्रह कहलाए जाते हैं। इसमें मानव परम्परागतों से भ्रमण करता चला आया है। जिन लोकोें में यह उपग्रह हैं ये ग्रह कहलाए जाते हैं। ग्रह का अभिप्राय है जिस लोक में प्राणी विचरण करते हैं। जिसमें गृह का निर्माण हो सकता हो उसी को ग्रह कहा जाता है। जैसे चन्द्र ग्रह है, उसी प्रकार मँगल ग्रह है। मैंने बहुत पूर्व काल में कहा है कि यह जो चन्द्र मण्डल है, चन्द्र जो ग्रह है पार्थिव तत्त्व वाला प्राणी वहाँ विचरण कर सकता है जैसे पृथ्वी पर प्राणी रहते हैं इसी प्रकार मंगल पर प्राणी रहते हैं, जैसे मंगल पर इसी प्रकार आरूणि मण्डल पर भी रहते हैं, परन्तु यह जो चन्द्र मण्डल है इसमें जल और वायु तत्त्व प्रधान प्राणी विचरण करते हैं। परन्तु उनके वहाँ ग्रह होते है सुन्दर ग्रह होते हैं। मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे कई काल में प्रकट करते हुए कहा कि ! आधुनिक काल का जो जगत् है, वैज्ञानिक है, वह इसमें प्राणी को स्वीकार (चन्द्रमा में) नहीं करता। परन्तु मैं इस विवाद में जाना नहीं चाहता हूँ। केवल वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि जहाँ पृथ्वी है, जहाँ वायु है वहाँ प्राणी निश्चित होता है। क्योंकि यह जो सार्वभोम सिद्धान्त है। उन चर्चाओं को तो मैं कल प्रकट करूंगा, मैं अधिक विवेचना इस सम्बन्ध में देना नहीं आया हूँ। यह तो वन है। जैसा भारद्वाज ने कहा है जैसा मुनिवरोंमहर्षि दधीचि ने इसके ऊपर अनुसन्धान किया !, उन विचारों को मैं कल प्रकट करूंगा। आज का विचार तो केवल यह है कि हम चन्द्रमा की उपासना करें। यह चन्द्रमा में ही सूर्य लोकों की प्रतिष्ठा रहती है। उस समय बेटाऋषि ने कहा !, ब्रह्म व्यापक प्रवे।

चन्द्र मण्डलों की प्रतिष्ठा गन्धर्व लोकों में

ऋषि कन्या बोली, प्रभुयह चन्द्र मण्डल किसमें प्रतिष्ठित रहते हैं !? उन्होंने कहा कि यह जो चंद्र मण्डल हैं यह इस महान् गन्धर्व लोकों में ओत प्रोत रहते हैं। गन्धर्व लोक

उसे कहा जाता है गन्धर्व एक आभा है, गन्धर्व एक लोक का नाम भी है। परन्तु यहाँ आभा का नाम गन्धर्व कहा गया है। जिस आभा में, जिस प्रतिभा में निरन्तर गति से यह लोक लोकान्तर गतिशील हो रहे हैं। गति कर रहे हैं, गतिमान हो रहे हैं। वह गन्धर्व ही नाना प्रकार के लोक लोकान्तर, उस गन्धर्व लोकों की आभा में बेटा ! प्रतिष्ठित रहतें हैं। जैसे कहा है गन्धर्व मण्डल में ही, गन्धर्व तरंग में ही लोकों की गणना भी की जाती है। कहा जाता है कि यह मंगल है यह शनि है, यह सूर्य है, यह चंद्र है, यह वृहस्पति है, यह आरूणि है, यह सप्त ऋषि मण्डल है अहा यह वशिष्ठ ! है यह अरून्धति है, यह सोमभानु है, सुरीचि है, श्रणकेतु है, जेठाय है, ध्रुव है, अंचग है, मचंग है, स्वाभकेतु है, त्रेणि है। आभ्याम है, स्वाति है, कृति है, मुनिवरों पुष्पाय ! नक्षत्र है, जेठकेतु है, रूहानकेतु है। बेटा यह नाना प्रकार के लोक लोकान्तर उस ! रमण कर रहे हैं। !गन्धर्व आभा में बेटा

मैं लोक लोकांतरों की गणना करने नहीं आया हूँ। बेटा विचार यह देने आया हूँ कि ! इस प्रभु के राष्ट्र में, इस प्रभु के जगत् में तीन प्रकार के सौर मण्डल कहलाए जाते हैं। उन सौर मण्डल में प्रभु के राष्ट्र में एक सौर मण्डल का अधिपति सूर्य है, द्वितीय सौर मण्डल का अधिपति बृहस्पति है, तृतीय सौर मण्डल का अधिपति ध्रुव कहलाया गया है। और ऐसे अनन्त और मण्डल कहलाए जाते हैं। एक !प्रभु के राष्ट्र में बेटा 2 आकाश गंगा है, उस आकाश गंगा में नाना प्रकार के सौर मण्डल हैं, नाना ध्रुव हैं, नाना जेठाय हैं, नाना गन्धर्व हैं। अहादेखो !, उस प्रभु के राष्ट्र में सौर मण्डलों में अहा ! का विज्ञान है !आकाश गंगा में नाना सौर मण्डल हैं। यह तो प्रभु, प्रभु का राष्ट्र है। इसको ऋषि मुनियों ने बेटाउ 2 नेति !चारण किया है। क्यों कहा है। क्योंकि परमात्मा जिस प्रकार अनन्त है उसी प्रकार मुनिवरोंदेखो !, उसकी विज्ञान रचना भी अनन्त ही मानी जाती है।

मेरे प्यारे मैं इस सम्बध में अधिक विवेचना नहीं प्रकट करने आया हूँ। विचार !ऋषिवर ! विनिमय क्या कि यह चंद्र लोकों की प्रतिष्ठा गन्धर्व लोकों में रहती है। बेटा आज हमें ! गन्धर्व लोकों को जानना चाहिए। उस समय कन्या बोली, हे प्रभु ये जो गन्धर्व लोक !

हैं इन की प्रतिष्ठा क्या है संसार में? उन्होंने कहा, देवी इनकी तो प्रतिष्ठा है वह मानो ! इन्द्र लोक कहलाए जाते हैं। इन्द्र उसे कहतेहैं जिसमें गन्धर्व आभा भी समाहित होती हो। जहाँ ऋतु और सत् का भी समन्वय हो करके वह इन्द्र लोकों में समाहित हो जाती है। उस आभा का नाम इन्द्र कहा गया है। आज हमें इन्द्र लोकों को जानना चाहिए। इन्द्र किसे कहते हैं? इन्द्र एक आभा है जिस आभा जिस आभा में संसार का सौर मण्डल और आकाश गंगा जिसके गर्भ में विचरण करती है। उसको इन्द्र कहा जाता है। इसी प्रकार आज हमें इन वाक्यों को विचारना चाहिए।

इन्द्र लोकों की प्रतिष्ठा प्रजापति में

उन्होंने कहा भगवान्मैं यह जानता चाहती हूँ कि यह इन्द्र लोकों की प्रतिष्ठा क्या है !? उन्होंने कहा कि यह जो इन्द्र लोक की प्रतिष्ठा क्या है? उन्होंने कहा कि यह जो इन्द्र लोक है यह प्रजापति में प्रतिष्ठित हो जाते है? इसलिए प्रजापति को विचारना चाहिए। अहावह जो प्रजापति है वही संसार का प्रभुत्व है। आनन्दवत है !, स्वानकेतु है। आज हमें उसे भांति अप्रतों से जान लेना चाहिए। वह जो प्रजापति है वह प्रजाओं का स्वामी है। इसलिए हमें इस प्रजापति को जानना चाहिए। हे मेरे देव वह जो प्रजापति है ! जिसमें सर्वत्र जगत् समाहित हो जाता है, सर्वत्र प्रजाएं समाहित रहती हैं। वह प्रजापति महा मंगलेश्वर कहलाया गया है। सामभ्रम कहलाया गया है। मेरे प्यारे ! आज हमें उसकी उपासना करनी चाहिए। !ऋषिवर

इतने में चाक्राणि ने कहा, भगवन्यह प्रजापति की प्रतिष्ठा क्या है !? उन्होंने कहा, देवी, प्रजापति की जो प्रतिष्ठा है वह यज्ञ में मानी गई है। इसीलिए मैंने कल के वाक्यों में कहा था, इससे पूर्व शब्दों में भी कहा कि प्रत्येक गृह मे देवी यज्ञ होने चाहिएं। यज्ञ होने चाहिए, ज्योति समाप्त नहीं होनी चाहिए। प्रत्येक देव कन्या, प्रत्येक मुनिवरों गृह ! आश्रम में पति पत्नी क्या, पुत्र पुत्रियां क्या, प्रत्येक मानव को यज्ञ करना चाहिए। यज्ञ का अभिप्राय है कि जितना भी शुभ कर्म है, शुभ आभा है उन सभी का नाम यज्ञ कहलाया गया है। वह यज्ञमय ज्योति है आनन्दवत है वह देवी यज्ञ कहलाया गया है।

उसे यज्ञ कहते हैं। मेरे प्यारे यह जितना भी शुभ कर्म है वह सर्वत्र है। आज !ऋषिवर ! हमें यज्ञ करना चाहिए। वह मानव भी कुछ नहीं होता।जो यज्ञ से रहित रहता है। वह परमात्मा के राष्ट्र में न होने के तुल्य माना गया है।

यज्ञ की प्रतिष्ठा दक्षिणा में

मेरे प्यारे ऋषि कन्या बोली कि प्रभु मैं यज्ञ की प्रतिष्ठा !उस समय अहा !ऋषिवर ! को जानना चाहती हूँ। उन्होंने कहा यज्ञ की जो प्रतिष्ठा है वहदक्षिणा है। आज हमें दक्षिणा देनी चाहिए। दक्षिणा क्या है? मैंने कल के वाक्यों में कहा, हुत और प्रहुत बेटा ! हुत और प्रहुत का नाम यज्ञमय दक्षिणा है।

दक्षिणा नाम संकल्प का है। यह जो सर्वत्र जगत् है एक संकल्प मात्र है। बेटा पति ! पत्नी संकल्प के नाते ही रहते हैंं। ऋषि मुनियों ने कहा है, एक संकल्प ही है जो संसार को स्थिर किए रहता है। परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में संकल्प किया तो यह जगत् स्थिर रहता है। जब प्रभु का संकल्प पूर्ण हो जाता है। जो इस जगत् का रूपान्तर हो जाता है। उसे प्रलय कहा जाता है। पति पत्नी का संकल्प होता है, उस संकल्प के कारण जीवन एक दूसरे का साथी बना रहता है। संकल्प के कारण माता अपने पुत्र से स्नेह करती है। मुनिवरोंदेखो !, पुत्री अपने पिता से स्नेह करती है। आचार्यकुल में ब्रह्मचारी आचार्य दोनों का स्नेह चलता रहता है। बेटायह जितना परिवार है !, कुटुम्ब है, यह सर्वत्र एक संकल्प मात्र है। यह प्रभु की जो रचना है, प्रभु का जो विज्ञान है यह भी एक संकल्प मात्र से ही है। बेटा इसीलिए इसका नाम दक्षिणा कहलाया गया ! है। दक्षिणा मानव को प्रदान करनी चाहिए दक्षिणा होनी चाहिए। ऐसा कहते हैं कि बिना दक्षिणा के बिनासंकल्प के बिना कोई भी यज्ञ सम्पन्न नहीं होता।

संकल्प की प्रतिष्ठा श्रद्धा संसार का स्तम्भ है।

मेरे प्यारेयह संकल्प की प्रतिष्ठा क्या है !ऋषि कन्या बोली कि प्रभु !ऋषिवर !? उन्होंने कहा कि संकल्प की प्रतिष्ठा श्रद्धा है। इसी लिए मानव में श्रद्धा होनी चाहिए। श्रद्धा के स्तम्भ पर यह जगत् स्थिर रहता है। यह सर्वत्र जो जगत् है इसमें श्रद्धा से ही राष्ट्र

होता है। राज्य और प्रजा में श्रद्धा होती है। मुनिवरोंदेखो !, राष्ट्र का जितना भी वाहक कार्य होता है, वह सब श्रद्धा के आधार पर ही स्थिर रहता है। इसलिए श्रद्धा होनी चाहिए। श्रद्धा ही पुत्र बनाता है, श्रद्धा ही पत्नी बनाता है, श्रद्धा ही माता बनाता है। यह श्रद्धा ही पुत्री की रचना करता है, कुटुम्ब और जगत् की रचना कर देता है।

मेरे प्यारे मुनि महाराज से चाक्राणि बोली कि प्रभु यह जो श्रद्धा है यह !ऋषिवर ! किसमें ओत प्ोत रहती है। उन्होंने कहा कि देवी यह जो श्रद्धाव है यह हृदय से उत्पन्न हुआ करती है। आज हमें इस हृदय को ऊँचा बनाना चाहिए। बेटा यह जो हृदय है ! इसी से श्रद्धा है क्योंकि हृदय में ही योगीजन, तपस्वीजन, महर्षि बना करते हैं, हृदय में ही ध्यानावस्थित रहते हैं, हृदय में ही मन को स्थिर करते हैं, इस हृदय में ही यह सर्वत्र जगत् को दृष्टिपात करते हैं। वे इस हृदय को ऊँचा बनाना चाहते हैं। यह हृदय ही है जो संसार का एक महान् निर्माण कर्त्ता तथा निर्माणवेत्ता है। आज हमें बेटा ! इस हृदय का मिलान परमात्मा के हृदय से करना चाहिए।जिससे यह आत्मा सदैव मोक्ष में भ्रमणकरे।

मेरे प्यारे1 कहा गया है कि हृदय का मिलान प्रभु से !ऋषिवर !. हृदय से श्रद्धा 2. श्रद्धा से दक्षिणा 3. दक्षिणा से यज्ञ 4. यज्ञ से प्रजापति 5. प्रजापति से इन्द्र 6. इन्द्र से गन्धर्व 7. गन्धर्व से चन्द्रमा 8. चन्द्रमा से सूर्य और 9. सूर्य से महत्वत्व 10. महत्तत्व से अन्तरिक्ष और 11. अन्तरिक्ष से वायु और 12. वायु से अग्नि 13. अग्नि से जल और 14. जल से पृथ्वी और पृथ्वी से जगत् की उत्पत्ति हो जाती है। यह सर्वत्र 15 उस महाप्रकृति के जगत् स्थिर रहता है। आज हमें इन स्तम्भों पर विचार विनिमय करना चाहिए। अनुसन्धानवेत्ता बनना चाहिए। क्योंकि सर्वत्र विज्ञान इसके गर्भ में रहता है। इन्हीं स्तम्भों में से विज्ञान की उत्पत्ति होती हैं

आज मैं कोई अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। चाक्राणि ने यह कहा कि महाराज यह हृदय किसमें प्रतिष्ठित !रहता है। उस समय याज्ञवल्क्य ने कहा कि हे देवी हे गार्गी तुम अति प्रश्न न करो। अन्यथा तुम्हारा मस्तिष्क नीचे गिर जाएगा। ! देखो !मुनिवरों, यहाँ आ करके वह मौन हो गई। वाक्य क्या कि हमें प्रकृति के ये

स्तम्भ हैं, इन्हें जानना चाहिए, इनके गर्भ में बेटाविज्ञान ह !ै। मानवता है, दर्शन है, यही बेटा आज का वाक् अब मुझे समय !जगत् का दिग्दर्शन कराता है। यह है बेटा ! महानन्दजी भी अपना !मिलेगा तो मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। कल मेरे प्यारे कुछ संक्षिप्त परिचय देंगे। अपनाविचार प्रकट करेंगे। आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पाठ होगा। धन्य हो6 । सैंट्रल पार्क लोधी रोड समय रात्रि.... ..... बजे दुर्गा 00 डिवोटीज एसोसियेशन द्वारा

११ 20 03 1972 पुष्प 19 देवी यज्ञ का स्वरूप

जीते रहोआज हम तुम्हारे समक्ष !मुनिवरों !, पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की आभा का सदैव दिग्दर्शन होता रहता है। आओ आज हम अपने प्यारे प्रभु की महिमा का ! गुणगान गाते चलें, जो संसार का पालन पोषण करने वाला है, चैतन्य है, सर्वज्ञ है, प्रकृति के कण कण में व्याप रहा है। यह उसका ही जगत् है ज्ञान और विज्ञान में जो दृष्टिपात आ रहा है। यह संसार एक प्रकार की विज्ञानशाला है। जो मानव विज्ञानवेत्ता बनना चाहता है वह वैज्ञानिक प्रतिभा में रमण करने लगे तो वह (शब्द ध्वनि से ।(विज्ञान के गर्भ में पहुंच जाता है। उसकी उसमें प्रतीति होने लगती है। तो आज बेटा ! पुनः से उस मनोहर देव जो विज्ञानमय माना गया है उस प्रभु की हम महिमा को द्वितीय रूप में, तृतीय रूपों में उसका दिग्दर्शन चाहते हैं क्योंकि प्रत्येक मानव प्रत्येक देव कन्या की एक आकांक्षा रहती है कि मैं उस आनन्द और विज्ञान में जाना चाहता हूँ। जिस विज्ञान में जाने के पश्चात्, मानव की प्रवृत्तियाँ बेटा उनमें संलग्न हो करके ! परलोक को प्राप्त हो जाती हैं। वह किसी भी प्रकार का वैज्ञानिक हो अथवा ज्ञानमय हो।

हमारे यहाँ लोक लोकान्तरों की विवेचना परम्परागतों से ही, वैदिक साहित्य में उसका निरूपण किया। आज बेटाहम उसका निरूपण तो करने नहीं आए हैं !, केवल कुछ सूक्ष्म परिचय देना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है। क्या आज मैं तुम्हारे समीप, केवल सूक्ष्म

परिचय देना चाहता हूँ। मुझे मेरे प्यारेमहानन्द जी ने !, बहुत पूर्व काल में कहा था कि हम विज्ञानवेत्ता बनना चाहते हैं राष्ट्रीय बनना चाहते हैं। परन्तु विचारने का विषय , केवल एक ही रह जाता है कि आज हम विज्ञानमय बनना चाहते हैं या राष्ट्रीय बनना संसार में राष्ट्रीय वह मानव होता है जो कर्म !चाहते हैं बेटा, वचन से, उस राष्ट्रीय आभा को जानता हुआ और मुनिवरों उसके लिए पुनरावृत्ति आहुति देता है। वह राष्ट्रीय ! जीवन है, जिसमें मानव अपराध नहीं करता। वह अपनी दृढ़ता को लेकर के साहस और मानवीय मर्यादा के आधार पर अपने जीवन को उल्लास में ले जाता है। मेरे प्यारे ! एक वह मानव है !ऋषिवर, जो अपने को राष्ट्रीयता में नहीं, केवल मानवीय क्षेत्र में ऊँचा बनना चाहता है। बेटामानवीय क्षेत्र में ऊँचा कौन होता है !? जो अपने राष्ट्र को पतित नही होने देता, अपनी प्रजा को पतित नहीं होने देता, वह बेटा मानवीयता का ! दिग्दर्शन करता है।

जब मैं अपनी माताओं के द्वार पर जाता हूँ, तो विचार यह आता है कि संसार में माता कौन है? मुनिवरोंदेखो !, वह भी एक माता थी, जिनके गर्भ से भगवान राम का जन्म हुआ। वह भी माता थी जिनके गर्भ से वशिष्ठ जैसे महापुरुषों का जन्म हुआ। मुनिवरों ! देखो, एक नहीं और भी नाना ऋषि मुनियों को जन्म देने वाली पवित्र माताएं हुई हैं। बेटावह माता ऐसी हैं !, जिन माताओं के द्वारा मानवीयता, राष्ट्रीयता दोनों ही उनके समीप होती हैं। जो माता अपने गर्भाशय को ऊँचा बनाना जानती हैं। उसकी आभा को जानती हैं मुनिवरोंवह राष्ट्रीयता का स्वार्थ उनके द्वार पर होता है !, परन्तु जो मानवीयता पर विश्वासी होती हैं वह मेरी पवित्र माता मानवीयता की अमूल्य शिक्षा महानता वाला , संसार !संकल्प धारण करके मानो वह माता और भी सौभाग्यशाली बन जाती है। बेटा में, वह माता कितनी उज्ज्वल है, जिस माता के गर्भस्थल से ऐसे बालक का ऐसी पुत्री का जन्म होजो अप ,नी राष्ट्रीयता और मानवीयता दोनों को लेकर के परलोक को प्राप्त हो जाती है।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने कई काल में प्रगट कराया। आज !मुझे मेरे प्यारे !ऋषिवर ! मैं उस महामना देवी की याचना नहीं करना चाहता हूँ। कौन सी महामना? जो मेरे

जैसे बालक को संसार में जन्म देती है। हे मेरी माँ !तू कितनी पवित्र है। मुनिवरों ! देखो, जो कणाद और गौतम ऋषि को जन्म देने वाली माता है वह माता कितनी , उसकी उपासना करनी चाहिए। ,सौभाग्यशाली है। आज हमें जो चैतन्य जो माता हैं वेद का ऋषि कहता है कि जिस गृह में माता का अपमान होता है, पुत्र माता का निरादर करता है वह गृहगृह नहीं रहता ,, वह शमशान भूमि बन जाता है।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने कई काल में प्रगट कराते हुए कहा आज भी यह अपना ! सूक्ष्म सा विचार देने वाले हैं। समय मिलेगा तो, परन्तु केवल हम इतना विचार देना चाहते हैं कि हमारे यहाँ परम्परागतों से ही, एक हमारे यहाँ पुरोहित प्रथा थी। बेटा ! वह जो पुरोहित प्रथा है प्रत्येक गृह आश्रम में पुरोहित रहता था। उस पुरोहित का अभिप्रायः यह है कि वह पराविद्या गृह में प्रविष्ट करा दे। और गृह को धर्मज्ञ और मानवीयता के क्षेत्र में लाने का प्रयास करे। परन्तु वह जोपुरोहित प्रथा है वह बहुत ही परम्परा से, आज से नहीं हमारे यहाँ राष्ट्र गृहों में भी यह प्रथा रही थी। भगवान मनु के काल में जैसे भगवान मनु जी हुए सबसे प्रथम मनु स्वायम्भुव मनु थे और स्वायम्भुव मनु के यहाँ राज पुरोहित प्रथा थी। उसके पश्चात मुनिवरोंदेखो !, इक्ष्वाकु मनु हुए, इक्ष्वाकु मनु के यहाँ भी यही कर्म रहा। उसके पश्चात् उनके पुत्र का नाम सूर्य मनु था, सूर्य मनु परम्परा में भी इसी प्रकार की विचारधारा रही। इसके पश्चात सूर्य मनु के पुत्र का नाम चन्द्र मनु था, चन्द्रकेतु मनु के पुत्र का नाम रोहिणी मनु था, रोहिणी मनु के पुत्र का नाम स्वानकेतु मनु था, स्वानकेतु मनु के पुत्र का नाम श्रुति मनु था, और श्रुति मनु के पुत्र का नाम मानकेतु मनु था, और मानकेतु मनु के पुत्र का नाम ज्ञानश्रुति मनु था, और ज्ञान श्रुति मनु के पुत्र का नाम सोमभानु मनु था, बेटामैं मनु परम्परा ! का वर्णन करने नहीं जा रहा हूँ। विचार यह कि साढ़े सात हजार वंशलज हुए भगवान मनु परम्परा में उनकी परम्पराएं सदैव संसार में उज्ज्वलता का प्राप्त रहीं। उनका वंशलज विचारणीय था, विचार के योग्य था, जिनमें मुनिवरोंदेखो !, धर्म और मानवीयता और मर्यादा को ले करके, उनकी राष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव होता, परन्तु जब इनमें दोनों वस्तुएं नहीं रहती तो मुनिवरोंवे परिवार !, वे वंशलज संसार से समाप्त हो जाते हैं। तो मेरे

प्यारे हमारा वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः हमारा कि हम मानवता चाहते !ऋषिवर ! हैं और मानवता उस काल में आती है जब वैदिकता मनुष्य के द्वार पर होती है। वैदिक धारा को अपनाना और वैदिक धारा को लेकर के जब मानव इस संसार में विचरण करता है तो उस समय उसकी विचारधारा एक महान उज्ज्वल रहती है।

मेरे प्यारे मैंने कल अपनी विचारधारा प्रगट की कि इस संसार में कितने स्तम्भ हैं। ! यह जो जगत दृष्टिपात आ रहा हैइसमें नाना स्तम्भ माने हैं ,, इसमें एक स्तम्भ का नाम चन्द्रमा भी है, परन्तु देखो, यहाँ मंगल इत्यादियों का प्रायः वर्णन आता रहता है। मैंने बहुत पूर्व काल में कहा, गृहों की विवेचना करते हुए, आदि ऋषियों ने कहा है क्या, आज जब हम मंगल की यात्रा करते हैं, अथवा मंगल में जाने का प्रयास करते हैं। तो वास्तव में मंगल की यात्रा प्रायः करने लगते हैं मुझे बेटा वह समय भली ! महानन्द जी ने वर्णन कराया है !भांति स्मरण है आज का जैसा मुझे मेरे प्यारे, यह वाक् पूर्व काल में भी प्रगट किया, आज भी हम उस वाक् की पुनरूक्ति कर रहे हैं हमारे यहाँ विज्ञान, मानव का स्वाभाविक गुण है। क्योंकि विज्ञान में तो मानव को जाना ही है, चन्द्र के यात्री बनो, मंगल के यात्री बनो, शुक्र के यात्री बनो, ध्रुव के यात्री बनो, चाहे सूर्य के यात्री बनो। किसी भी प्रकार का यात्री बनना चाहता है वह विज्ञान के , वैज्ञानिक बन जाता है।

वह माँ कौन सी माता है? जिसको वसुन्धरा कहते हैं, जिसको हमारे यहाँ गो कहा गया है, जिसको हमारे यहाँ मुनिवरोंदेखो !, प्रकृति कहा गया है ,जिसके अणु, महाअणु त्रसरेणुओं को जानने के पश्चात् मुनिवरोंदेखो !, व्यापक हृदय व्यापक मस्तिष्क बन , कर के और विज्ञान में जाना जिसके लिए स्वभाव हो जाता है। तो विज्ञान में जाना !कोई अपराध नहीं। परन्तु विज्ञान में मानवता को नष्ट कर देना यह अपराध है। बेटा विज्ञान में मानव को जाना चाहिए परन्तु अपनी मानवीयता को नष्ट नहीं करना चाहिए। , देखो !आज जो अपनी मानवीयता को नष्ट कर देता है वह मुनिवरों, संसार में क्या बनता है? मुझे वह महाभारत का काल, भली भांति स्मरण आने लगता है। बेटा मुझे !

वह काल स्मरण है जब भीम और भीम के पुत्रघटोत्कच, दोनों विज्ञानशाला में विराजमान होते थे और विज्ञानवेत्ता बन कर के वे नाना प्रकार के अणुओं पर अपना अधिपथ्य करते थे। मुझे स्मरण है बेटा महाराजा भीम और उनके पुत्र धटोत्कच ने ! एक यन्त्र बनाया। जिसको चन्द्र विप्रति यन्त्र कहते थे। मानो वह यन्त्र चन्द्रमा के ऊपरले कक्ष में भ्रमण करने वाला था। बेटा महानन्द !आज का विज्ञान जैसा मुझे मेरे प्यारे ! जी ने प्रगट कराया है। आज का विज्ञान चन्द्रमा की घोषणा कर रहा है, मंगल की घोषणा कर रहा है। परन्तु मुझे वह द्वापर का काल भली भांति स्मरण है कि संसार में जब आधुनिक काल का तो मुझे प्रतीत नहीं। परन्तु जब वैज्ञानिक इस मानो चन्द्रमा के कक्ष के ऊपरले भाग में पहुंचेंगे, तो वहाँ भीम और घटोत्कच के जो यन्त्र हैं आज भी , वो अन्तरिक्ष में भ्रमण कर रहे हैं। मानो देखो, यन्त्र है आज भी वह चन्द्रमा के ऊपरले कक्ष में भ्रमण कर रहें हैं मानो उन्होंने लगभग इक्कीस प्रकार के यन्त्रों का उन्होंने अन्तरिक्ष में अप्रेत किया था। आज वह यन्त्र मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे यहाँ विज्ञान परम्परागतों से ऊर्ध्वा रहा है।

मुनिवरोंद !ेखो, मुझे एक समय ऋषि मुनियों का समाज एकत्रित था। उसमें देव ऋषि नारद इत्यादि मुनिवरों विराजमान थे। तो उसमें यह उपग्रहों की विवेचना प्रारम्भ हो ! गई। ऐसा कहा जाता है कि महात्मा ध्रुव ने एक ध्रुवकृतकेतु यन्त्र, का निर्माण किया था। जिस यन्त्र की अवस्था करोड़ो वर्षो तक वह यन्त्र अन्तरिक्ष में मानो ध्रुव मण्डल के आँगन में भ्रमण करता रहा करोड़ वर्ष के लगभग। मानो इतने आयु वाले यन्त्रों का निर्माण किया। क्योंकि जितनी सूक्ष्म धातु होती है उतनी ही उसकी ऊर्ध्वा आयु होती है। क्योंकि आयु का अभिप्रायः यह कि जितने भी सूक्ष्म परमाणुओं से यन्त्र का निर्माण किया जाता है। वह यन्त्र उतना ही आयु में दीर्घ होता है। क्योंकि देखो, यन्त्र को समाप्त करने वाली वह धातु होती है जो उससे प्रहीत करती है। मानो जैसे पृथ्वी है वह यन्त्र का विनाश करती हैक्योंकि वह पार्थिव तत्त्व में पार्थिवता मे ,ं उसका निर्माण होता है। इसी प्रकार अग्नि तत्त्व में जिसका निर्माण होगा। अग्नि उस यन्त्र का विनाश करेगी। परन्तु जहाँ अग्नि से उसकी ऊर्ध्वगति हो जाती है जहाँ जिस लोक में निर्माण होता है

वहाँ उस लोक से उसका सम्बन्ध नहीं रहता। तो उस यन्त्र की करोड़ों वर्षों की अवस्था होती है। यह उस काल में होता है जब हमारे यहाँ नाना प्रकार की विवेचना, नाना प्रकार के यज्ञों को रचाया। वह अग्नि सप्त जिह्वा वाली है। उस में देवीयज्ञ में से ऐसी धातुओं का जन्म होता था। अग्नि में जब स्वाहा देते, स्वाहा के साथ में जब परमाणु उत्पन्न होते उन परमाणुओं को यन्त्रों द्वारा एकत्रित किया जाता। एकत्रित करने के पश्चात् उन परमाणुओं का आपस में मिलान करके उनसे यन्त्रों का निर्माण होता था। उन यन्त्रों का निर्माण केवल उस की प्राप्ति यज्ञशाला के द्वारा ही होती है। हमारे यहां ऋषि मुनियों ने भिन्न भिन्न प्रकार की विवेचनाएँ प्रारम्भ की। भिन्न भिन्न प्रकार का जीवन मानव के लिए सञ्चार किया। राष्ट्र के लिए क्या और विज्ञानवेत्ताओं के लिए क्या बेटा मुझे ! देखो !स्मरण है क्या मुनिवरों, ऋषि मुनि अपने यहाँ सुन्दर सुन्दर विज्ञानशालाएं, यज्ञ शालाएं उनमें भिन्न भिन्न प्रकार के याग होते थे।

हमारे यहाँ देवी की पूजा का अभिप्रायः है। मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी प्रेरणा दे रहे ! हैं आज उनको समय तो प्रदान नहीं किया जाएगा। परन्तु आज यह प्रेरणा है कि देवी पूजा है क्या? बेटा बहुत ही परम्परा का प्रश्न है !यह प्रश्न है मेरे प्यारे !परन्तु यह कहा है कि देवी पूजा का अभिप्रायः हैसंसार में वैज्ञानिक बनना ,, मानो वह देवी याग की पूजा है। देवी का अभिप्रायः यह है कि माता की पूजा करनी है? कौन सी माता की पूजा करनी हैजो जननी है ,, जो मानो जन्म देने वाली है। आज उस माता का हम आदर करना चाहते हैं, उस माता के श्रृङ्गार को हम हनन नहीं कर सकते। आज जो मानव संसार में माता के श्रृङ्गार को भ्रष्ट करना चाहता है वह देवी याग नहीं कर सकता, वह देवी पूजा नहीं कर सकता। मानो जो संसार में अपनी रसना के ऊपर निर्भर हो जाता है जो मानो देखो, नाना प्रकार के दूसरों के गर्भ का भक्षण करना प्रारम्भ कर देता है, मानो दूसरे प्राणी के माँस को भक्षण करना चाहता है वह भी देवी याग का , विवेचना दी है क्या !अधिकारी नहीं होता संसार में ऐसा मैंने बहुत पूर्व काल में बेटा उसका जो सत्य विचार है विचार केवल यह कि देवी याग की हमें पूजा करनी है, आज हमें देवी के द्वार पर जाना है। देवी कहते किसे हैं? जो हमें देती है। और वह

देती क्या हैहमें करूणा देती है !, ममता देती है, मान देती है, अपनी लोरियों का दुग्ध पान करा देती है, उसे माता कहते हैं। मेरे प्यारे उसको माता कहा जाता !ऋषिवर ! है माता उसे नहीं कहते जो दूसरो का हनन करने वाली हो !मानो मुझे मेरे प्यारे , महानन्द जी ने कई काल में प्रगट कराया आज उन वाक्यों में जाना नही चाहता हूँ। विचार केवल यह है कि मुझे समय समय पर मैं अपने महानन्द जी के प्रश्नों का उत्तर देता ही रहता हूँ विचार क्या, कि हमें वैज्ञानिक बनना है और विज्ञान के क्षेत्र में जाना है। जिस राष्ट्र में, जिस समाज में वैज्ञानिक तथ्य होते हैं, वह राष्ट्र और समाज उत्तम होता है। परन्तु विज्ञान के साथ में मानवता का हनन नहीं होना चाहिए। यदि विज्ञान के साथ में मानवता का हनन हो जाएगा तो विज्ञान अथवा वह ममतामयी माँ की पूजा नहीं रहेगी। इसीलिए बेटा विचार क्या है कि आज हम मानवीयता के क्षेत्र में जाने ! महानन्द जी पुनः प्रेरणा दे रहें हैं कि मुझे समय प्रदान !का प्रयास करें। मुझे मेरे प्यारे किया जाए। परन्तु मैं इन्हे कुछ समय प्रदान करने वाला था परन्तु कल इन्हे समय प्रदान किया जा सकेगा। विचार क्या कि आज हम उस मानवीय क्षेत्र में ऊर्ध्वा गति को प्राप्त करना चाहते हैं, आज संसार में मानो अपने सद्भाव, सद उज्ज्वलता मानो देखो, माता तो उसे ही प्रीति करती है जो उसके अनुकूल कर्म करता है। संसार में आज वेद के अनुकूल वैदिक विचार उसके द्वारा नहीं होता मानो वह अपनी महानता में उज्ज्वल नहीं होता। माँ उसे प्रीति नहीं करती। एक माता के गर्भ से बालक का जन्म होता है परन्तु वह माता उसके द्वारा चार पुत्र हैं। परन्तु उसका उसी पुत्र से अति आत्मिक स्नेह होता है जो माता की आज्ञा का पालन करता है। ,परन्तु जो आज्ञा का पालन नहीं करता बाद में देखो, वह माता उसे अपने हृदय से उतना आदर नहीं कर पाती। इसी प्रकार बेटावह जो परम पिता परमात्मा है !, जो आनन्दमयी मेरी माँ है उस प्रभु को माता कहा है। क्योंकि वह संसार का पालन पोषण करने वाला है। बेटा उस माता ! को हमारे यहाँ दुर्गेवेति कहा है। जो दुर्गुणों को हनन करने वाला है, दुर्गुणों को अपने में ग्रहण करता है, वह ग्रहण नहीं करता। मानो देखो, उसकी प्रतिभा के आश्रित होने पर व्यक्ति के दुर्गुण हो जाते हैं। पवित्र हो कर के जब प्रभु के द्वार पर जाते हैं तो ,

प्रभु उस मानव को बेटा मोक्ष प्रदान कर देता है। !
तो मेरे प्यारे जिस आभा ,आज हम अपनी उस आभा को जानना चाहते हैं !ऋषिवर ! के द्वारा आज हम उस जीवन को एक महान् ऊर्ध्वा गति को ले जाना चाहते हैं। अब मैं अपने विचारों को अधिक प्रोत्साहन नहीं दूंगा। विचार केवल यह है कि आज का विचार हमारा क्या है क्या हम उस मनोहर ऋषि मुनियों के क्षेत्र में जाने का प्रयास करें। जहाँ बेटा और देवी यज्ञ के साथ साथ नाना प्रकार के ,देवी यज्ञ किए जाते हैं ! उनसे यन्त्रों का !परमाणुओं को नाना अणुओं को लेकर के उनका मिलान करके बेटा निर्माण होता है और वह यन्त्र, उन परमाणुओं से उन यन्त्रों का निर्माण होता हुआ वह वायु मण्डल में प्रसारित हो जाता है। वायुमण्डल में उनकी आभा का दिग्दर्शन होता है। तो इसीलिए हम उस ममतामयी आनन्दधारा को जानना चाहते हैं। जो अव्याहृत गति से रमण करने वाली है। तो मेरे प्यारे अब मैं अपने विचार अधिक नहीं !ऋषिवर ! प्रगट करूंगा, अब मैं संक्षिप्त परिचय अपने प्यारे पुत्रवत को देना चाहता हूँ।
पूज्य महानन्द जीः ओ३म् यमाः रुद्रा भा गा यौ शरणं गता मानं भागा। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने आज अपना !मेरे भद्र समाज !भद्र ऋषि मण्डल ! अमूल्य समय प्रदान किया। जिस समय की प्रतीक्षा मैं सदैव करता रहता हूँ , मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कुछ विज्ञान की चर्चाएँ प्रगट कर रहे थे। कुछ नाना प्रकार के यागों के सम्बन्ध में अपना विचार प्रगट कर रहे थे उन विचारों में कोई द्वितीय भाव नहीं था। परन्तु आज मैं उन आभाओं का विवरण करने आया हूँ। जिन पद्धतियों में इतनी दूरिता, दुर्व्यसन आ गए, जिनमें धर्म की परम्परा, धर्म की महिमा को हम एक उज्ज्वल स्थान न दे करके हमारी धृष्टता बन गई। आज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी उस देवी याग के सम्बन्ध में अपना प्रकाश दे रहे थे। महर्षि भारद्वाज मुनि की चर्चाएँ कर रहे थे। परन्तु वे चर्चाएँ केवल गुरुओं के शब्दों में ही शेष रह गई हैं। मैं केवल यह उच्चारण करना चाहता हूँ मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा है कि देवी की पूजा का अधिकारी कौन है? और देवी कहते किसे हैं? आज मैं उन देवियों का वर्णन करने चला जाँऊ, जिन देवियों के गर्भ से हम जैसे प्यारे पुत्रों का जन्म होता है। आज वे देवियां,

आधुनिक काल का जो जगत् है उनके द्वारा न तो वाणी का श्रृङ्गार है न मानो चरित्र , का श्रृङ्गार है। केवल शारीरिक श्रृङ्गार उन्नत होता चला जा रहा है। आज में मानो दूरी है। आज समाज से परन्तु आज तो मानव ने अपना मार्ग ही द्वितीय अपनाया है , जिस मार्ग में मानो देखो, मानवता की विवेचना करना व्यर्थ हो जाता है। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से बहुत पूर्व काल में कहा कि महाभारत काल के पश्चात् यहाँ जब नाना प्रकार की रूढ़ियाँ आने लगीं, उन रूढ़ियों में देवी याग का प्रथम स्थान रहा। परन्तु देवी याग का अभिप्रायः क्या रहा है? आज मैं उसको कुछ सूक्ष्म रूप में प्रगट कराए देता हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को तो उसकी जानकारी नहीं।

परन्तु देवी याग में गो माँस और भी नाना प्रकार के माँसों का प्रतिपादन मानो उसमें देखो, यज्ञ में परणित किया जाता था। उसके पश्चात् मानो जो मदिरा होता है उसका भी सुरापान किया जाता था, आज भी हिमालय पर्वतों के आँगन में वह प्रायः कर्म होता है। वर्तमान में भी कर्म होता है परन्तु मैं यह उच्चारण करने के ,लिए आया हूँ। कि देवी याग में मानव को देवी पूजन तो करना चाहिए। परन्तु देवी पूजन के साथ में मानव को अपने आचरण, अपनी मानवीयता, अपने आहार, अपने व्यवहार को सुन्दर बना लेना अनिवार्य होता है। परन्तु यदि वह न होता है तो वह जो देवी है जिसे हम प्रकृति कहते है, जिसे हम प्रभु वह मानव के सुकृत को अपने में ,के रूपों में परणित कर देते हैं ! हनन कर लेती है, अपने में ले जाती है। इसीलिए आज हमें यह विचारना है मानो महाभारत काल के पश्चात् यहाँ वाममार्ग एक सम्प्रदाय हुआ है उन्होंने देवी की पूजा करना, पार्वती की पूजा करना, दुर्गे की पूजा करना, काली की पूजा करना और भी नाना प्रकार की पूजा करना। उस पूजा का अभिप्रायः क्या किया? क्या उसमें माँस मानो देखो, वह अग्नि में तपाया जाता है उस अग्नि का प्रसाद बनाया जाता। वह जो अग्नि का प्रसाद हैक्या वही देवी पूजा यही है तो वह देवी पूजा कदापि न ,हीं हो सकती। उसको देवी पूजा उच्चारण ही करना व्यर्थ है परन्तु देवी तो देती है। क्या देती है? सुमति देती है सुविचार देती है, सुभावना देती है। यदि इसी का नाम देवी याग है।

तो यह देवीयाग नहीं हो सकता। और न उसको देवी पूजन कहा जाता है। मैं उच्चारण करने के लिए सदैव तत्पर रहता हूँमानो बहुत ही परम्परागतों से ही ,, मैंने अपने विचार अपने पूज्यपाद गुरुदेव को प्रगट कराए, मानो देवी जब पूजन होता है वाममार्ग सम्प्रदाय में तो उसमें आचार्य क्या वेदं ब्रह्मा वेदों का अपमान करने वाला जो सम्प्रदाय होता है, वेदों का जो अपमान करने वाला जो विचार होता हैवह कदापि भी मानव के लिए ,, मर्यादा के लिए सुखद कदापि नहीं हुआ करता है। मैने बहुत पूर्व काल में मानो इन वाक्यों को हमारे यहाँ देवी याग परम्परागतों में होता था। द्वापर के काल में, त्रेता काल में, सतयुग काल में देवी का पूजन होता रहा है। परन्तु देवी के पूजन का अभिप्रायः यह है क्या देवी के पूजन में नाना प्रकार की सुगन्धिदायक औषधियों का एकत्रित किया जाता है। शुद्ध भावना वाला यज्ञमान, शुद्ध भावना वाले ऋत्विज, वेद पाठी ब्राह्मण मानो उनके द्वारा देखो, यज्ञ होता है, उनके द्वारा स्वाहा होता हैव ,ही तो मानो देखो, देवी की पूजा है। देवी की पूजा का अभिप्रायः यह है इसको देव पूजा कहा जाता है देव पूजा का अभिप्रायः यह कि जो देवता हमें देते हैंआज हम उन्हें कुछ दे ,, परन्तु वे सुगन्धि दें, उनको अन्न दें, वह अन्न क्या है? वह जो सुगन्धि है वही उनका अन्न कहलाया गया है। उसको हमारे यहाँ देवी पूजन कहा जाता है। क्योंकि देवी नाम अग्नि का है, देवी नाम वायु का है, देवी नाम उस माता का जिस के गर्भ में हम पनपा करते हैं। परन्तु आज मानव माता का आदर करता हुआ अपने में ऐसा अनुभव करता है कि मैं यह क्या कर रहा हूँ। मानो देखो, वह उसको देवी पूजा नहीं, उसको मानो क्या कहा जाएगा? इसको संसार ही जानता है।

इसीलिए आज मैं उन माताओं के लिए मैं आज आदर की दृष्टि से अपना वाक्य प्रगट करता हूँ कि वे माताएं कितनी सौभाग्यशालिनी हैं जो माता अपने आचरण, अपने आभूषण को अपनाती हैं। आभूषण का अभिप्रायः है विद्या, आभूषण का अभिप्रायः है उनका सदाचार, उनकी मानवीयता है। जब माताओं के द्वारा यह होती है तब उन माताओं का पूजन होना चाहिए संसार में, जब माताओं के गर्भ से ऊँचे ऊँचे महान् ऋषियों का जन्म होता है संसार में, मर्यादा ज्यों की त्यों बनी रहे। उस मर्यादा का

विनाश न हो जाए। यह मर्यादा भगवान् राम, कृष्णा और भी आदि महापुरुषों की मर्यादा सदैव स्थित रहे इस जगत् में। इसीलिए मैं आज पुनः से इस वाक् को प्रगट कर रहा हूँ। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को निर्णय दे रहा हूँ कि आज का जो समाज है वह देवी पूजा से बहुत दूरी है। बहुत ही दूरी है। क्योंकि देवी का अभिप्रायः है अपने दैविक विचारों को बनाना वही देवी की पूजा है।

आज जो विचारों को कही का कहीं ले जाता है आज नाना प्रकार के प्राणियों का भक्षण करने वाला प्राणी मानो देखो, आज का मानव यह उच्चारण करता है कि माँस चाहिए, मानो रसना का स्वादन चाहिए। क्या वह देवी याग कर सकता है? वह देवी की पूजा करने का उसे क्या अधिकार रह जाता है संसार में? संसार में वह मानव ऊँचा होता हैजो मानव अपनी वाणी से ,, मन, कर्म, वचन से यथार्थ रहता है इस मसाज में। इसीलिए आज मैं अधिक विवेचना नहीं प्रगट करना चाहता हूँ। विचार यह है कि वह प्रथा मानो वाममार्ग जो प्रथा है वह समाज से शनै शनै दूरी तो हो रही हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है। परन्तु वह दूरी होनी चाहिए। वह वास्तव में यज्ञमयी ज्योति जैसे यज्ञ की ज्योति की ऊर्ध्वा गति होती है। इसी प्रकार मानव के विचारों की भी ऊर्ध्वागति होनी चाहिए। उसी काल में यह समाज ऊँचा बनेगा, पवित्र बनेगा। मानो देखो, देवी सम्पदावादी जो प्राणी हैं वह दैविकवादी बन कर के अपने जीवन को उन्नत बना सकेंगे। परन्तु विचारधारा क्या है क्या आज हम उन विचारों पर कोई अपना विचार नहीं करता। उन आचरणों पर जब विचार नहीं रहता तो यह समाज कहाँ जाएगा? परन्तु देवी की पूजा के अंगं ब्रह्मे।

मानो देखो, यहाँ नाना प्रकार के यवनों ने बहुत ही अपना किया यवनों की ऊर्ध्वा गति बन गई यवन अधिक संख्या में हो गएं देखो, राष्ट्र के विवाद में भी यह विनाश का मूल कारण बना। इसी प्रकार मानो देखो, यह जो अशुद्ध परम्परा थी इनको संसार ने मानो इनसे ऊब कर के दूसरे सम्प्रदावादी बने। सत्सनातन धर्म की मानवीयता, वैदिक परम्परा को मानव ने देखो, दूरी कर दिया। क्योंकि संसार में ज्ञान न रहा। ज्ञान का अधूरा पन आ जाने के कारण संसार में रूढ़ि बनती हैं और वह रूढ़ि विनाश का कारण बनती

है। और वही रूढ़ि मुनिवरोंदेखो !, जिससे रूढ़ि बना करती हैं उसी पर वे घातक बन कर के इसके जीवन को नष्ट करने वाली बन जाती हैं। मुझे स्मरण रहता है जब राष्ट्रवाद में नाना प्रकार की रूढ़ियाँ होती हैं। वह रूढ़ि एक सम्प्रदाय से रूढ़ि का निकास हुआ है। परन्तु कोई समय आता हैजब वह उनकी इच्छाएँ पूर्ण नही होती ,, वही रूढ़ि जहाँ से उत्पन्न हुई उसी रूढ़ि को निगलने वाली बन जाती हैं। आज वह क्या है उससे राष्ट्र और समाज दोनों का विनाश होता जाता है। इसीलिए मैं अधिक विवेचना प्रगट नही करूंगा। मैं तो केवल संक्षिप्त अपना परिचय देना चाहता हूँ। विचार देने आया हूँ कि आज हम देवी की पूजा करने वाले बनें। परन्तु इसका नाम देवी पूजा नहीं है देवी पूजा का अभिप्रायः है अपने आचरणों को पवित्र बनाया जाए और यज्ञ किया जाए। , परम्परा की जो प्रथा है कि सतोयुग के काल से चैत्र मास में प्रतिपदा से लेकर के सप्तमी तक मानो देखो, अष्ठमी तक यज्ञ प्रारम्भ रहता है। देखो, यहाँ वेदों के नाना पठन पाठन होते और क्रम चलता और यज्ञशाला में स्वाहा राष्ट्र का राष्ट्र ध्वनिमय हो जाता। मुझे स्मरण है जब भगवान राम के काल का वह समय मुझे स्मरण है जब भगवान राम लंका को विजय करके आए तो उन्होंने देवी याग किया। याग क्या किया उनके यहाँ एक वर्ष में दो समय देवी की पूजा करना क्या इन दोनों समय ऐसे हैं एक समय पृथ्वी के गर्भ में बीज की स्थापना की जाती है। एक याग में कृषि के गर्भ से वह मानो देखो, नाना प्रकार की वनस्पतियों का अन्न उत्पन्न हो करके कृषक गृह में आता है। तो प्रत्येक गृह में याग होने चाहिएं। प्रत्येक गृह में याग होते हैं तो वह प्रकृति माता की पूजा है, देवी की पूजा है परन्तु वही तो अखण्ड ज्योति है हमारे यहाँ। , भगवान् राम का जीवन मुझे स्मरण है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कहा करते हैं क्या उन्होंने जब से राष्ट्र स्थापित किया और मृत्यु तक उनके गृह से यज्ञमयी ज्योति का विनाश नहीं हुआ, वह यज्ञ ज्योति, यज्ञ की अग्नि उनकी यज्ञशाला में सदैव प्रदीप्त रहती थी यज्ञ होते रहते थे। तो राष्ट्र और समाज उस काल में ऊँचा बना करता है। उनका सम्बन्ध राष्ट्र के और समाज के ऊपर बहुत ही गम्भीरता से अपना प्रभुत्व निर्धारित करता है यज्ञ होने ,इसीलिए मैं इन विचारों को इसीलिए देने आया हूँ क्या याग होने चाहिए ,

जितने हो जाएंगे उतना ही राष्ट्र और वायुमण्डल ऊँचा बन जाएगा मेरे पूज्यपाद ,चाहिए गुरुदेव ने इस देवी याग के सम्बन्ध में देवी की विवेचना करते हुए यह नाना विचार देते रहते हैं इनके विचार बहुत गम्भीर रहते हैं मेरा विचार तो इतना गम्भीर नहीं परन्तु , जहाँ यज्ञों में माँसों की स्थापना की जाती है अरे, यज्ञ तो दूसरों की रक्षा करने के लिए होते हैं यज्ञ दूसरो को नष्ट करने नहीं आते संसार में, इसीलिए देवी जो पालना करती है देवी किसी का भक्षण नहीं करती संसार में अहा देवी उस काल में भक्षण , करती है जब उसके पतितव पर कोई आक्रमण करता है उसमें वह देवी मानो चण्डी वह देवी रुद्र का रूप धारण कर लेती है माँ काली बन करके उस ,बन जाती है मानव को नष्ट कर देती है इसीलिए आज हम उस महामना देवी की याचना करने वाले बने वह देवी क्या है? वह माता है जिसके गर्भ से मानव का जन्म होता है जिस गृह में , वह गृह आज नहीं तो कल नष्ट हो जाएगा ,माता का निरादर किया जाता है, जिस राष्ट्र में मानो इस प्रकार की भावना है वह राष्ट्र नष्ट हो जाते है। इसी प्रकार आज , हम मानो देखो, उस महामना देव की महिमा का गुणगान गाते हुए हम उस अशुद्धवाद को त्याग करके कुरीतियों को त्याग करके सत् भावना को लाने का प्रयास करें हम , मैं अधिक विवेचना देने नही आय ,अपने जीवन में याग करने वाले बनेंा हूँ विचार केवल मेरा यही है क्योंकि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो आधुनिक काल को जानते नहीं परन्तु विचार यह है कि माताओं का श्रृङ्गार सुरक्षित रहे, माताओं की पूजा होती रहे , उसका श्रृङ्गार उसकी सुरक्षा है। इसी प्रकार माता अपने श्रृङ्गार में इतनी ललाहित न जिससे ,हो जाए वह अपनेपन को त्याग करके मानो वह किसी और ही मार्ग को अपना लें, यह राष्ट्र और समाज का अपमान होता है उसमें धर्म और मानवीयता का ह्रास होता है। इसीलिए आज का विचार केवल क्या है, क्या आज मैं उनके लिए उच्चारण कर रहा हूँ कि आज का समाज, मैं राष्ट्रवाद में जाना नहीं चाहता हूँ मैं विज्ञानवाद में भी , जाना नहीं चाहता हूँ। क्योंकि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव की आज्ञा नही है उच्चारण केवल यही है कि याग करो परन्तु देवी की पूजा करना, मानव को चाहिए परन्तु वह देवी की ही पूजा होवह ऐसी पूजा न हो उदर की पूजा न हो जाए जिससे उदर की पूजा , हो

करके संसार का विनाश हो जाए परन्तु देवी की पूजा क्या है देवी की पूजा करना मानवीयता, चरित्र और महानता को लानामानवता को लाना देवी की पूजा है ,, यही हम आज देवी उसी को कहते है जो चरित्रवान पुत्री होती है उसको प्रायः मानव कहता है यह तो बड़ी विवेचना यह तो बड़ी महान देवी है तो प्रायः देवी ,बड़ा आत्म बल है , कहते है परन्तु जो दुराचारिनी हो तो कहते हैं यह देवी नहीं यह तो महा अपराधन है, इसका निरादर होना चाहिए इसका। मुनिवरोंदेखो !, उसका समाज में अपमान होता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव सर्वत्र जानते हैं मैं इनके समक्ष विवेचना देना मेरे लिए जैसे सूर्य को एक मानो सूक्ष्म से जुगनू के तुल्य, मैं अपना प्रकाश देना प्रारम्भ करूं। यह मेरे लिए शोभनीय नहीं है। विचार देना केवल आज हमारा यह, कि क्या आज हम देवी याग करने वाले बनें। महर्षि भारद्वाज की भांति, राम और कृष्ण की भांति यहाँ परम्परा से याग होते रहे हैं। परन्तु उस प्रभु का पूजन होता रहा है। यहाँ कोई ऐसा आश्चर्य नहीं है। प्रत्येक ऋषि मुनि मानो देखो, देवी याग, देवी नाम श्रद्धा का है उस श्रद्धा को , लाना चाहिए। श्रद्धा रूपी देवी जब जागरूक हो जाती है तो मानव का हृदय पवित्र बन जाता है। इसीलिए आज का विचार क्या है क्या हम अपनेपन में ऊँचे बनते हुए, उस महामना माता को अपनाते हुए संसार में निरादर करने वाले न बने। उस वाममार्ग प्रथा को त्याग करके वैदिक प्रथा को लाने का प्रयास किया जाए। याग किए जाएं, सुन्दर सुन्दर याग होंगे, तो संसार पूजन करेगा ,संसार में सुगन्धि होगी यह देव पूजा है, महान पूजा है प्रकृति की पूजा है, जिससे संसार ऊँचा बनता है। मैं तो केवल यह वाक्य प्रगट करने आया हूँ, आज मुझे कोई अधिक चर्चा प्रगट करनी नहीं है। मैं तो केवल अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाने आया हूँ।

पूज्यपाद गुरुदेवः धन्य होऋषि मण्डल !मेरे प्यारे.........., आज मेरे प्यारे महानन्द ! जी ने कुछ विवेचनाएँ ऐसी प्रगट की हैं जो समाज में कुरीतियाँ आ जाती हैं। तो महानन्द जी ने रूढ़िवाद के सम्बन्ध में अपना विचार दिया तो इनका विचार !मेरे प्यारे मुझे तो बहुत प्रिय लगा है क्योंकि देवी की ही पूजा होनी चाहिए, श्रद्धा को उत्पन्न करते हुए, महामना माता की अपना आहार व्यवहार पवित्र बनाते हुए निष्ठा, मानवता,

साहस को अपनाते हुए मानो देखो, रूढ़ियों का विनाश, सदाचार, देवी की पूजा, देवी क्या है यह मेरे प्यारे महानन्द जी ने भली भांति प्रगट किया !उन्होंने देवी श्रद्धा को कहा है, इन्होंने देवी वसुन्धरा को कहा है, प्रकृति को कहा है, देवी उस माता को कहा है जो चरित्रवान है मानवता जिसके द्वारा है। जो अपने गर्भ से राम, कृष्ण और भी महापुरुषों को जन्म देने वाली माता है वह देवी है। उनका गर्भाशय सदैव उज्वल रहता है। इन वाक्यों के साथ में इन विचारों का निराकरण कल प्रगट करेंगे। आज का विचार क्या कि हमें देवीयाग करने चाहिए। परन्तु उनके साथ यौगिकवाद होना चाहिए। मानववाद होना चाहिए। वह केवल शब्दों में न रह जाएं, वह अपने आचरण में आने चाहिए। यह वाक्य आज का समाप्त अब वेदों का पाठ होगा। ओ३म् यमाः रुद्रा भाः गा यो सर्वा गता मानं भागाः। सेंट्रल पार्क, लोधी रोड समय रात्रि 6.द्वारा बजे दुर्गा डिवोटीज ऐसो0 00

१२ 12 10 1972 पुष्प 19

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, यह भी तुम्हें प्रतीत हो गय होगा आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता हैं जिस पवित्र वेदवाणी में परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान निहित रहता हैं क्योंकि हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, ऊँची से ऊँची उड़ान रही हैं ऋषि मुनियों के मध्य में जब विराजमान होकर के दृष्टिपात किया गया कि मानव की कितनी उड़ान है इस संसार में वैदिक ज्ञान के द्वारा उस परमपिता परमात्मा को स्तम्ी बनाते हुए जब ऋषि मुनि अपनी उड़ान उड़ते हैं तो ऐसा दृष्टिपात होने लगता हैं कि यह उड़ान कितनी विचित्र हैं आत्मा की उड़ान है विज्ञान की उड़ान हैं परन्तु विचारों की उड़ान एक महान उड़ान होती हैं बेटा मैंने इतने पुरातन काल ! में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहा था कि जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के आसन पर विरजमान होते थे तो उस समय हम यह दृष्टिपात करते रहते थे कि उनके विचारों में कितनी विडम्बना थी उनके विचारों में कितनी महता थी उस महता का मैं वर्णन तो नही करूंगा केवल संक्षिप्त परिचय देना हैं मुझे स्मरण हैं जिस प्रकार हम

अपने पूज्यपाद गुरुओं को नत मस्तिष्क होते रहते तो मृगराज भी नतमस्तक होते अथवा सर्पराज भी आकर नतमस्तक होते मैं क्या विचित्रता दृष्टिपात कर रहा हूँ उस सयम पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा कि मानव के विचारों इससे भी ऊर्ध्वा उड़ान हैं जब मानव का हृदय वाणी दोनों का समन्वय होगा तो उस विचार में अहिंसा परमोधर्म होगा उस विचार में मुनिवरों महता होगी उन महता वाले वाक्यों से परमाणुओं की तो उपलब्धि ! होती हैं वह जो परमाणु है वह इतना महान है हिंसक प्राणियां के अन्तःकरण को भी निगल जाता हैं और जैसा शब्द होगा उसके विचार के अनुसार ही दूसरे के अन्तःकरण को उसी प्रकार कव प्रभ ावित कर लेता हैं।

हास्य हमारा हृदय गद गद !तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब यह कहा करते थे बेटा ..... वास्तव में वह जो मेरा प्यारा प्रभु है !हुआ करता हम यह कहा करते कि हे प्रभु जो ज्ञान और विज्ञान का भण्डार हैं जिसका यह जगत है नाना प्रकार के लोक लोकान्तर हैं मुन िवरों इसीलिए जो विज्ञान है वह प्रभु की प्रतिभा हैं। !

मेरे प्यारे मैं माता वसुन्धरा की याचना कर रहा था। माता वसुन्धरा को ममतामयी ! कहते हैं मां वसुन्धरा है वसुन्धरा का अभिप्रायः है जिसके गर्भ में हम वशीभूत हो जाते हैं उस माता का नाम वसुन्धरा के बहुत से पर्य ायवाची शब्द हैं वसुन्धरा नाम जननी माता को भी कहते हैं वसुन्धरा नाम पृथ्वी को भी कहते हैं वसुन्धरा सूर्य की किरण को भी कहते हैं वसुन्धरा प्रकृति को भी कहा गया हैं जिसे वसुन्धरा को वैज्ञानिक जानना चाहता हैं उसी के गर्भ में जाकर के विज्ञान को भी वसुन्धरा कहते हैं जब ब्रह्मचारी आचार्य के कुल में प्रविष्ट होता हैं तो आचार्य अपनी निगली हुई विद्या को प्रदान कर देता है। आचार्य के कुल में वही जो वसुन्धरा माँ विद्या है उसके गर्भ में हम परणित हो जाते हैं

आज हम अधिक विवेचना नही दे सकेंगें केवल संक्षिप्त परिचय देना है आज हम वेदों का पठन पाठन कर रहे थे आज का हमारा वेदमन्त्र क्या कह रहा था बेटा हमारा ! वेदमन्त्र कह रहा हैं हमारा वेदमन्त्र विज्ञान के लिए घोषणा कर रहा था कि मानव को विज्ञान के युग में पंहिच ही जाना चाहिए। विज्ञान में रमण करना चाहिए ऐसा हमारा

वेदमन्त्र कह रहा थ ा मुनिवरों जहाँ वेद यह कह रहा था वसु कृत प्रवेः वेदः ध्रतप्रवः ! अस्ति वह जो वेद हे वह प्रतिभाशाली है मानव को प्रकाश में ले जाने वाला हैं कल मैं तुम्हें परिचय करा रहा था कि हमारे यहाँ चार वेद हैं वास्तव में वेद तो एक ही माना जाता हैं परन्तु वेद की चार प्रकार की आभा स्वीकार करते हैं उसी में ज्ञान काण्ड है उपासना काण्ड हैं और कर्म काण्ड हैं यह चार काण्ड है। उपासना काण्ड है और कर्म काण्ड हैं यह चार काण्ड हैं चारों रूपों में चारो ऋषियों ने चार वेदों को विभक्त किया परन्तु चार वेदों की आगे चल करके शाखाओं का न 1127िर्माण हुआ परन्तु यहाँ अब तक कोई मानव भी निर्णय नही कर सका ऋषि कहते हैं कि मानव ने उतने ही ज्ञान को उस कामधेनु में से ढूंढ़ा हैं जितनी मानव को आवश्यकता रही वैज्ञानिजनों ने भी इसी प्रकार वेदों मे जितनी भी विद्या है मानो उतनी ही विद्या को मानव में अपने तपने तक सीमित बना लिया जितनी उसे आवश्यकता रही जैसे चरित्र हे ब्रह्मचर्य आश्रम में गृहस्थ आश्रम में वानप्रस्थ और सन्यास परन्तु इसमें विज्ञान काण्ड आ जाता हैं परन्तु इसके अतिरिक्त और भी नाना विद्याएं वेदों में विराजमान हैं जैसे मुनिवरों नक्षत्रों ! की विद्याओं भी क ुछ वैज्ञानिक पुरूषों ने जाना परन्तु यहाँ तो यह कि उड़ान उड़ते रहो ऋषि पिप्लाद ने तो ऐसा कहा है हे प्रभु मेरी इस वैदिक भण्डार में जाने के ! लिए यदि सहस्रों वर्षों की अवस्था हो और मैं वैदिक विज्ञान के आधार पर यदि उड़ान उड़ता रहूँ तो यह भी अवस्था मेरी सूक्ष्म है तो विचार क्या कि इतना नितान्त ज्ञान है बेटा उड़ान उड़ते रहो नाना नक्षत्रों में चले जाओ ऋषिजनों ने तो यह कहा है कि प्रभु ! देखो !के राष्ट्र में अनन्त सूर्य हैं अनन्त चन्द्रमा हैं मुनिवरों, एक आकाश गंगा में नाना सौर मण्डलों कहलाए गएं हैं एक सौर मण्डल में लाखों मण्डल होते हैं और इस प्रकार के तीन प्रकार के उस आकाश गंगा में अनगणित अरबों, खरबों सौर मण्डल कहलाए जाते हैं तो बेटा का !उड़ान उड़ते रहो विचार विनिमय करते रहो परन्तु यह तो प्रभु ! विज्ञान हैं विद्या है, कामधेनु है इसको जितना भी दुहा जाता हैं उतना ही मन्थन करने से इतनो की उत्पति होती हैं विवेक उत्पन्न होता हैं बेटा मैं यह उच्चारण कर नही ! करने जा रहा हूँ विचार विनिमय यह कि आज हम अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते

जिसको अपनाने से हमारे जीवन में महता !हुए उस स्तम्भ को अपनाना चाहते हैं बेटा का प्रायः दिग्दर्शन होता रहे। हम अपने जीवन की आभा को सदैव विचार विनिमय करते रहें।

इससे पूर्व शब्दों में मैं माता के सम्बन्ध में अपनी विचारधारा प्रकट कर रहा था बेटा ! तुम्हें प्रतीत हैं जिस समय माता कि गर्भस्थल में महात्मा भारद्वाज मुनि ने थे उनके पिता का नाम श्वेतं भारद्वाज था परन्तु भारद्वाज अस्वाति गोत्र कहलाते थे यह परम्परा गोत्र है परन्तु ऋषि भारद्वाज जब माता के गर्भस्थल में थे तो माता की यह प्रतिज्ञा थी अपने पति से ऋषि से हय कहा कि भगवन हम दोनों परस्पर विराजमान हैं परन्तु ! हम दोनों की क्या कामना हैं केवल पुत्र उत्पन्न करना है आज उच्चारण करो तुम किस प्रकार का पुत्र चाहते हो संसार में उस सयम ऋषि ने कहा हे देवी जो तुम्हारी इच्छा ! मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव महर्षि महिकेतु के द्वारा जब !हो उन्होंने कहा भगवन वर्ष की अवस्था 403 बाल्यकाल में शिक्षा अध्ययन करती थी तो वृद्ध थे उनकी आयु थी शिक्षा को अध्ययन कराते कराते हुए मुझे गुरु ने वर्णन कराया कि संसार में यह जो जगत है यह विडम्बना प्रतीत होगी इसमें एक आश्चर्य जगत प्रतीत होता रहेगा कि इसमें कोई महता का दिग्दर्शन नही होगा परन्तु इसके पश्चात उन्होंने इसके द्वितीय रूपों में एक वार्त्ता और प्रकट की कि यदि पुत्री तुम संसार क्षेत्र में जाओ गर्भ से पुत्र की जन्म देना हो तो मैं यह चाहता हूँ कि यह जो आश्रम है यह किसी प्रकार की विडम्बना में न चला जाए हे पुत्री जिस आसन पर तुमने विद्या का अध्ययन किया हैं जिन ऋषियां ने वेदोक्त वार्त्ताओं का मन्थन करके संसार को विचार दिया है मैं यह चाहता हूँ कि तेरे गर्भ से ऐसे बालक का जन्म हो जो ज्ञान और विज्ञान को उन्नत बनाने वाला हो हे प्रभु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह वाक्य मुझे प्रकट कराया मेरी तो यही ! कामना है कि मैं अपने गर्भ से उस बालक को जन्म देना चाहती हूँ जो ज्ञान और विज्ञान में पारंगत होना चाहिए जो मुनिवरों यह वाक्य उन्होंने स्वीकार कर लिया ! तुम ऋषि कन्या हो जो तुम्हारी इच्छा हो वैसे !स्वीकार करते हुए उन्होंने कहा देवी देखो !पुत्र को जन्म दो तो मुनिवरों, माता प्रभु का चिन्तन करती और उन सूक्तियों का

पठन पाठन करती जिन सूत्रों में संसार का ज्ञान और विज्ञान हैं जो लोक लोकान्तरों तक की उड़ान हे वह समय आ गया जिस समय में जिस जिस वस्तु का पान कराना माता को था उस उस महा में उसी औषध का वह पान करती उसी प्रकार का याग करती जो अपने पुत्र को गर्भस्थल में यो को देना चाहती।

मुनिवरों यहाँ नाना प्रकार का अभीष्ट साकल्य होना चाहिए। ऐसा मैंने पूर्व काल में ! माता के गर्भ !भी कहा हैं आज मैं इस विचार में अधिक जाना नही चाहता हूँ मुनिवरों से पृथक हुआ वह बालक एक महान विचित्र था उस बालक का नाम स्वाति भारद्वाज था क्योंकि स्वाति नक्षत्र क्या हे ै यह जो पृथ्वी है इस पृथ्वी से नाना नक्षत्रों का सम्बन्ध होता हैं किसी काल में सूर्य को होता हैं तो किसी काल में चन्द्रमा का होता हैं उन्ही की आकर्षण शक्ति से यह पृथ्वी अपना कार्य कर रही हैं स्वाति नक्षत्र का प्रभाव था पृथ्वी पर उस समय उसका जन्म हुआ तो स्वेति भारद्वाज का नामोच्चारण करने लगे। विचारयह कि माता लोरियों का पान कराती रहती और उसके श्रोत्रों में यह उच्चारण करती रहती कि हे बालक तू बालक नही आत्मा हैं तू पवित्र है तू अजर है मानो किसी काल में तेरा विनाश नही होता तू मृत्यु को भी प्राप्त नही होता मात यह अपने बालक को शिक्षा प्रदान करती रहती।

मुनिवरों यह काल मुझे स्मरण है कि जिस समय सात वर्ष का बालक हुआ था उस ! समय उपनयन किया तो उपनयन संस्कार करने के पश्चात उसे आचार्य कुल में प्रविष्ट कर दिया आचार्य कुल में जब वह प्रविष्ट कर दिया तो उस समय महर्षि तत्त्वमुनि महाराज ज्ञान और विज्ञान में पारंगत थे क्योंकि उस समय उनकी वर्ष की आचार्य 604 कुल में भारद्वाज का प्रवेश हुआ तो शिक्षा प्रारम्भ होने लगी जब शिक्षा का प्रारम्भ हुआ तो उसकी रूचि जो अथवा मस्तिष्क था वह विज्ञान के मार्ग को चल दिया परन्तु देखो, विज्ञान के मार्ग को प्राप्त करने लगे वह बालक बाल्यकाल में ही आचार्य कुल में धातुओं के ऊपर प्रश्न करते यह प्रश्न करते हे भगवन मैं सूर्य मण्डल में जाना चाहूँ ! तो किन किन धातुओं से यान का निर्माण हो सकात है आज मैं यदि वायुमण्डल में से शब्दों की चित्रावली लेना चाहता प्रारम्भकरूं तो उसमें कौन कौन से धातुओं की

आवश्यकता है यह प्रश्न करते रहते और ऋषि भली भांति उत्तर देते रहते मुझे वह स्मरणहै बेटा आज मैं यह कहा करता हूँ कि संसार को यदि ऊँचा बनाना है तो मेरी ! प्यारी माताओं को ऊँचा बनाना होगा अन्यथा यह संसार ऊँचा नही बनेगा।

मुनिवरों महानन्द जी मुझे आधुनिक काल की चर्चाएं प्रकट करते हैं !जब मेरे प्यारे ! औन मैं भी वायुमण्डल के उस वातावरण को दृष्टिपात करता रहता हूँ जो वायु में परमाणु विचरण कर रहे हैं आज मैं यह अवश्य उच्चारण करता रहता हूँ कि वर्तमान का जो वायुमण्डल है यह इस प्रकार दूषितहो गया है कि आज से बीस वर्ष के पश्चात मानव को श्वास लेना भी दुष्कर हो जाएगा विचार यह कि आगे इस प्रकार दूषित वातावरण जब इस संसार में ओत प्रोत हो जाता हैं कहीं विचारों की दूषितता है कहीं प्रकृति के परमाणुओं की दूषितता हैं मूल कारण यह कि यागों की सून्मता है तो मुनिवरों यह जो वातावरण है यह अशुद्धता में परणित है परन्तु माताओं के द्वारा ! इसकी निवृत्ति भी हो सकती है क्योंकि उनको आयुर्वेद की विद्याएं पवित्र विद्याओं शिक्षा होनी चाहिए जिससे उनके गर्भ से भारद्वाज जैसे मुनिवरयों का जन्म हो कैसे वह उनके !ऋषि थे बेटाजीवन की नाना वार्त्ताएं मुझे स्मरण आती रहती हैं वर्ष 15 अवस्था में ही उन्होंने ऋषि के आश्रम में उस याग का निर्माण किया था जिस यान में विराजमान होकर के चन्द्रमा की यात्रा करते थे यह माता के विचारों का प्रभाव हैं वर्ष की अवस्था में वह मंगल मण्डल के यात्री 16 बन गएं थे महर्षि भारद्वाज उन्होंने लगभग वर्ष की आयु में शब्द को आकाशित यन्त्र में स्थित कर लिया था जिसमें 25 मानव के शब्दों की चित्रावली विराजमान हो जाती हैं आज मैं ज्ञान और विज्ञान के युग में जाना नही चाहता हूँ विज्ञान के युग की वार्त्ता प्रकट करते नही आया हूँ विचार यह कि आज हमें विज्ञान को विचारना है कि आज किस प्रकार हमें संसार बनाना है यह विद्याएं बेटा सर्वत्र वेदों में प्राप्त होती हैं उससे शिक्षालय और मानव समाल को ! ऊँचा बनाया जाता हैं

मेरे प्यारेमैं माता की चर्चाएं कर रहा था महर्षि भारद्वाज क !ऋषिवर !ी जो उड़ान थी यह पृथ्वी से लेकर सूर्य मण्डल तक रहती थी सूर्य मण्डल से जो ऊर्ध्वा गति का जो

मण्डल है वह बृहस्पति हैं और ध्रुव कहलाया जाता हैं उन मण्डलों तक की उनकी क्रियात्मक उड़ान थी आज मैं अधिक विवेचना देना नही चाहता हूँ उन्होंने बेटा एक ! यन्त्र का निर्माणकिया था जिस समय वह वर्ष की अवस्था के थे और वह यन्त्र 26 कि उस यन्त्र का आस्वाति समुद्रों में !किस प्रकार का था वह यन्त्र ऐसा था मुनिवरों प्रहार करते ही समुद्रों में से इस प्रकार का तेज उत्पन्न होता था इस प्रकार का उत्थान होता था उससे मेघ बन जाते थे और मेघबन करके वृष्टि प्रारम्भ हो जाती थी हर प्रकार के यानों का निर्माण भी होता रहा क्योंकि यह परमाणुवाद ही तो हैं जिस अग्नि से जिस परमाणुओं से सूर्य समुद्रों को तपाता हैं इसी प्रकार वैज्ञानिक द्यो और अग्नि के उन शक्तिशाली परमाणुओं को एकत्रित करके मेघों को उत्पन्न कराने वाला भी बन सकता हैं यह वेदों में विद्याएं आती है। ऋषि ने वृष्टि केतु यन्त्र का निर्माण किया था आज मैं इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना देने नही आया हूँ विचा यह कि हमारे यहाँ ऋषि मुनि भिन्न भिन्न प्रकार की उड़ान उड़ते रहे हैं आज हमें उस उड़ान की पुनः से उड़ना है उस उड़ान के आधार पर अपने विज्ञान को अपनी परम्परा को ऊँचा बनाना है और माताओं को बेटा माता !किस प्रकार ऊर्ध्वागति को जाना हैं एक समय बेटा ! जब इनके द्वारा पंहुची तो बालक निर्माणशाला में विराजमान थे माता के चरणों का छू भारद्वाज बोले माता मेरे लिए क्या आज्ञा हैं उस समय कहा हे बालक मैं यह दृष्टिपात करने आयी हूँ कि जिन विचारों से मैने प्रभु का आश्रय ले कर के निर्माण कराया था अथवा जिन औषधियों को मैंने पान किया था वह मेरी सार्थक हो रही है अथवा नही माता के इन विचारों को स्वीकार करके उसने कहा माता दृष्टिपात करो तो मुनिवरों उनके विज्ञान को दृष्टिपात कर के माता का आत्म विभोर हो गई। उसने ! कहा धन्य है बालक मैं यही चाहती थी मैंने तुझे अपने गर्भस्थल से इसीलिए उत्पन्न किया था।

मेरे प्यारे माताओं का कितना दायित्व होता हैं कितना विश्वास होता है। !ऋषिवर ! के ऊपर विश्वास होता हैं क्योंकि विचारों से ही तो !माताओं का जय जब अपने पुत्रों माता अपने बालक को विभूषित कर देती हैं आभूषणों से !विश्वास होता हैं मुनिवरों

अब विचार यह कि माता कौनसा आभूषण देती हैं बेटा माता अपने बालक की विचार ! रूपी आभूषण प्रदान कर देती हैं स्वर्ण के आभूषण नही मानो नाना प्रकार के रत्नों पवित्र विद्या का है आभूषण नाम पवित्रता का !के आभूषण नही आभूषण नाम बेटा हैं जो माता अपने बालक को गर्भ में ऊँचा बना देती हैं वह संस्कार बेटा अन्तःकरण ! में विद्यालयों में भी विराजमान नही हो पाते।

मेरे प्यारे आज का हमारा वाक्य क्या कह रहा है कि हम अपने प्यारे प्रभु !ऋषिवर ! का गुणगान गाते जाएं अपने प्यारे प्रभु के महत्व को विचारें अब हम अपने वाक्य को समाप्त करते हैं।

१३ 28 10 1972 पुष्प 19 चरित्र, धर्म और मानवता

देखो, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण हेता रहता है। जिव पवित्र वेदवाणी में उस परम पिता परमात्मा की महिमा का गुण गान गाया जाता है। हमारे यहाँ नाना प्रकार के निरूपण होते रहते हैं। विज्ञान के ऊपर नाना प्रकार के विचार विनिमय होते रहते हैं। आज का हमारा वेद जो प्रकाशमयी कहलाया गया है तथा जो परमात्मा का अनुपम ज्ञान है, वह कह रहा है हे मानव तू ! अपने जीवन को महान् और सुन्दर बना। जीवन को महान् और सुन्दर वनाने के लिए वेद ने घोषणा करता है। विचार यह है कि आज हम मानव बनें। क्योंकि वेद का ऋषि यह कहता है मनः वाचः प्रवे यौनस्तम् योनप्रवः मनुवाचः अस्वति देवः ऋषि कहते हैं। मानव शरीर न मानव है और न आत्मा है। यह जो शरीर प्रभु ने दिया है, यह उस प्रभु की धरोहर है अथवा देन है जिसके ऊपर हमें विचारना है।

परन्तु रहा यह वाक्य यह हमारा जो मानव शरीर हे यह योनिज शरीर है। परन्तु मानव को मानव बनने के लिए कहा है। मुनिवरों शरीर के आकार से ही मानव नहीं बनता ! है। ऋषि जन कहते हैं कि मानव का यह शरीर है परन्तु इस शरीर से ही मानव नहीं कहलाया जाता। मानव वह होता है जो मननशील हेता है। जो प्रभु के राष्ट्र में मनन करता है। क्या वस्तु मनन करता है? और ज्ञान और विज्ञान के मनन करने में उस

दिव्य महान् प्रभु के आनन्दमय स्वरूप को दृष्टिपात करता है। क्योंकि हमारे जीवन को जो स्तम्भ है। संसार का जो स्तम्भ है। बेटा वह मेरा प्यारा प्रभु कहलाया गया है। ! महानन्द जी अभी अभी कुछ अपने विचार संक्षिप्त रूप में देंगे। परन्तु आज !मेरे प्यारे हम इस सम्बन्ध में अपना विचार व्यक्त करने वाले हैं कि वेद का ऋषि यह कहता है कि मानव बनो और मानव से ही देवता बनते हैं।

तो मुनिवरों हमारा कर्त्तव्य है। क्योंकि मानव के हृदय में तरंगों की उद्बुधिता होती है। ! उन्हीं तरंगों से मानव की आकृति का आकार बन जाता है। अथवा वही वाणी के द्वारा, प्राणके द्वारा, श्रोत्र के द्वारा उसका बाह्य स्वरूप बनता रहता है। परन्तु वह जो बाह्य स्वरूप बनता है वही अमानवता मे ले जाने वाला हैं। अन्तरात्मा में उसका हम दिग्दर्शन करते हैं तो मानव का जीवन एक आनन्दमय हो जाता है। और उस पवित्रता में परणित हो जाता है।

यहाँ वेद का ऋषि कहता है, यज्ञम् ब्रह्मे व्यापः। हे मानव तू संसार में !याज्ञिक बन। परन्तु कैसा याज्ञिक बन? यज्ञ कार्य करने वाला बन। क्योंकि यज्ञ ही तेरा कर्म है। मानो जितना भी शुभ कर्म है वह सर्वत्र ही यज्ञ कहलाया गया है। आओ, मेरे प्यारे आज ! मैं अधिक विवेचना नहीं प्रकट करूंगा। विचार विनिमय यह कि आज हम अपने प्यारे प्रभु का गुण गान गाते हुए याज्ञिक बनते चले जांए। प्रभु की आभा का दिग्दर्शन करते रहें। यही हमारा जीवन है। अब मेरे प्यारे महानन्द जी कुछ संक्षिप्त परिचय देंगें। !

पूज्य महानन्द जीः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव !अथवा भद्र समाज !मेरे भद्र ऋषि मण्डल ! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी अनुपम कृपा की कि आज हम कुछ संक्षिप्त परिचय देने आए हैं। परन्तु परिचय देना तो हमे अच्छी प्रकार नहीं आ सकता। क्योंकि संसार में कौन सी वस्तु का परिचय दे सकते हैं? यहाँ परिचय देना ही आश्चर्य है। किसी वस्तु का तुम परिचय देना चाहते हो। एक मानव अपना परिचय देता है, क्या मैं रोमपाद हूँ? परन्तु उससे जब गम्भीरता से प्रश्न किया जाता है कि रोमपाद यह शरीर है अथवा तुम्हारा आत्मा है या मन है? तो वह उस समय निरूत्तर हो जाता है। वह कहता है कि मैं न तो रोमपाद हूँ, न मैं शरीर हूँ, मैं तो केवल एक आत्मा हूँ। परन्तु और भी ऊर्ध्व

में जाते हो तब मानव यह कहता है कि मैं आत्मा हूँ। विचार आता है कि यह शरीर क्या है? उस समय वह दार्शनिक कहता है कि यह जो शरीर है यह मानो प्रकृति के तत्त्वों का समूह है। तो विचार आता है कि प्रकृति सत् है आत्मा सत्चित् है और परमात्मा सत्चित् आनन्द है। यह कहा जाता है। परन्तु इसका जब विस्तार मानव के मस्तिष्कों में आता है तो विचार विनिमय यह आता है कि वास्तव में हम अपना परिचय क्या दे सकते हैं? किसी भी वस्तु का आज हम परिचय देना चाहते हैं तो परिचय हो नहीं पाता। आज मुनिवरों!मैं जब यह प्रश्न करता हूँ कि हे यज्ञमान ! हे यज्ञ करने वाले तू याज्ञिक है। तेरा परिचय क्या है। वह कहता है कि मैं यज्ञमान हूँ। पत्नी के सहित हूँ। मुझे यज्ञमान कहते हैं। उस समय यह प्रश्न आता है कि यज्ञमान तुम हो या तुम्हारी आत्मा अथवा तुम्हारी श्रद्धा है? तो विचार आता है कि आत्मा के जो सद्भाव हैं उन सद्भावों से जो भी सात्विकता मानो श्रद्धा उत्पन्न होती है, उसका नाम यज्ञमान कहलाया गया है। जो यहाँ विचार आता है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी यह कहा है कि आज मेरे प्यारे महानन्द जी परिचय देना मुझे आता ही नहीं है। क्या परिचय दूं। ! संसार का? क्या है यह संसार? जिसका मैं परिचय दूँ।

आज का मानव नाना प्रकार के विज्ञान के आविष्कारों में परणित हो रहा है। विज्ञान में संलग्न हो रहा है। परन्तु साथ में यह भी घोषणा करता है आज का वैज्ञानिक कि पुरातन काल में विज्ञान नहीं था। परन्तु मैं यह कहा करता हूँ कि आज से बहुत पुरातन काल में ऋषि मुनियों ने इस घोषणा को किया है। आज मैं इस घोषणा को पुनः से घोषणा करने नहीं आया हूँ। केवल यह विचार देने आया हूँ कि यहाँ पुरातन काल का विज्ञान कितना विचित्र था? आज मैं उसका परिचय देने लगूं तो वह परिचय नहीं दिया जा सकता। मैं इस वाणी से उसको मापना नहीं चाहता हूँ। आज का विज्ञान चन्द्रमाँ पर शयन कर रहा है। चन्द्रमा पर जाने के लिए उन्होंने यात्रा की है। और भी नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों की यात्रा भविष्य में समाज कर सकता है। मैं यह कहा करता हूँ एक समय महर्षि दालभ्य मुनि महाराज ने एक यन्त्र का निर्माण किया था। जिस यन्त्र में मानो अग्नि के परमाणुओं से वायु के परमाणुओं को एकत्रित करे उनका मिलान

करते हुए उनमें से गुरूतव का स्थिरता में रमण करते हुए, एक यान बनाया था। आज के लगभग 18 लाख वर्ष पूर्व सूर्य की परिक्रमा कर रहा है। उसकी 12, 65, 0000 दिवस की उसकी आयु कहलाई गई है। विचार यह कि उस विज्ञान की 52 वर्ष और मैं घोषणा आज करने नहीं आया हूँ। विचार यह तुम्हें देने आता हूँ कि आज हमारा जो विज्ञान है आज हमारी जो प्रतिभा है वह कितनी विचित्रता में रमण कर रही है।

मुनिवरों मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कई काल !में प्रकट कराया परन्तु वह सकय बड़ा ही विचित्र था कि महर्षि भारद्वाज मुनि ने एक संहिता बनाई थी वह भारद्वाज संहिता कहलाती थी इस संहिता का प्रायः पठन पाठन चलता था संहिता मे विज्ञान की अनेक धाराओं का वर्णन आता है आज का विज्ञान आग्नेय मानो अस्त्रों का निर्माण करने के लिए तत्पर है परन्तु जैसे देखो, एक यान अस्त्र एक राष्ट्र के स्थान पर विराजमान हो करके अन्य राष्ट्र को नष्ट कर सकता हैं परन्तु किसी मानव ने उस अस्त्र का निर्माण नही किया जिस अस्त्र से अग्नि शान्त हो जाए वह अस्त्र जिसको वरुणास्त्र कहते हैं मानो एक अस्त्र का प्रश्न है जो दूसरा अस्त्र जल का अस्त्र होना चाहिए जिससे जल की वृष्टि होनी प्रारम्भ हो जाए परन्तु आज का विज्ञान तो उससे बहुत ही दुष्कर कहलाया गया हैं।

विचार यह कि महाभारत काल में भीम और घटोत्कच्छ ने एक सहस्र की सूर्य विज्ञान के चन्द्र विज्ञान बृहस्पति विज्ञान नामक तीन पौथियों का निर्माण किया था परन्तु फिर वह काल महाभारत काल के पश्चात आया उस काल में वर्ण का अभाव हो गया महापुरूषों का अभाव हो गया महापुरूषों का अभाव हो जाने के कारण रूढ़िवाद पनपने लगा उस रूढ़िवाद मं वेद को ऐसे नष्ट करने लगे जैसे मुनिवरोंअग् !नि मानो यज्ञशाला में प्रदीप्त हो करक जल को समाप्त कर देता हैं परन्तु उस भयंकर अग्नि ने उन महापुरूषों के विचार यायात के जो निर्माण के सम्बन्ध में विद्या थी वह सब अग्नि के मुख में डालकर नष्ट कर दी परिणाम यह हुआ कि आज का जो विज्ञान है उसको देखकर बड़ा आश्चर्य होता हैं

आज से करोड़ो वर्षों पूर्व राष्ट्र का निर्माण केवल चरित्र के आधार पर राजर्षि मनु

महाराज ने किया था अन्न का दोष समाप्त होना चाहिए राजा के राष्ट्र में ऋण नही होना चाहिए एक दूसरे का ऋणी जो समाज होता हैं वह समाज नही कहलाया जाता है विचार यह कि आज मैं जब राष्ट्रवाद के ऊपर विचार विनिमय करता हूँ तो विचार यह आता है कि आज के राष्ट्रवाद में छात्रों के चरित्र भी भ्रष्ट हो गएं हैं आज मुझे ही आश्चर्य रहता है कि आगे जो भविष्य आने वाला है इस भविष्य में मुझे रक्त भरी क्रान्ति ही क्रान्ति दृष्टिपात आती है परन्तु जब मैं इसको दृष्टिपात करने लगता हूँ कि राष्ट्र में जब आहार और व्यवहार का शोधन न रह पाता तो समाज और राष्ट्रवाद समाप्त हो जाता हैं

जब कही यज्ञ इत्यादि कर्म होते हैं आज का समाज उसको पाखण्ड की दृष्टि से दृष्टिपात करने लगा हैं परन्तु जहाँ नृत्य होते हो चरित्र भ्रष्ट करने के साधन होते हो उसे मनोरंजन की दृष्टि से दृष्टिपात किया जाता हैं अरे, यह क्या है उसको तुम क्यों नही पाखण्ड कहते हो जो तुम्हारे हृदय को दूषित कर रहा हैं जन्म जन्मान्तरों का मूल का कारण रहस्य बनते चले जा रहे हैं आज का समाज पर स्त्री गमन करने में अपने को गौरवशाली स्वीकार करने लगता हैं।

यह समय था जिस काल में मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक वाक्य कहा करते हैं देखो, राजा रोहिणकी केतु नाम के राजा एक समय पर्वतों में भ्रमण करने जा पंहुचे एक ऋषि कन्या थी मुदग्ल महषि महाराज की पोती कहलाती थी राजा के मन की प्रवृत्ति चंचल हो गई और उन्होंने कहा ऋषि मैं इस कन्या को अपनाऊंगा उन्होंने कहा नही होगा मुनिवरों ! ब्राह्मण समाज ने एकत्रित होकर राजा से कहा कि यह नही होगा क्योंकि समाज भ्रष्ट हो जाएगा राष्ट्र तुम्हारा नष्ट हो जाएगा उन्होंने कहा यह अवश्य होगा परन्तु बुद्धिमान समाज ने क्ृरान्ति की और यह कहा कि तेरी पत्नी के होते हुए भी तू ऋषि कन्या को अपनाना चाहता है ऐसे मानव को समाज से बहिष्कार कर दिया जाता है उस समय ब्राह्मण समाज ने क्रान्ति की और उसका परिणाम यह हुआ कि राजा का बहिष्कार किया गया ब्राह्मण समाज ने राजा को वनों में त्यागा उसके ज्येष्ठ पुत्र को राज्य का अधिकारी बनाया उस समाज का जब स्मरण आता है और आज के समाज से उसकी

तुलना करता हूँ तो ऐसा दृष्टिपात आता है कि जितना भी अशुद्ध वातावरण है आगे आने वाला जो समाज है इस प्रकार का अशुद्ध वातावरण चलता रहे मिथ्याचारी लोभ, मिथ्यावादी पुरूष रहे तो मेरी प्यारी माताओं का जीवन ऊँचा नही बनेगा। ब्रह्मचारियों का छात्रों का चरित्र ऊँचा नही बनेगा।

आज वायुमण्डल में दूषित वातावरण छा गया हैं आगे वर्ष के उपरान्त वह समय 30 आने वाजा है कि मानव को श्वास लेने में भी कष्ट होगा परिणायम यह हे श्वास लेना भी उसके लिए दुष्कर हो जाऐगा वह समय निकट आ रहा हैं परन्तु इसका एक ही उपाय माना जाता हैं कि संसार में यज्ञ होने चाहियं सुगन्धि होनी चाहिए विचारों की सुगन्धि होनी चाहिए पदार्थों की सुगन्धि होती है वहाँ विचारों में भी सुगन्धि आती है बेटायदि आज के सामाज में मानव मे !ं विचारों की सुन्दरता नही होगी तो यह समाज कैसे ऊँचा बनेगा वातावरण किसी काल में भी शुद्ध नही हो पाएगा।

आज मैं राष्ट्रवाद की वार्त्ता प्रकट कर रहा था राष्ट्र का जो चुनाव होता है वह केवल चरित्र को लाने के लिए होता हैं चरित्र को भ्रष्ट करने के लिए नही होता विचार यह है कि आज हम मौलिकता में जब उस साधारण वस्तु को अपनाना चाहते हैं उस को अपनाने से जीवन में एक प्रतिभा आने लगती है तो जब मैं यह वाक्य प्रकट करने लगता हूँ तो विचार आता है कि आज का समाज कहाँ चला गया यह समाज आज से दूषित नही है वह समाज तो लगभग वर्षों स 5000े दूषित होता चला आ रहा हैं। परन्तु आज मानव यह घोषणा करता है कि मैं स्वतन्त्र हूँ स्वतन्त्रता क्या है हे मानव ! तू अपने दुष्कर्मों से आवागमन के कर्म कर रहे हो तो तुम्हारा जीवन स्वतन्त्र नही होगा विचारों से स्वतन्त्रता है मानो स्वतन्त्र वह मानव होते है जिस मानव के द्वारा आध्यात्मिक बल होता है वह इस पृथ्वी पर आ जाए अन्तरिक्ष में चला जाए ध्रुव मण्डल में चला जाए वह वास्तव में स्वतन्त्र रहता है तो मेरे प्यारे आज मैं यह निर्णय करा ! रहा हूँ कि आज यह समाज कहाँ आज जिस स्थान पर यह हमारी आकाशवाणी जारही है परन्तु मैं यज्ञमान के सम्बन्ध में यदि वर्णन करने लगू तो पोथी की पोथी ही बन जाती हैं परन्तु जब मैं यह वाक्य प्रगट करने नही आया हूँ यह विचार इसीलिए

है कि मुझे यह कष्ट हो रहा है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक समय कजली वनों में थे तो राजा श्वेतकेतु को पुत्रेष्टि यज्ञ कराना था राजा ने निवेदन किया तो उन्होंने कहा कि राजन् तुम्हारा जो मस्तिष्क है वह यज्ञ कराने कि आज्ञा नही दे रहा हैं परन्तु राजा से अखण्ड तपस्या के पश्चात पुत्रेष्टि या कराया उस का परिणाम यह हुआ कि पुत्रेष्टि यज्ञ सफल हुआ आज मुझे दुःख हो रहा हैं कि कहाँ मानव का वह समय और कहाँ मानव का यह समय कितना परिवर्तन आ जाता हैं।

अहा यज्ञमान तू कैसा विचित्र है हे यज्ञमान तू अपने मानवतव को ऊँचा बनाने का ! प्रयास कर तुम्हारे कल्पना रहती है क्योंकि वह मानव बड़े सौभाग्यशाली होते है जिन के गृहों में यज्ञ होते हों जिन मानव के गृहों में सत्य पिवषय होते हो मानो उपदेश तो प्रायः संसार में होते रहते हैं परन्तु जहाँ ब्रह्मवेत्ताओं के उपदेश होते हैं वह गृह कितना सौभाग्यशाली होता है विचार यह कि हे यज्ञमान मैं किसी कि निन्दा नही करने आया ! हूँ मैं किसी के जीवन चरित्र को मापना नही चाहता हूँ क्योंकि प्रायः मैं भी किसी काल में ऐसा ही था परन्तु तब ब्रह्मवेत्ताओं की कृपा हाती है तो मानव ऊँचा बन जाता है मानव महान बन जाता हैं यज्ञमान मेरी तो इच्छा है कि यज्ञशाला में विराजमान हो करके तू वेदों का सुगन्धि लेता हैं श्रोत्रों से आज तेरा यह हृदय पवित्र हो तू संसार में ऐसे प्रकाशमान हो जैसे सूर्य प्रकाश देता हैं मैं गृह में उत्पन्न होने वाले बालक को प्रसन्न हो करे आर्शीवाद देने आया हूँ कि उसकी आयु दीर्घ हो क्योंकि आयु की कामना प्रायः प्राणी करता रहता हैं मैं आज विवेचना तो इस सम्बन्ध में नही दूंगा क्योंकि मैं कल ही अपना विचार प्रगट करूंगा।

परन्तु विचार यह कि मुनिवरों मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव की चर्चा कर रहा था परन्तु ! जैसा गुरुदेव आपका यह बालक बाल्यकाल में था इसी प्रकार आज का जो यज्ञमान है वह भी इतना ही उत्कृष्ट हैं जैसा किसी काल में था मैं कैसा था मानो मैं भी ऐसा ही था मैं इन वाक्यों को प्रकट करने नही आया हूँ मैं तो अपने जीवन चरित्र की आभा को प्रायः प्रकट करने नही आया हूँ मैं तो अपने जीवन चरित्र की आभा को प्रायः प्रगट करता रहता हूँ मैं यह वाक्य प्रगट करने आया हूँ कि जब गुरुओं की अनुपम

कृपा हो जाती हैं महापुरूषों की दया होती हैं मानो दृश्य ऊँचे तो बनते है मानो स्वर्ण बन जाते हैं हे यज्ञमान मेरी दृष्टि में तू स्वर्ण हैं कैसा स्वर्ण हैं मानो तेरा हृदय पवित्र ! हैं आज तू अपने हृदय को पुनः से पवित्र बना मैं तुम्हें अपने जीवन से मापना नही चाहता हूँ न मैं मापने आया हूँ क्योंकि मेरा जीवन कोई मानो एक दूसरे के जीवन को नही माप सकता। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे बहुत पुरातन काल में वाक्य प्रगट करते किये। परन्तु आज मैं इस प्रकार की वार्त्ता प्रगट कर रहा था राष्ट्रवाद की चर्चाएं प्रगट कर रहा था कि राजा के राष्ट्र आज का कैसा हो राम राज्य में मेरा राम कैसा था मेरा राम ऐसा था कि अयोध्या को त्याग करके जब वन प्राप्त होने लगा वन की प्रतिभा आने लगी तो माता कैकयी आज्ञा दे रही हैं कि राम तुम बन चले जाओ वे बन चले जा रहे हैं मग्न हो करे के अहा अपनी संस्कृति का प्रसार करने के लिए मानो आततायियों को नष्ट करने के लिए परन्तु आज का समाज कितना दूर है उस राम के जीवन से आज अपनी संस्कृति का ही राष्ट्र निर्णय नही कर पाता कि मेरी संस्कृति क्या होनी चाहिए मेरा राष्ट्र कैसा होना चाहिए मेरे राष्ट्र में छात्र कैसा होना चाहिए छात्रों का क्या धर्म होना चाहिए ऐसे राजा के राष्ट्र में प्रायः क्रान्तियां होती है जहाँ गुरु और शिष्य दोनों का समन्वय नही होता दोनो में चरित्र नही होता दोनो में आदर नही होता तो उस राजा के राष्ट्र में जीवन की आभा नष्ट हो जाती हैं।

विचार विनिमय यह है कि हे यज्ञमानतू वास्तव में इतना ऊँचा बन ! तेरी जो उड़ान हैं वह यज्ञशाला से ले करे बृहस्पति और ध्रुव मण्डल तक होनी चाहिए यह भी कोई उड़ान हैं वह कोई उड़ान नही होती मानो संसार में काम वासना की कोई उड़ान कही होती है अरे, उड़नी है क्रान्ति करनी हैं तो हृदय में जो वह क्रान्ति करो जिससे ध्रुव मण्डल की यात्रा करने वाले बनो महात्मा ध्रुव ने अपनी सौतेली माता के कथनानुसार जब यह सुना कि हे अभागे ध्रुव आज तू यदि राजा की गोद में आने के लिए तत्पर होता तो ! मेरी गोद से तेरा जन्म होता तो महात्मा ध्रुव ने अपनी माता से आज्ञा पाई हे मां मैं क्या करूं माता ने कण्ठ से लगा कर के यह कहा हे बालक तू ओ३म् का जाप कर महात्मा ध्रुव नारद मुनि की विज्ञानशाला में परणित प्रविष्ट हो गये। परिणाम यह हुआ

कि विज्ञानशाला में वर्ष की अवस्था में नारदमुनि की विज्ञानशाला में विराजमान 16 होकर के उन्होंने ध्रुव यान का निर्माण किया था ध्रुव मण्डल कितना विशाल है ध्रुव मण्डल में मुनिवरों नाना बृहस्पति समा जाते हैं उस ध्रुव मण्डल में लगभग एक ! लाख दस हजार सूर्य ही सूर्य समाहित हो जाते हैं ऐसा जो मण्डल है मानो ऐसी तू तेरा पुत्र सौभाग्यशाली है मानो तेरे गर्भ !क्रान्ति होती हैं माता के पुत्र की हे माता से उत्‍्पन्न होने वाला बालक इतनी उड़ान होने वाला बालक इतनी उड़ान होनी चाहिए यह कोई उड़ान नही होती हैं कि हम आज केवल आहार और नीच व्यवहारों से अपने जीवन को नष्ट करते चले जाएं यह कोई क्रान्ति नही होती यह तो मानव को अपने जीवन में आवागमन के केन्द्र को स्थापित करना है दैत्य बनना है आज जो सुरापान करने वाले प्राणी होते हैं उनको दैत्य प्रकृति कहा जाता हैं वह उन अन्धकार योनियों में प्राप्त होते हैं जहाँ उन्हे प्रकाश का एक अंकुर भी प्राप्त नही होता विचार यह कि आज मैं इन वाक्यों को इसीलिए प्रगट कर रहा हूँ कि आज के जो राजा है आज का जो राष्ट्रवाद है वह यह घोषणा कर रहा है वह राष्ट्र को सुचरित्र नही बनाता। वह इस राष्ट्र को मानो दैत्य प्रकृति वाला बना रहा है मूल कारण क्या है कि आहार और व्यवहार की जो दूषित बना दिया गया हैं।

आज मुनिवरोंयह राष्ट्र ऊँचा होना चाहिए मुझे स्मरण आता रहता ह !ै महाराज रघु के वर्तेन्तु का शिष्य कौत्स ब्रह्मचारी मानो उनके समक्ष जब वह चौदह करोड़ मुद्रा अपनाने के लिए गए तो उस समय महाराज रघु ने कहा कि मैंने तो सर्वत्र कर दिया है भगवन मेरे द्वारा जो मिट्टी के पात्रों में ही जल है उस समय कहा कि राजन मेरी ! पूर्ति नही होगी मुझे करोड़ स्वर्ण मुद्राएं चाहिएं उन्होंने विचारा कि ब्रह्मचारी संतुष्ट 14 करना बहुत अनिवार्य है उन्होंने रात्रि समय कुबेर के भण्डार को विजय करने के लिए अपने महारथियों को आज्ञा दी महाराज कुबेर करी यह प्रतीत हो गया कि राजा रघु तुम से संग्राम करने आ रहा है अरे, वह राष्ट्र का चरित्र था बेटा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ! यह उच्चारण करेंगें कि यह क्या उच्चारण कर रहा हैं मेरा पुत्र परन्तु देखो, हे भगवपन अभः गंतप्रवे असित रूद्रः हे भगवन वह समय कितना प्रिय मुझे प्रतीत होता हैं जब !

महाराजा कुबेर को स्वप्न में यह दृष्टिपात हुआ कि राजा रघु आ रहा तो यह करोड़ो मुद्रा जे करके उनके समीप आ गए और कहा कि महाराज संग्राम क्यों करते हो ! हे गुरुदेव वह समय कितना उज्वल था आप ने तो दृष्टिपात !ले लों मुद्राएं अहा भगवन किया है उस समय को परन्तु आज का वह समय जिसे धर्म कहते हैं आज का राष्ट्र कहता है मैं धर्म निरपेक्ष हूँ जिस राजा के राष्ट्र का कोई धर्म नही है क्या वह भी कोई राष्ट्र होता हैं वह भी कोई राजा होता हैं वह कोई राजा नही होता वह विचार यह रहा कि हम कौन से धर्म को अपनाएं अरे, धर्म क्या है। धर्म तो वह वस्तु हैं जिसको प्रत्येक सम्प्रदाय एक ही रूप में स्वीकार करता हैं उस धर्म को अपनाना चाहिए नेत्रों का धर्म है दृष्टिपात करना, घ्राण का धर्म हैं सुगन्धि को पान करना श्रोत्रों का धर्म है शब्दों को ग्रहण करना इसी प्रकार जिस कार्य से जिस आहार व्यवहार से से इन्द्रियां पवित्र होती हों उसी कर्म का नाम धर्म कहलाया गया हैं उसको राष्ट्र को अपनाना चाहिए परन्तु यदि नही अपनाएगा तो यह राष्ट्र कैसे ऊँचा बनेगा मानो राष्ट्र कहना हमारे जैसों के लिए व्यर्थ हो जाएगा। आज हम राष्ट्रीय घोषणा नही करने आए हैं।

विचार केवल यह देने के लिए आए हैं कि आज हम अपने जीवन को ऊँचा बनाना चाहते हैं तो समाज में याग होने चाहिए आज यह दूषित वातावरण है यह समय आ रहा है कि राष्ट्र के वैज्ञानिक यह विचारने लगा है कि हम उन पदार्थों को जाने जिनसे वायुमण्डल शोधित हो जाएं मैंने बहुत पुरातन काल मे कहा है कि एक चन्द्रमा का वैज्ञानिक है उस चन्द्रमा के वैज्ञानिक ने यह निर्णय लिया समुद्रों से ऐसे खनिज को जाना है जिसे एक दिवस पान करने चार दिवस तक उसे क्षुधा प्राप्त नही होती क्षुधा उसे बाध्य नही करती परिणाम यह कि आज हम उस विज्ञान को अवश्य जानने का प्रयास करें आज मैं अधिक चर्चा करने नही आया हूँ हे पूज्यपाद आज मैं यह उच्चारण करने आया हूँ हे पूज्यपाद गुरुदेव आज मैं यह उच्चारण करने आया हूँ कि वह भी ! यज्ञमान थे जो एक वर्ष तक ब्रह्मचारी रह करके और पृथ्वी पर आसन लगा करके जब यज्ञमान बनते तो राष्ट्र ऊँचा बनता था वह शुद्ध विचार कितना महानथा मैं कहा करता हूँ कि हे यज्ञमान तू सह पत्नी ऊँचा बन और तेरी भाव कैसे हों मानो हमारे !

कामना तो उसी काल में पवित्र होगी ऐसी भावना हो कि जिस समय संस्कार होता हैं जिस समय पति और पत्नी को दो ही शब्दों को उपदेश दिया जाता है और वह उपदेश यह होता हैं कि पुत्री कि यह जो तेरे से प्रबल है वह पिता है और तेरे बराबर का जो अस्वात है विधाता हैं और जो सूक्ष्म है वह पुत्र के तुल्य है हे यज्ञमान हे पति ! होने वाले तेरे लिए भी यही नियुक्ति किया जाता हैं कि इसको त्याग करके इसकी आयु की तेरी भग्नियां हैं और उनसे ऊँची आयु की माता हैं और उनसे निम्न सर्वत्र पुत्रियां कहलाई जाती हैं यह उपदेश दिया जाता है। यह चरित्र का उपदेश मुनिवरों ! देखो, जिस समय पति पत्नी का संस्कार होते है कैसा पवित्र उद्देश्य मानव का यही होता हैं कि हमारा गृह स्वर्ग बने हमारा जीवन स्वर्गमय हो चरित्र के उद्धार की कामना की जाती हैं।

पूर्व काल मे मुझे भी बहुत सा उपदेश दिया गया था मैं भी इन वाक्यों को स्वीकार नही करता था परन्तु जब गुरुओं की कृपा हई इन्होंने ज्ञान का उपदेश दिया ज्ञान का पौधा मेरे अन्तःकरण में लगाया तो मेरा जीवन परिवर्तन हो गया कैसा परिवर्तन हुआ कि मैंने लगभग पचास वर्ष की आयु तक इसी प्रकार धृष्टता की परिणाम यह कि मैं इब उन वाक्यों में जाना नही चाहता विचार यह कि गुरु जी की अनुपम कृपा हुई तो मैं जीन मुक्त हो बन गया इसी प्रकार हे यज्ञमान यदि तू संसार में इन्द्रियों पर ! अधिपथ्य करके प्रत्येक मानव जब ऋषि मुनियों के उपदेशों पर अपने जीवन को व्यतीत करने लगता हे तो मुनिवरें उसका जीवन महान बन जाता हैं जैसा तुम मुझे दृष्टिपात करते हों।

आज मैं अधिक विवेचन नही देने आया हूँ विचार यह देने आया हूँ कि यज्ञमान ऊँचा बनना है संसार में यज्ञमान की उड़ान इस पृथ्वी से लेकर सूर्य मण्डल तक होनी चाहिए अरे, क्रान्ति तो उसे कहते हैं भोग विलासों की भी कोई क्रान्ति होती है संसार में अरे, क्रान्ति करनी है तो महान क्रान्ति करे तू चन्द्रमा की यात्रा करने वाला बन तू मंगल की यात्रा करने वाला बन हे मानवहे समाज आज तुझे कर्म तो करना हे है अरे !, यह भी कोई कर्म हैं भोग विलास वाला यदि कर्म करना है तो ऊँचा कार्य कर जिसे से तेरी

उड़ान ऊध्व्र बनती चली जाए हे राष्ट्र तेरा यह कोई राष्ट्रवाद का उद्देश्य नही आज तो मानो तुझे योजना बनानी है स्वतः चरित्र को लाने का प्रयास करने की जिससे राष्ट्र और समाज को ऊँचे बनाते हुए इस संसार सागर से पार होते चले जाएं मैं आज अधिक विवेचना देने नही आया हूँ कल मुझे समय मिलेगा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव समय देंगें तो प्रसन्न हो कर के कुछ वाक्य प्रगट करूंगा मैं यज्ञमान को कल आर्शीवाद भी देने नही आऊंगा आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाने जा रहा हूँ आज का समाज ऊँचा बनना चाहिए क्योंकि कर्म तो मानव को करना है इसीलिए तुच्छ ही कर्म क्यों करते हो उच्च की कर्म क्यों ने करो जिससे यह राष्ट्र समाज ऊँचा बने भविष्य हमें यह उच्चारण कर रहा है कि आगे वह समय आ रहा है यदि यह अशुद्ध वातावरण चलता रहे यज्ञ कर्म नही हुअए यामानी नही हुए तो मानव को श्वास लेना दुष्कर हो जाएगा क्योंकि आज का वैज्ञानिक प्रगट करने नही आया हूँ तो अब आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पाठ होगा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कोई टिप्पणी करे तो कर सकते हैं।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य धन्य हो ..., मेरे प्यारे आज मेरे !प्यारे महानन्द जी ने कुछ ! सूक्ष्म उपदेश दिया मैं तो इनके उपदेशों को ज्ञान नही पाया इनके वाक्य उच्चारण करने का मन्तव्य क्या हैं परन्तु जो इन्होंने वाक्य प्रगट किया राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में अथवा चरित्र के सम्बन्ध मे वह धर्म शास्त्र के अनूकुल था यज्ञमान के सम्बन्ध में अथवा यज्ञमानों के सम्बन्ध में परम्रा हमारी रही है कि उनके चरित्र उनकी मानवता को ऊँचा बनाना हमारा कर्तव्य है इनके वाक्य तो बड़े प्रिय थे। परन्तु कटु भी थे। अपने जीवन के वाक्य उच्चारण करने का इन्हें कुछ आश्चर्य नही। बाल्यकाल में कोई धृष्टता हो भी जाती है मानव धृष्टता करता भी रतहा हैं इन सब की पुनरूक्ति करना हमारा कर्तव्य नही विचार यह कि संसार को भविष्य में ऊँचा बनना है जैसा महानन्द जी ने कहा है कि भविष्य में ऊँचा बनना है क्योंकि संसार में नाना प्रकार के दूषित अशुद्ध कर्म होते रहते हैं संसार में प्रत्येक मानव जो जन्म लेता है उन जन्मों में कोई न कोई त्रुटियां होती हैं परन्तु उन त्रुटियों को त्याग करके और महता को अपना करके मानव को अपने जीवन को

आग्नेय बनाना चाहिए यही मानव का वास्तविक कर्म हैं।

रहा यह कि राष्ट्रवाद की चर्चा राष्ट्रवाद में आता ही यह है कि राष्ट्र तो होता है चरित्र के लिए धर्म और मानवता की रक्षा के लिए परन्तु इससे आगे मुझे भी कोई वाक्य प्रगट करना नही है आज महानन्द जी ने जो वाक्य उच्चारण किय वह वास्तव में शिक्षाप्रद है महान है परन्तु रहा यह कि विज्ञान की उड़ान तो परम्परा से हमारे मानवीय मस्तिष्कों में रही हैं विान तो बहुत है वास्तव में मानव कोई परिचय भी नही दे सकता क्योंकि मानव का परिचय है क्या इसके ऊपर बहुत गम्भीरता से विचारना है मेरे प्यारे ! महानन्द ही कल भी कुछ अपना सूक्ष्म अपना वाक्य प्रगट करेंगें आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन पाठन होगा। निवास स्थान चौनारायण सिंह राजबीर सिंह 0, रोहटा, समय रात्रि 8 बजे। 00

१४ 06 03 1973 पुष्प 06 वासना रूपी नमुचि

जीते रहोदेखो !, मुनिवरों ! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों कापठन पाठन किया हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण हमारे यहाँ नित्यप्रति होता रहता हैं

वेद वाणी में संसार का ज्ञान और विज्ञान निहित रहता हैं संसार का प्रत्येक मानव प्रत्येक मेरा प्यारा ऋषि मण्डल य चाहता है कि मेरी उड़ान ऊर्ध्वा होनी चाहिए कोई मानव यह नही चाहता मेरी उड़ान ऊर्ध्वा न हो उसकी मनोनीत भावना यह होती है कि मेरी इतनी ऊँची उड़ान होनी चाहिए कि मैं सर्वत्र ब्रह्माण्ड को जानने वाला बनूं वह कल्पना भी करता रहता हैं हम भी यह कहा करते है कि वास्तव में मानव की कल्पना तो ऊर्ध्वा होनी चाहिए क्योंकि जितनी कल्पना ऊर्ध्वा होगी, जितना ऊर्ध्वा् विचार होगा उतना ही मानव का अन्तरात्मा तपता चला जाएगा तपना ही तो जीवन कहलाया गया हैं

वास्तव में विचार तो ऐसा हे कि मानव उड़ान के लिए सदैव उद्गमता विचारता रहे

विचारों में महनता का दिग्दर्श्न होता रहें।

यह जत मानव के समीप नृत्य करता रहता हैं आज का मानव वेद का ऋषि ऊँची वार्त्ता प्रकट कर रहा था वेदवाणी में जो परमात्मा का अनुवम ज्ञान है वह हमें कौन से मार्ग को पुकार रहा है यह हमें विचारना हैं हमें अपनी सार्वभौम महता को अपना कर चलना हे जिसको अपनाने के पश्चात मानव का जीवन अनुसन्धान मय बनता हैं मानव का जीवन आध्यात्मिकवाद में परणित हो जाता हैं

मेरे प्यारे महानन्द जी बहुत पुरातन काल की वार्त्ता प्रकट कर रहे हैं कि महाराज ! अश्वपति ने अपने यज्ञ में महराजा स्वाती से यह निवेदन किया कि महाराज यह मैं ! जानना चाहता हूँ कि जगत वास्तव में है क्या स्वाती ऋषि ने कहा कि मेरे विचार मे तो आते है कि यह जो जगत हैं यह एक प्रकार की अनुसन्धानशाला हैं जिसमें प्रत्येक मानव अनुसन्धान करने के लिए आया है क्योंकि अनुसन्धान मानव का स्वभाव हैं मानव का लखण है अनुसन्धान करना ही चाहिए।

मेरे प्यारे बृहसपति और महाराजा !हमने यह श्रवण किया है कि महाराज !ऋषिवर ! इन्द्र दोनों का विचार विनिमय हो रहा था एक समय देवताओं की यह पुकर थी कि यह जो दैत्यराज नमुचि हैं उसका अभिमान प्रबल हो गया है और देवताओं !महाराज ने यह घोषणा की है कि इस दैत्य पर आक्रमण करना बड़ा कठिन है ओर आक्रमण तो यह दैत्यराज ही विजयी होगा अब इसका क्या बनेगा।

सब देवताओं की पुकार महाराज बृहस्पति के द्वार पर पंहुची तो आचार्य बृहस्पति जी ने इन्द्र ने कहा कि देवताओं की इस घोषणा पर विचार करना है ओर उन पर दया करनी है दैत्यराज को पराजित होना ही चाहिए। यदि देवताओं की विजय न हुई तो ओर दैत्यराज का आक्रमण होता ही रहा तो संसार में यह जो धर्म ध्वनि है पवित्र ध्वनि है इसका विनाश हो जाएगा

हे मुनिवरों महाराजा इन्द्र ने जल का मन्थन किया क्योंकि दैत्यराज शस्त्रों से विजित ! नही हो सकता था तो कहा जाता है कि जल का मन्थन करने के पश्चात जो उसमसें से फेन उत्पन्न हुआ उससे दैत्यराज के ऊपर आक्रमण किय उसके मस्तक पर प्रहार

किया उसके कण्ठ के ऊपर वाले भाग को सन्धिकाल में दूरी कर दिया मैं बहुत पुरातन काल में इसके ऊपर अनुसन्धान करता रहा हूँ

प्रत्येक मानव को विचार करना अनिवार्य है वेदों की प्रतिभा में जाना है मेरे प्यारे ! इन्द्र ने जल का मन्थन किया सवाहा मृगी अस्क्रातं जिसे कहा जाता है नाना !मुनिवरों प्रकार के शबदों में यह वार्त्ता प्रचलित मानी गई हैं जो विचार क्या जल का मन्थन क्या संसार मेंकौन इन्द्र है कौन नमुचि दैत्यराज है जल का मन्थन करने से जो फेन उत्पन्न हुआ उससे मस्तक को दूरी किया गया यह वास्तव में है क्या इसके ऊपर विचारा जाएं केवल यही अनुसन्धन तो नही और भी नाना प्रकार की वार्त्ताओं का अनुसन्धान होता रहता है हमने इसके ऊपर मनन किया हैं।

पुरातन काल में महर्षि दधीचि, महर्षि विभाण्डक, महर्षि दालभ्य, इत्यादि ऋषि मुनियों के समाज में इस प्रकार के विचार विनिमय होते रहे हैं विचार विनिमय करने से ही मानव के जीवन में कोई न कोई वस्तु प्राप्त होती हैं परन्तु विचार यह है कि वह क्या वस्तु है जिससे इन्द्र ने आचार्य बृहस्पति जी महाराज के कथानानुसर दैत्यराज को परास्त कर दिया उसको नष्ट कर दिया इसका अभिप्रायः यह है कि मानव के द्वारा वे जो नाना प्रकार की वासनाओं का जन्म होता रहता हैं उन पर विजय पाई।

वासना रूपी दैत्यराज संसार के नाना प्रकार के वाद विनोद से तो परसवत हो ही नही सकता मानव वेद का अध्ययन करता तो हैं अक्षरो को बोधी हे वह वेद के पठन पाठन मात्र में संलग्न रहता हैं इससे भी विजय नही होगी तो विजय कैसे होती हैं

जो मानव अपने जीवन को अनुशासनमय बना ले। मेरे प्यारे तुम्हें यह प्रतीत !ऋषिवर ! है कि प्रत्येक इन्द्रिय का जो रस हे इन्द्र ने उसीरस का मन्थन किय रस क्या होता हैं प्रत्येक इन्द्रिय को जो विषय है उसको रस कहा जाता हैं उसी को आपो कहा जाता हैं जब इन्द्र ने मन्थन किया पांच कर्मेन्द्रिय और पांच ज्ञानेन्द्रिय के विषयों का

यह जो नाना प्रकार की प्रकृति है यह नाना प्रकार के रूपों में परणित होती रहती है जो दृष्टिपात हो रहा हैं यही उसका बाहरी जगत बना हुआ हैं उसको आन्तरिक बनाना है और मन्थन करके दस प्राणों मे इसकी संलग्नता करनी हैं इन्द्रियें के रस और प्राणों

को एक सूत्र में मिलाना हैं बेटा इस प्रकार एक सूत्रता को ही हमारे यहाँ आपो फेन ! कहा जाता हैं आपो का मन्थन किया हुआ फेन देत्यराज को पराजित कर देता हैं यह भी एक प्रकार का याग ही हैं।

जब तक हम इन्द्रिय के विषय को नही जानेंगे उन पर हमारा अनुसन्धान नही होगा तो हमारा जीवन कभी ऊर्ध्वा गति को प्राप्त नही हो सकेगा मेरे प्यारे आज का !ऋषिवरों ! हमारा विर क्या है कि हम उस स्वरूप को जानने वाले बनें, जिस स्वरूप को जान कर व्यक्ति के लिए एक ही चेतना दृष्टिपात आती हैं उसमें द्वितीय भाव नही होता उसीअवस्था को प्राप्त होने से दैत्यराज पर विजय होती हैं अन्यथा वह दैत्यराज परास्त हो ही नही सकता इसीलिए बेटा हमें इन्द्रियों के अनुसन्धान में लग जाना हैं

हमारे नेत्रों मे रजोगुणी प्रवृत्ति में कितनी तरंगें उत्पन्न होती हैं और तमोगुणी, सतोगुणी में कितनी कितनी तरंगों का जन्म होता हैंइसी पर अनुसन्धान करना है तीनों प्रकार की तरंगें नेत्रों में आती हैं प्राण में आती हैं श्रोत्रों में आती हैं रसना में आती हैं त्वचा में आती हैं प्रत्येक इन्द्रियों के विषयों को प्राणों के द्वारा मन्थन करने से जो विशेष शक्ति आती हैं वही तो आपो फेन हैं मेरे प्यारे मैं आज अधिक विवेचना प्रगट !मुनिवरों ! करने नही करूंगा विचार केवल यह जो दैत्यराज है हमें उसे नष्ट करना है और वह निरन्तरताके अभ्यास से हो सकता हैं मेरी पुत्री जीवन में सदैव महता का पठन पाठन करती रहती हैं परन्तु जब उसकी प्रतिभा समाप्त होती हैं तो मुनिवरों उसके जीवन ! के करोड़ो जन्मों के जो संस्कार हैंउसके समीप आ कर दैत्य बन जाते हैं उस दैत्य को नष्ट करना हैं उसका साधन यज्ञ हैं यज्ञ की मानव को देवता के तुल्य बना देता हैं वायु मण्डल में से जो तरंगें मेरे समीप आ रही है वह मुझे बाध्य करती हैं कि मैं उनके ऊपर विचार करूं विचार करना अनिवार्य हो जाता है विचर यह है कि हम याज्ञिक बनें या ही ऐसा कर्म है जो मानव को ऊँचे मार्ग पा ले जाता है इसी या को जो निष्काम भाव से करता हैं वही तो मोक्ष का अधिकारी बन जाता हैं बेटा अनुसन्धान ही तो ! यज्ञ हैं तत्त्वों का अनुसन्धान करना है आयुर्वेद में अग्नि को पिचासी प्रकार का माना गया हैं परन्तु वेद का ऋषि सहस्त्रों प्रकार की अग्नि को स्वीकार करता हैं यह जो

अग्नि की धाराए हैं उनके परमाणुओं का वायु में मिलान होता हैं और वायु में रमण करते हुए अन्तरिक्ष में जाता हैं और अन्तरिक्ष सह वह द्यौ लोक को प्राप्त हो जाता हैं हमारे ऋषि मुनियों ने हा है कि मानव तू शब्द की रक्षा कर क्योंकि शब्द ही वायुमण्डल को बनाता है। वायुमण्डल को बनाना भी तो याग हैं कल मैं श्वेत ऋषि की चर्चा कर रहा था श्वेत मुनि महाराज ने एक समय महाराजा अश्वपति के यहाँ एक याग कराया उसके साकल्य को एकत्रित किया उसमें एक श्रीति साकल्य को मिलाया तो याग ऐसा हुआ कि उसमें मानव की वाणी भी मुधर बन गई प्रत्येक इन्द्रिय का विषय मुधर बन गया तो राजा ने कहा कि महाराज तुम्हें !यह कैसे हुआ उन्होंने कहा कि हे महाराज ! यह प्रतीत हैं कि इसका नाम याग हैं ओर याग का अभिप्रायः यागे वृचम यागा ब्रह्मा जितना तपा हुआ पुरूष याग करता कराता हैं उतनी ही याग की तरंगें श्रेष्ठ होती है। उतना ह्ी देवता उसे ग्रहण करते हैं ओर उसके बदले में मधुरता प्रदान कर देते हैं इसीलिए तो पुरातन काल में राजा तपस्वियां के द्वारा वनों में जाते थे ओर याग करते थे वेद के ऊपर अनुसन्धान भी करते थे शेष अनुपलब्ध लाक्षागृह बरनावा ...

१५ 08 03 1973 पुष्प 19 नमुचि राक्षस

देखो, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गाते चले जा रहे थे पवित्र वेदवाणी में परमपिता परमात्मा का ज्ञान विज्ञान निहित रहता हैं संसार में जो दृष्टिपात आ रहा हैं वह उस परमपिता परमात्मा की एक आभा हैं जो ब्रह्माण्ड प्रभु ने रचा हैं वह बड़ा विचित्र है यह अनन्त सृष्टि वाला जो ब्रह्माण्ड है अथवा नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों वाला भी यह ऋत्मय जगत दृष्टिपात आ रहा है वह वास्तव में विचित्र हैं।

एक समय बेटा महर्षि भारद्वाज मुनि के आश्रम में महर्षि दालभ्य जी पंहुचे महर्षि ! दालभ्य ने कहा महाराज मैं प्रभु के ऋत को जानना चाहता हूँ उन्होंने यह सुनकर ! वहाँ से प्रस्थान किया और महर्षि भृगु के आश्रम में परणित हुए महर्षि भृगु जी उस सयम ऋचा गान गा रहे थें यहाँ कोई मानव श्रोता हनी था मृगराज श्रोता बने हुए थे आज मु !उस सयम कितना विचित्र था बेटाम्के स्मरण आ रहा है जहाँ मृगराज मानव

की वाणी को श्रवण कर रहे थे वहां उनका हृदय उनका अन्तरातमा मन, कर्म, वचन से एक रस हो रहा था तो देखो, बेटा यही अहिंसा की सिद्धि हैं। !

प्रभु के ऋत को अुनसन्धान करना हैं ब्रह्मचर्य धारण करना है धर्म दसों लक्षणों को जीवन में ओत प्रोत करना है जब तक मानव इन्द्रियों के रस का मन्थन नही कर लेता तब तक कोई अनुसन्धान नही हो सकता ओर न दैत्यराज नमुचि पर विजयी हो सकता है यह मन कामना का केन्द बना हुआ हैं यह प्रकृति का सूक्ष्मतम तत्त्व हैं इस मन की दसों प्राणों में सन्धि करनाहै प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान ओर नाग, देवदत, धनंजय, कूर्म ओर कृकल यह दसों एक ही हैं

जब तक मानव प्रकृति पर इन प्राणों के द्वारा शासन नही कर लेता तक तब तो वासना रूपी दैत्य पराजित नही कर सकते प्रकृति के कण कण में मन और प्राण दोनों कार्य कर रहे है सृष्टि की रचना प्राण ही की रचना हैं मन विभातन करता हैं इस विभाजन का कार्य नाग प्राण के द्वारा होता है भारद्वाज मुनि मराज ने स्वातिकेतुम नाम का यन्त्र बनाया था उस यनत्र की यह विशेषता थी कि जगत में ऋत ओर सत्य में रमण करने वाली का उस यन्त्र में दिग्दर्शन हो जाता ळा

मन ओर प्राण को एक सूत्र में लाना है यह सूत्र क्या है यह सूत्र है ओ 3म् है ओ३म् के सूत्र में पिरोकर मानव दिव्य शक्ति प्राप्त करता हैं ओ३म् के सू में पिरोने के लिए ज्ञान ओर विवेक दोनो ही अनिवार्य हैं महर्षि शाण्डिल्य, महर्षि प्रवाहण, महर्षि दधीचि, महर्षि श्वेतकेतु, महर्षि दालभ्य और महर्षि भारद्वाज ने यही कहा थ्क मनः वाचः मनः वंचतम प्राणः मृति ब्रह्म व्यापः वेद का ऋषि कहता है कि वेद का प्राण ओ३म् है ओर प्रकाश का प्राण भी ओ३म् हैं

मुझे स्मरण है बेटा जब मैं ब्रह्मचर्य आश्रम में अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा संहिताओं ! का अध्ययन करताथा उनके चरणों में ओत प्रोत था तब मेरा अन्तरात्मा तपा हुआ था उस समय प्रकृति के कण कण में प्रभु को दृष्टिपात करता था तो पाप कर्म की भावना कहाँ मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे ब्रह्मरन्ध्र का ज्ञान कराया था ब्रह्मरन्ध्र के ज्ञान के द्वारा योगी लाक लोकान्तरों का दिग्दर्शन कर लेता हैं अस्वां ब्रह्मे कस्मात ब्रह्मे अस्ति कस्मात

मानव का जो ब्रह्मरन्ध्र है उसमें दिव्य ज्योति है इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नाम की नाड़ियों में से एक एक की सहस्रों धारयें बन जाती है। उनका सम्बन्ध बाहरी जगत के नाना ब्रह्माण्ड से हो जाता हैं।

मानव के सत्रह प्रकार के मस्तिष्क कहलायें जाते हैं जैसे कि महि मस्तिष्क, लघु मस्तिष्क, त्रेता मस्तिष्क, सवाति, वृत्ति, केतु अप्राद मस्तिष्क्, मैं मस्तिष्कों की गणना करने तो नही आया हूँ केवल विचार देने आया हूँ कि सूक्ष्म शरीर सत्रह तत्त्वों का बना है उनमें एक एक में लाखों धारायें जन्म लेती हैं वास्तव में प्रत्येक धारा में पृथक पृथक मस्तिष्क बना करते हैं मानव का जो लघु मस्तिष्क है उन धाराओं को स्वीकार करता है जब मानव सूर्य, बृहस्पति, अरूणी, श्वेति, पुष्प् नाना प्रकार की लोक लोकान्तरों का वर्णन करने लगता हैं ऋतम्ीरा नाम की धारा में मसितष्कों को पिरो देता है और ऊँची उड़ान उड़ने लगता हैं आओ मेरे प्यारे हमें वैदिकता का प्रसार करना है तो !ऋषिवर ! हमारे समीप अन्धकार नही आना अन्धकार का आ जानामानव की मृत्यु हैं एक समय महर्षि याज्ञवल्क्य से पूछा कि ब्राह्मण की !बेटा मृत्यु क्य है महर्षि जी ने उत्तर दिया अशुद्ध भोजन ऋषियों ने पूछा कि महाराज अशुद्ध भोजन क्या है महर्षि ने कहा ! रजोगुण, तमोगुण, से सना हुआ भोजन अशुद्ध है ऋषियों ने पूछा वह क्या हैं महर्षि ने कहा राष्ट्र के रजोगुण तमोगुणों से मिश्रित भोजन, अशुद्ध भोजन से बेटामन !, कर्म, वचन ओर हृदय एक रस नही हो पाते तो इन्द्रियों का ओर प्राणों का ओ३म् के द्वारा मन्थन नही हो सकता ओर जब मन्थन नही होगा तो फेन नही बन सकता और जब फेन नही बनता तो वासना रूपी नमुचि भी नही मरता बेटा यह हे आज का वाक् ! समय मिलेगा तो शेष चर्चायें कल प्रगट करेंगें।

१६ 28 03 1973 पुष्प 20 साधक

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व के समान जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में उस परम पिता

परमात्मा की आभाएं निहित रहती हैं। क्योंकि जितना भी यह संसार हमें दृष्टिपात होता है अथवा हो रहा है सर्वत्र इस चेतना का मूल कारण एकागी ब्रह्म माना गया है। हम उस परब्रह्म परमात्मा की आराधना करने में सदैव तत्पर रहें।

मानव का इस संसार में आने का यदि कोई उद्देश्य है तो वह एक ही उद्देश्य है कि जिस प्रतिभा में हम ध्रुव गति बन गए, पुनः से उस प्रतिभा को लाने के लिए हमें ऊर्ध्व बनना है। विचार विनियम क्या? कि हम अपने को ऊर्ध्व गति वाला चाहते हैं। कोई मानव अपने को निम्न गति नहीं चहता। यही चाहता रहता है कि मेरी गति ऊर्ध्व होनी चाहिए। मैं लोक लोकान्तरों का यात्री बनूं। मेरी योग में विशाल गति होनी चाहिए।

यहाँ वेद का ऋषि कहता है, यौगिक ऋषि कहता है जो कि मानव साधना में परणित होना चाहता है। साधना का पथ दर्शन करना चाहता है। मानव सबसे प्रथम अहिंसा को अपनाता है। अहिंसा का अभिप्राय क्या? कि हम अहिंसा का अध्ययन करने वाले बनें। परन्तु अहिंसा का अध्ययन क्या है? बैठा हमें इसको विचारना है। अहिंसा का जो ! प्रादुर्भाव होता है, अहिंसा का जो प्रारम्भ होता है, वह मानव के हृदय से हुआ करता है। इसलिए यौगिक ऋषियों ने कहा है कि मानव को अपने हृदय को स्वच्छ, निर्मल और पवित्र बनाना है। परन्तु हृदय कैसे पवित्र हो जाता है। मन कैसे पवित्र होता है? मन उस काल में पवित्र होता है जब मन का शोधन किया जाए। मन के ऊपर अध्ययन किया जाए। और उसकी विभाजन क्रिया के ऊपर हमारा अधिपथ्य होना चाहिए।

अब हम मन की क्रियाओं के ऊपर अधिपथ्य करने के लिए चले हैं। बेटा । मन के ! ऊपर अधिपथ्य करना है तो सब से प्रथम अहिंसा को अपनाना है। और अहिंसा उसे कहा जाता है जो मानव के मन, कर्म, वचन में भी अशुद्धता न आए। जब मानव के मन कर्म वचन में स्वच्छता आ जाएगी। त्रिविध रूप में जब पवित्रता आ जाएगी हो हृदय बेटा स्वतः पवित्र हो जाता है। हृदय जब पवित्र होता है जब मन की आभा के ! ऊपर हमारा अध्ययन होता है। मन गत्ति और विभाजन करता है। संसार में जितना भी विभाजन तुम्ह्हें प्रतीत हो रहा है, चाहे वह मानव के मनुष्यत्व में हो। चाहे वह पृथ्वी के गर्भ में हो। चाहे वह लोक लोकान्तरों में भी क्यों न हो। वह जो विभाजन हमें

दृष्टिपात आता है वह केवल एक मन का ही आरोपण माना गया है। क्योंकि मन ही विभाजन करता है। एक मेरी प्यारी माता अपने कुटुम्ब का परिचय देती है, एक मानव अपने गृह का परिचय देता है। तो यह विभाजन क्रिया आई। मानो यह मेरी माता है। यह पुत्री है, यह पत्नी है, यह विधाता है। तो मानो वह जो विभाजन क्रिया आई वह केवल मन के ही कारण आती है।

गति करने वालों प्राणों मे जो शक्ति है, आज प्राण की शक्तियों का विभाजन होता रहता है। मैंने पुरातन काल में कई बार कहा है कि संसार को यदि जानना है तो मन की गति को हमें ऊर्ध्व बनाना होगा। और उसको स्थिर करना होगा कि मन की गति स्थिर हुए बिना मानव योग सिद्ध नहीं बन सकता। संसार में अनुसन्धान वेत्ताओं ने अनुसन्धान भी किया है। और होता रहा है। परम्परा से अनुसन्धान होता रहा है। अपने पूज्यपाद गुरुओं और ऐसा ही अनेक ऋषियों का तथा महर्षि प्रवाहण आदि का जीवन प्राप्त होता है। तो ऋषियों के उन वाक्यों से सिद्ध होता है बेटा कि उनका जीवन कितना महान् ! था? और वे कितने अनुसन्धान वेत्ता थे? वे प्रत्येक आभा पर अपना नियन्त्रण करते रहते थे।

मैंने बहुत पुरातन काल में कहा है कि आत्मा का जो भोजन है वह नेत्रों से प्राप्त होता है। जो घ्राण के द्वारा प्राप्त होता है। जो श्रोत के द्वारा प्राप्त होता है। जैसे हमारे घ्राण के द्वारा परमाणुवाद आता है, जब हमारा हृदय स्वच्छ होता है, मन पवित्र होता है तो इस वायुमण्डल में से सुन्दर परमाणु आता है, और वह परमाणु हृदय को ऊर्ध्व बनाने वाला होता है। मन्द सुगन्ध के द्वारा आता है। इसी प्रकार रूप की या वर्ण की प्रतिभा, आभा केवल नेत्रों के द्वार से आती है। और शब्दों की आभा श्रोत्रों के द्वारा आती है। तो हम श्रोत्रों और नेत्रों दोनों पर विचारें दोनों के ऊपर अपना संयम करना है। जिसमें रजोगुणी, तभी गुणी वासना के कारण मानव इस संसार में पतित हो जाता है। और मानव अपने ऊँचे स्वरूप को अपने में समाप्त कर देता है।

विचार विनिमय यह कि आज हम उस आभा को जानना चाहते हैं। जिस आभा के द्वारा हम योग सिद्ध होते है हमारा यौगिक क्षेत्र ऊँचा बनता है। मुनिवरों यह तो मैंने !

कुछ संक्षिप्त साधना की चर्चा प्रकट की कि अपनी इन्द्रियों के ऊपर हमें अध्ययन करना है। अब मन को स्वच्छ बनाना है। मन उस काल में पवित्र होगा, जब अन्न पवित्र होता है। मुझे स्मरण है बेटा मुझे लाखों वर्षों का साहित्य जब स्मरण आता ! है, तो विचार विनिमय यह लगता है कि उन ऋषियों का जीवन कैसा महान और पवित्र था। मुझे बेटामहर्षि शाण्डिल्य मुनि महाराज का जीवन स्मरण आता है। ! एक समय शाण्डिल्य मुनि के द्वारा महर्षि मुग्दल मुनि का गमन हुआ। और महर्षि मुग्दल जी ने यह कहा कि महाराज मैं यह जानना चाहता हूँ कि हम योग में प्रवीण होना चाहते ! हैं। योग की गति में हम योगेश्वर बनना चाहते हैं। उस समय महर्षि शाण्डिल्य मुनि ने कहा कि मैं इसकाअभ्यास कर रहा हूँ। परन्तु वह अभ्यास क्या? उनका निद्यासत्र चलता रहता था। निद्यासत्र उसे कहते हैं जो शारीरिक विज्ञान है। जो प्रत्येक इन्द्रियों की आभा का विज्ञान है। उस आभा का हमें साकल्य बनाना है। साकल्य किसे कहते हैं? बेटासामग्री को साकल्य कहा जाता है। स !ामग्री किसे कहते हैं? नाना प्रकार की औषधियां, नाना प्रकार का विषय जहाँ एकत्रित हो जाता है। और सामग्री की हमें आहुति देनी है, हुत करना है, तो कहाँ करेंगे? तो यहाँ ऋषि कहते हैं हृदयाणि गच्छम् ब्रह्मव्यापः योग भ्रवे अचि तो महर्षि शाडिल्य जी ने कहा हे मुग्दल !मैं आज उस साकल्य को मन्थन कर रहा हूँ। उनका फेन बनाना चाहता हूँ। जिस फेन के द्वारा मैं अपने शत्रु को विजय कर सकूं। तो बेटा उस समय शाण्डिल्य मुनि महाराज ने ऐसा ! कहा कि इन्द्रियों का साकल्य अथवा सामग्री एकत्रित करके उसे हमें हृदयरूपी जो यज्ञवेदी बनी हुई है। हृदयरूपी जो दम्य अहंकार को अग्नि प्रदीप्त हो रही है। हमें उस साकल्य की ज्ञान रूपी अग्नि प्रदीप्त हो रही है। हमें उस साकल्य की ज्ञान रूपी अग्नि में परणित कर देना है। और उसमें हमें स्वाहा कर देना है। तो विचार विनिमय यह कि उसमें जब हम स्वाहा कर देते हैं तो हमारा जीवन निर्मल और पवित्र बन जाता है। तो मुनिवरोंदेखो !, संसार में मानव के आने का जो उद्देश्य है वह वास्तव में पूर्ण हो जाता है। उस आभा में इस रमण करने लगते हैं।

तो मेरे प्यारे आज मैं उच्चारण कर रहा था कि अन्न पवित्र होना चाहिए। अन्न से आज !

जो योगी बनना चाहता है, यौगिक क्षेत्र में जाना चाहता है। उस अन्न को प्राप्त करना है जिस अन्न पर किसी का अधिकार नहीं होता। एक समय बेटा महर्षि भृगु मुनि ! महाराज जब तप करने लगे तो उस समय प्रवाहण ऋषि ने एक वाक्य कहा कि आप तप कर रहे हैं। तप कैसे होता है तप का मूल क्या !महाराजहै? उन्होंने कहा तप का मूल मन है और मन का मूल अन्न है। आज मुझे अन्न को प्राप्त करना है। तो वर्ष तक तप किया। और वह तप कैसा था 109? मन को शोधन करने वाला। वह वनस्पतियों का आहार करते थे। वह उन वनस्पतियों का पान करते थे। जिस पर किसी का अधिकार नहीं होता था। शैलखण्डा अस्वाति और शंख भूमि इन तीनों औषधियों का पान करते थे। जिससे मुनिवरोंउनके रक्त में जो दूषितपन नष्ट होकर विचारों में !, तरंगों में ओत प्रोत हो करके उनका योग सिद्ध आत्मा हो गया।

हम योगी किसे कहते हैं? योगी उसे कहा जाता है, जो मन और प्राण दोनों का विरोध करना जानता है। मानो दोनों को एक स्थली पर स्थिर कर देता है। क्योंकि यह जो ब्रह्माण्ड है यह प्राण और मन की गति से ही गति मान हो रहा है। इसमें वस्तु ही दो हैं। मानो एक विभाजन होने वाला और एक विभाजन करने वाला तो मन तो विभाजन करता है, और प्राण का विभाजन होता है, तो यह जो सर्व ब्रह्माण्ड है। चाहे वह पृथ्वी मण्डल हो, चाहे वह सूर्य हो, चाहे चन्द्रमा हो, कोई भी लोक लोकान्तर क्यों न हो। उनमें जो विभाजन वाद दृष्टिपात आता है वह मन और प्राण के कारण ही प्रतीत होता है। यह जो भिन्न भिन्न जगत प्रतीत हो रहा है। मन और प्राण जब एक स्थान पर स्थिर हो जाते हैं। एक स्थान पर एकत्र हो जाते हैं, उस समय मुनिवरोंयह जो हृदय है !, यह जो मानव की हृदय रूपी गुफा है। इसमें मुनिवरों सर्वत्र ब्रह्माण्ड का चित्रण होना ! प्रारम्भ हो जाता है। और वह योगी एक स्थली पर विराजमान हो करके मन और प्राण को स्थिर करने वाला प्राणी इस ब्रह्माण्ड को अपने में हो दृष्टिपात करता है।

साधना क्या है? मानो यह सब वस्तु कैसे पवित्र होती हैं? जैसा बेटा मैंने पुरातन ! काल में कहा है कि आज मानव यौगिक बनना चाहता है। योग का मार्ग ऐसा भयंकर भाग नहीं है। परन्तु वह मार्ग केवल परिवर्तन होना है। मानव का जीवन परिवर्तन करने

से ही योग को प्राप्ति होती है। आज हमें परिवर्तनशील बनना है। तो मन को स्थिर करने का प्रयास करो। जैसा महर्षि पतंजलि जो ने सबसे प्रथम अनुशासन के लिए कहा है।
मैंने बेटासबसे प्रथम शब्दों से अहिंसा की घोषणा की है। अहिं !सा के बाद सत् की घोषणा की है। सत् किसे कहते हैं। बेटा सत् को विचारना है। ऋषियों ने तो यह कहा ! है सत्य को उच्चारण करने वाले पुरुषों ने कहा है कि सत्य ही ब्रह्म है, सत्य ही जगत है। तो हमें सत्य को विचारना है। सत्य का कदापि भी अभाव नहीं होता। अहिंसा के पश्चात् सत्य आता है। सत्य क्यों आता है? क्योंकि अहिंसा सिद्ध होने पर सत्यं स्वतः हो आ जाता है। सत्य वह है जिसमें निस्वार्थता होनी चाहिए। वाक्य उच्चारण करता है परन्तु वह सत्य इस प्रकार का हो कि सत्य में सत्य में कोई रहस्य होना चाहिए। मानो वह सत्य कभी असत्यतता में परणित हो जाता है। जिस सत्य के उच्चारण करने से कोई लाभ न हो। मानो उसमें अपमान हो। ऐसे सत्य के उच्चारण करने से अपमान होता है। वह भी सत्य मानव को असत्यता में परणित करने वाला होता है। तो हमें सत्य को सिद्ध करना है। सत्य क्या है? तो ऋषि कहते हैं कि सत्यं ब्रह्मः यापक प्रवेः। अर्थात् सत्य ही ब्रह्म है। जो प्रकृति के कण कण में व्याप्त हो रहा है। वही सत्य माना गया है। तो बेटामानव के जीवन में तृतीय लक्ष्य अस्तेय आता है कि हम मन !, कर्म और वचन से मिथ्या भी न हों। मन कर्म वचन हमारा एक तुल्य होना चाहिए। मेरे प्यारे !हम स्वप्न में भी किसी प्रकार की अशुद्ध कल्पना न करें। उसको मुनिवरों अस्तेय कहा जाता ! है।
इसके पश्चात हम विचारते रहते हैं कि हमारा जीवन उस यौगिक क्षेत्र में रमण करने वाला हो जहाँ हम संसार की विभाजनवाद को क्रिया का विचार सकें। एक वैज्ञानिक है। मुनिवरों वह वैज्ञानिक यह विचारता रहता है कि तुझे परमाणुओं को एकत्रित ! करना है। उन परमाणुओं का सन्निधानकरना है। जब वह परमाणुओं का सन्निधान करना प्रारम्भ करता है तो मुनिवरों उसके मन और कर्म दोनों ही उसमें समन्वय ! रहते हैं। वह एक उपग्रह बनाता है। मानो वह मंगल की यात्रा करने वाले यान का

निर्माण करता है। वह निर्माण करता हुआ जब वह निर्माणवेत्ता ने जिस लिए बनाया उस पर जाने के पश्चात उसके हृदय में हर्ष ध्वनि प्रारम्भ हो जाती है।

मेरे प्यारे विचार विनिमय यह कि आज हम अपनी आभा को उस क्षेत्र में !ऋषिवर ! जहाँ कि हम अपने विचार की सुदृढ़ बना सकें। हमारे हृदय में शान्ति को स्थापना हो सके। प्रत्येक मानव शान्ति चाहता है। ऋषि मुनि भी शान्ति चाहते हैं। देवात्मा भी शान्ति चाहते हैं। शान्ति का अभिप्राय यह है कि जहाँ स्थिर हो जाते हैं उसी का नाम शान्ति माना गया है। तो मेरे प्यारे आज हम यह विचार विनिमय करें। हमारा वेद !ऋषिवर ! का ऋषि क्या कहता है? वेद का ऋषि कहता है कि हमें गुण और गुणी दोनों को विचारना चाहिए। क्योंकि गुण से गुणी पृथक नहीं होता। इसीलिए आत्मा और मन और प्राण तीनों को हमें मूलाधार से, हृदय से नाभि से, कण्ठ से मानो त्रिवेणी से और ब्रह्मरन्ध्र में ले जाना है। जहाँ सूक्ष्म धाराओं की प्रतिभा आती रहती है। उन सूक्ष्म धाराओं की प्रतिभा मुनिवरों नाना प्रकार की आभाओं से उनका प्रायः सम्बन्ध होता ! अपनी उस आभा को विचार !है। तो विचार विनिमय यह कि आज हम मुनिवरों विनिमय करने वाले बनें, जिन आभावों के सम्बन्ध में हमारा दर्शन, हमारी मानवता, हमारा जीवन, जन जीवन बेटा मन के ऊपर स्थित होता !चला जाए। और हम यह जान जाए कि हमारा वास्तविक स्वरूप क्या है? तो बेटा जब हम यही नहीं जानते ! कि हमारे शरीर में कितनी नाड़ियां है? कितने चक्र हैं? कितना रक्त प्रवाह माना गया है? जब हम अपने को साक्षात्कार करते हैं तो हमारा योग सिद्ध हो जाता है। अपने को साक्षात्कार साधना से किया जाता है। और साधना उस काल में होती है जहाँ अन्न पवित्र होता है।

मुझे स्मरण आता रहता है जिस समय बेटा महर्षि भृगु जब विद्यालय से आए तो ! उनके पिता महात्मा वरुण ने कहा, क्या तुम विद्या का अध्ययन कर आए हो? उन्होंने कहा हां भगवानमैंने सर्व विद !ृयाओं का अध्ययन कर लिया है। उस समय ऋषि वरुण ने कहा, है पुत्र मैं यह जानना चाहता हूँ। कि ऋत् और सत् किसे कहा जाता ! है? उन्होंने कहा भगवान वास्तव में मैंने नहीं जाना। मुझे इसका निर्णय कराइए। !

पिता क !अब ऋत और सत का निर्णय करने के लिए मुनिवरों !तो मेरे प्यारे चरणों में ब्रचचारी ओत प्रोत हो गया और कहा कि हे प्रभु मुझे प्रतीत है कि अन्न से ही ! मानव की स्मरण शक्ति जागरूक रहती है। इसी अन्न से मन की आभा आती है। क्योंकि जितना भी स्मरण शक्ति का केन्द्र है वह मन माना गया है। इसीलिए आज तुम सबसे प्रथम यह विचारों। तुम्हारा जीवन में इसमें संलग्नता में गतिशील होना चाहिए कि मैं वास्तव में ऋत को जानना चाहता हूँ। और इस मन की आभा को जानना चाहता हूँ।

उन्होंने कहा तुम अन्न को त्यागा। !दिवस तक अन्न को त्याग दो। उन्होंने बेटा 15 केवल जल का पान करते रहे। प्राण गति करता रहा। परन्तु मन की जो स्मरण शक्ति थी। वह समाप्त होने लगी। जब देखो !दिवस हो गए तो मुनिवरों 15, गौतम के जीवन में ह्रास आ गया। स्मरण शक्ति समाप्त होने लगी। उस समय पिता वरुण ने कहा ब्रह्मचारी अन्न को पान करना प्रारम्भ किया। !अब तुम अन्न का पान करो। उन्होंने बेटा ! अब शनैः शनैः स्मरण शक्ति जागरूक होने लगी।

महात्मा वरुण ने कहा, अब जल का पान न करो। उन्होंने बेटा तब जल का पान ! नहीं किया। परन्तु मन के द्वारा स्मरण शक्ति तो ज्यों की त्यों बनी रही। परन्तु जल प्राण की गति धीमी हो गई। जब प्राण की गति ध !के प्राप्त न होने पर मुनिवरोंीमी हो गई। तो क्रियात्मक होने के पश्चात् दिवस के पश्चात प्राण की गति धीमी होने 15 मेरी तो गति धीमी बन गई है। !लगी। और ऋषि से बालक ने कहा कि महाराज उन्होंने जल का पान !उन्होंने कहा तुम शनैःशनैः जल का पान करो। अब मुनिवरों करना प्रारम्भ तो परिणाम यह संसार में दो ही वस्तु ऋत और सत कहलाती हैं। जिसके कारण स्मरणशक्ति जागरूक रहती है। जिसके द्वारा प्राणशक्ति अपना सुचारु रूप से कार्य करती है। चाहे वह वसुन्धरा के गर्भ में हो, लोक लोकान्तरों के गर्भ में हो।

बेटामुझे स्मरण आता रहता है !, एक समय सुकेतु ऋषि महाराज के द्वारा महर्षि स्वाति ऋषि महाराज का गमन हुआ। स्वाति ऋषि ने कहा कि महाराज आपका चित्त प्रसन्न ! है? उन्होंने संकेत से कहा, भगवन मैंने श्रवण किया है कि तुम स्वाति मंगल की !

यात्रा यानों के द्वारा कर लेते हो। उन्होंने कहा, हां मैंने महर्षि प्रवाहण जी से विज्ञान को जाना है। और विज्ञान की गति के आधार पर मंगल लोक की मैं यात्रा करता हूँ। उन्होंने कहा, मंगल में कौन सा तत्त्व प्रधान माना गया है। तो ऋषि ने कहा कि वहाँ पार्थिव तत्त्व प्रधान है। क्योंकि पार्थिव प्राणी रहते हैं। वहाँ का विज्ञान, वहाँ की प्रतिभा इस पृथ्वी मण्डल से कई गुना ऊँची मानी गई है।

तो विचार विनिमय क्या? कि लोक लोकान्तरों भी प्रायः साधना का मूल कारण चलता रहता है। धर्म श्री मानवता के आधार पर धर्म की विवेचना करते हुए सुकेतु ऋषि ने कहा महाराज किसी भी लोक में जाओ धर्म एक माना गया है। धर्म कहते हैं यौगिक ! क्षेत्र को जो इन्द्रियों का विषय है, उनको संयम में लाने का नाम धर्म कहा गया है। मुनिवरों वह धर्म जैसे पृथ्वी में प्राप्त होता है ऐसे ही चन्द्र मण्डल में भी बृहस्पति ! मडणल तथा अन्य लोक में भी प्रायः सामान्य रूप से प्राप्त होता है। परिणाम क्या कि सत्य धर्म का मूल है। धर्म की आभा है। वही मुनिवरों एक हमारे यहाँ स्रोत ! माना गया है। जिसके ऊपर हमें प्रायः अध्ययन करना है।

एक योगी जब मंगल में गति करता है। प्रायः वैज्ञानिक यह कहते हैं कि सूर्य मण्डल में जाने से मानव समाप्त हो जाता है। वहाँ अग्नि है। तो बेटा विचार जाए !कि यह जो आत्मा है इस को अग्नि जब नष्ट नहीं कर सकती। अन्तःकरण को भी अग्नि नष्ट नहीं कर सकती। जब मुनिवरों मन को भी अग्नि भस्म नहीं कर सकता मन अग्नि में भी ! विराजमान रहता है। यह जो अग्नि का विभाजनवाद होता है। यह मन के ही कारण तो होता है। प्राण के द्वारा ही तो विभाजन होता है और मन विभाजन होता है और मन विभाजन करता है। तो परिणाम क्या? कि योगी का जब मन अन्तःकरण का एक यन्त्र बन जाता है तो मुनिवरोंदेखो !, वह सूर्य मण्डल गति करता है। सूर्य मण्डल क्या है? बेटाएक लोक है। जैसा मैंने पुरातन काल में कहाँ वेद का ऋषि कहता ! है कि मानो सूर्य केवल अग्नि का प्रधानता है क्योंकि वहाँ जो शीतल पार्थिव तत्त्व प्रधान लोक है। सूर्य उनको तापने का कार्य करता है। परन्तु वह मन को नहीं तपा सकता। क्योंकि मन सूर्य में विराजमान है। सूर्य में भी चन्द्रमा में भी, जितना भी यह ब्रह्माण्ड है प्रकृति का

चक्र है इन सब में मन ही कार्य करता है। मन किसे कहते हैं? मन प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तत्त्व माना गया है।

यहाँ जब वरुण ने महात्मा गौतम को यह उपदेश दिया। गौतम आज तुम्हें लोक ! लोकान्तरों पर जाना है। सूक्ष्म सी विद्या को पान करने से ही तुम्हें केवल अभिमान हो गया। परन्तु ज्ञान और सत्य तो ऐसी आभा है। जो मानव को निर्मल बनाती है, निरभिमान बनाती है। वह मानव को यौगिक क्षेत्र में ले जाती है और धर्मज्ञ बना देती है। मेरे प्यारे ऋषि का यह वाक्य जब महर्षि गौतम ने श्रवण किया। तो सुकेतु मुनि ! महाराज का उपदेश जो प्रवाहण से उन्होंने प्राप्त किया था। उन्होंने कहा कि यह संसार मानो एक प्रकार की आभा है। इसमें लोक लोकान्तर हैं। परन्तु इस मन को अग्नि समाप्त नहीं कर सकती। और प्राण को भी नहीं कर सकती। क्योंकि यदि प्राण अग्नि में नहीं रहेगा तो अग्नि नहीं रहेगी। अग्नि क्रिया से शून्य हो जाएगी। वायु में प्राण नहीं रहेगा तो वायु स्थिर होकर निष्क्रिय बन जाएगी। इसी प्रकार बेटा सर्वत्र मन और ! प्राण को एक रचना है। मानो वह सर्वत्र ओत प्रोत है। तो इसी के द्वारा लोक लोकान्तरों का हमें विभाजन प्रतीत होता है। और ऐसे अपने आँगन में वह मण्डल रमण करते हैं, गति करते हैं कि एक दूसरे से मिलान नहीं। वाह रे मेरे प्यारे तू कितना वैज्ञानिक !प्रभु ! है (असाधारण) है। तेरा विज्ञान कितना नितान्त? कितना गम्भीर है? मानव तो विचारता ही रहता है अल्पज्ञता होने के कारण।

एक दूसरा लोक का दूसरा मिलान नहीं कर पाता। पर जब यह प्रलय काल आता है तो सबसे प्रथम मण्डलों का प्राण और मन एक आभा में परणित होता हुआ अपने में रमण करता रहता है। तो मुनिवरोंविचार विनिमय क्या !? सुकेता मुनि ने कहा है, आज तुम्हें यह प्रतीत हो गया होगा कि धर्म सामान्य रहता है। इसीलिए जैसे मंगल मण्डल की मैंने यात्रा की है उस मंगल में भी धर्म है। परन्तु उसमें पार्थिव धर्म है। विचारक धर्म है। इसी प्रकार प्रत्येक लोक लोकान्तरों में यह वाक्य सुनते हैं कि वहाँ तत्त्व को प्रधानता भिन्न भिन्न रहती है। क्योंकि जिस मण्डल में जो तत्त्व प्रधान है, उसी तत्त्व को प्रधानता वाला प्राणी करता है। तो मेरे प्यारे सर्वत्र ब्रह्माण्ड एक अनन्तता में !ऋषिवर !

परणित रहता है। आज मैं लोक लोकान्तरों के ऊपर अपना विचार देना नहीं चाहता था।

विचार विनिमय क्या था? कि आज मानव को साधक बनाना चाहिए। योगी बनना चाहिए। जिन यौगिक उद्देश्यों को पान करके हम लोक लोकान्तरों की यात्रा करते हैं। उन पर हमारा गमन होता है। हमें वह अध्ययन करना है। हमें उसके ऊपर विचारशील बनना है। मेरे प्यारे आज मैं अधिक विवेचना तो देने आया ही नहीं हूँ। केवल मैं तो ! कैसे अपने जी !यह उच्चारण करने आया हूँ कि पुरातन काल में ऋषि बेटावन का अध्ययन करते थे। मुझे स्मरण है एक समय महर्षि पिप्लाद महर्षि रेवक मुनि महाराज के द्वार पर विराजमान हुए। तो महर्षि पिप्पलाद मुनिने कहा प्रभु मैं साधक बनना ! चाहता हूँ। उन्होंने कहा बहुत सुन्दर। तो उन्होंने नाना प्रकार को वनस्पतियों का पान कराया। जिस पर क‍िसी का अधिकार नहीं था। पिप्पलाद मुनि ने वर्ष तक केवल 12 बट् के पंचांग का पान किया और उससे निर्वाह किया। बट वृक्ष के पंचांग से उनका जीवन सुन्दर बना। उनका मस्तिष्क दार्शनिक बन गया। दार्शनिक का अभिप्राय यह है कि हमारा भोजन अथवा अन्न जितना ऊँचा होगा जिस पर किस‍ी का अधिकार नहीं होगा। तो ऐसे अन्न से स्वतन्त्र मस्तिष्क बनता है। अन्न पाप का वह होता है जिस अन्न में जो मानव द्रव्य का स्वामी बने और द्रव्य को एकत्रित में शंका, लज्ञा उत्पन्न हो, भय उत्पन्न हो, वह जो भय का अन्न है ही जो पान करता है, मानव के हृदयों को भी भयभीत बना देता है। तो विचार विनिमय यह कि हमारे ऋषि मुनि भयंकर वनों में, पर्वतों की कन्दराओं में उस अन्न को पान करते थे। वह दार्शनिक कहलाते हैं।

दर्शन किसे कहते हैं? दर्शन कहते हैं यह हमारा जो शरीर है, इसकी प्रत्येक आभा को जानने का नाम दर्शन है। मुनिवरों !इन्द्रियों के ऊपर संयम करने का नाम और संयमी पुरुष है जो उन तरंगों को स्थिर करने का नाम साधना है, योग है। मुनिवरों संसार ! में बिना तरंगों को स्थिर किए योग सिद्ध नहीं बन पाता। विचार विनिमय यह कि हम वाणी के ऊपर अध्ययन करते हैं। नेत्रों के ऊपर अध्ययन करते हैं। श्रोत्रों के ऊपर अध्ययन करते हैं। त्वचा के ऊपर अध्ययन करते हैं। प्रत्येक इन्द्रिय के ऊपर जब हमारा

अध्ययन इतना ऊर्ध्व गति में चला जाता है कि हमारी प्रत्येक इन्द्रिय का विषय मन में स्थित हो जाता है कि हमारी प्रत्येक इन्द्रिय का विषय मन में स्थित हो जाता है। मन और प्राण में स्थिर हो जाता है और मन और प्राण बेटा आत्मा में स्थित हो जाते हैं। ! तब आत्मा अपने प्रभु का साक्षात्कार कर लेता है। वह प्रभु का आध्यात्मिक !मुनिवरों विज्ञान और दर्शन कहलाता है। आज हमें मानवीय दर्शन करना है जीवन को ऊँचा मैं अध !बनाना है। बेटािक विवेचना तो नहीं देने आया हूँ। केवल मैं यह उच्चारण करने आया हूँ कि हम अपने प्यारे प्रभु के आँगन में रमण करते रहें। प्रभु की आभा को विचारते रहें। क्योंकि यह जो जितना भी जगत् है यह सब प्रभु की आभा है।

धर्म को विचारा जाए। धर्म रूढ़ि को नहीं कहते। धर्म कहते हैं जो ईश्वर में हमें समाहित करा देता है। तो मेरे प्यारे आज का विचार क्या कि हम वेदों का अध्ययन !ऋषिवर ! करते रहें। जीवन को ऊँचा बनाते रहें। और अपने जीवन में साधना को ऊँचा बनाएं। साधना में सब से प्रथम अहिंसा आता है, सत् आता है। अस्तेय आता है। ब्रह्मचर्य आता है, हम जब अहिंसा सत् अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पर विचार विनिमय करते हैं, अध्ययन करते हैं तो हम योग सिद्ध आत्मा हो जाते हैं। हमारा मानवीय दर्शन है। यह है बेटा अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं फिर प्रकट करेंगे। !आज का वाक् !

आज का विचार विनिमय क्या? आज का वेदका ऋषि क्या कह रहा है? हम उस परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए परमात्मा को आभा को जानते हुए हम इस संससार सगार से पार हो जाए। जो यह संसार हमें मान और अपमान वाला दृष्टिपात आता है। ऋषि तो यह कहते हैं कि यह मान अपमान भी मुनिवरों संसार में आवागमन ! के चक्कर में लाते हैं। मानव को मान को दृष्टिपात करके हर्षित नहीं हो जाना चाहिए। और अपमान को पान करके निराशा नहीं आनी चाहिए। क्योंकि दोनों को ही त्याग देना चाहिए। जो साधक बनना चाहता है। इसीलिए मुनिवरोंमान अपमान में सामान्य रहना !, विचार शीलता में रमण करना, विचार अधिक करना, कैसा विचार? एकान्त विराजमान हो करके प्रभु की आभा को विचारना। हे प्रभुतू क्या है !? कैसा विचित्र है? तेरी जब हम रचना को दृष्टिपात करते हैं। लोक लोकान्तरों का तारा मण्डलों को, नाना प्रकार

की वनस्पतियों का अध्ययन करते हैं। तो बेटा !हमारा हृदय प्रभु !भी नम्रता में रहता है। ऐसे ही मानव का जब मिलान हो जाता है। तो नम्रामय जीवन बन जाता है। इसीलिए मानव को नम्र बनना है। इतना सुन्दर बनना है जैसे पुष्प वाटिका में पुष्प सुगन्धि देता है। मानों हमें विचारों की सुगन्धि में परिणित होना चाहिए। मेरे प्यारे ! वाटिका में सुगन्धि देने वाला जो पुष्प है। परमात्मा ने उसका मिर्नाण किया है। उस पर जब हम अध्ययन करते हैं। इस सुगन्धि का मूल कारण क्या है? तो वह प्रभु ही दृष्टिपात आता है। आओ मेरे प्यारे मानव जब अपने पर अध्ययन करना !ऋषिवर ! प्रारम्भ कर देता है तो अध्ययन के पश्चात प्रभु को आभा ही दृष्टिपात कर देता है तो अध्ययन के पश्चात प्रभु को आभा ही दृष्टि पात आती है। तो विचार विनिमय यह है कि आज हम बेटा अपने जीवन में अध्ययनशील बनें। !

कैसा अध्ययन? आज हम सूर्य का अध्ययन करना प्रारम्भ करते हैं। इसकी किरणों कैसा कार्य करती हैं? पृथ्वी पर आती है। कहीं स्वर्ण का निर्माण करती है कहीं वनस्पतियों को तेज दे कर के ऊँचा बनाती हैं। मानों इसका जो मूल स्रोत है। वह चैतन्य देव हैं। आज हम बेटा जब अपनी प्रत्येक आभा को परमात्मा में स्थित कर देते है परमात्मा ! जै !के गर्भ में हम रमण कर देते हैं तो मुनिवरोंसे प्रभु उदार हैं। उसी प्रकार परमात्मा के हम आँगन में उदार बन करके विवेकी बन करके प्रभु को प्राप्त हो जाते हैं। बेटा ! यह आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा क्या? हम साधक बनें। ऊँचे बनने का प्रयास करें। और दर्शन को विचारने वाले बनें। यह है बेटा आज ! का वाक्। अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। आज का वाक् अब समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। निवास स्थान श्री राधा किशन टोडो, कलकत्ता समय रात्रि 8. बजे। 00

१७ 29 07 1973 पुष्प 21 आध्यात्मवाद राष्ट्र का प्राण व बल है

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने

पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ उस पठन पाठन का जो विचित्र कर्म है परम्परा से ही माधुर्यपूर्ण माना गया है। हमारे यहाँ परम्परा में कुछ ऐसा माना गया है कि वेदों का जो सुन्दर कर्म है, अथवा उसका जो ज्ञान है, वह विज्ञान से परिपूर्ण है। क्योंकि हमारे ऋषि मुनियों ने इस पवित्र ज्ञान के ऊपर महान मन्थन किया है। वह मन्थन किया हुआ जो ज्ञान होता है अथवा उसमें जो विज्ञान होता है। वह एक महत्ता से परिपक्क होता है। उसमें चेतना की विशेषता मानी जाती है। वह जो परम पिता परमात्मा चैतन्य है, उसी चेतना में यह सर्व ज्ञान और विज्ञान चेतनित रहता है। इसीलिए आज हम परमा पिता परमात्मा की उपासना करने के लिए आए हैं।

हे परमात्मन तू अनुपम है। तू संसार को चेतना प्रदान करने वाला है। प्रभु हम भी ! उस महान चेतना को चाहते हैं। जिस चेतना में मानव को अन्धकार प्राप्त नहीं होता। सदैव प्रकाश ही प्रकाश रहता है। जो मानव उस महान ब्रह्म मुख से परणित हो जाता है। ब्रह्म चेतना में रमण करने लगता है। सर्वत्र ब्रह्म ही ब्रह्म प्रतीत होने लगता है। तो वह मानव इस संसार में उज्ज्वलता को प्राप्त होता हुआ उस महान मण्डल में परणित हो जाता है। जहाँ अन्धकार नहीं होता, जहाँ सूर्य भी अस्त नहीं होता, जहाँ न सूर्य उदय होता है न अस्त होता है, एक रस रहने वाला है। इसीलिए आज हम अपने उस प्यारे प्रभु का गुणगान गाने के लिए आए हैं। हे परमात्मा आज हम उन महान् ! लोकों को चाहते हैं, जहाँ अन्धकार नहीं होता, जहाँ सदैव प्रकाश होता है। इसलिए हम आपकी आराधना करते हुए, इस मानवता से देवतव में जाना चाहते हैं। देवतव से भी प्रभु हमारे हृदय में किसी प्रकार !हम महादेवतव बनना चाहते हैं। जिससे भगवन् ! की विडम्बना न होने पाए। क्योंकि वह जो बिडम्बना होती है यह मानव के विनाश का हम अपने हृदय में प्रसन्न !मूल कारण बनती चली जाती है। प्रभुता चाहते हैं, महत्ता चाहते हैं, उज्ज्वलता चाहते है। जिससे भगवन् हमारा जीवन एक आनन्द में परणित ! होता हुआ महता को वेदी पर रमण करता हुआ इस संसार सागर से पार होने लगता है।

भगवन्हम सदैव इस समाज में !, इस संसार में रूढ़ि वाद नहीं चाहते। क्योंकि रूढ़िवाद

भी मानव के हृदय में नाना प्रकार के संस्कारों को जन्म देता है। यदि संस्कार होंगे तो हमारा आवागमन रहेगा। आवागमन रहेगा तो पुनरपि मरणम् और पुनरपि जीवनम्, हमें प्राप्त होता रहेगा। भगवन् हम ऐसा भी नहीं चाहते। हम चाहते हैं कि हम सदैव उस ! आनन्दमय प्रकाश में रमण करते रहें।जिस प्रकाश में रमण करने के पश्चात जहाँ न सूर्य उदय होता है और न सूर्य अस्त होता है। प्रभु जहाँ सदैव प्रकाश हो प्रकाश रहता ! हम उस !है। उस महान् अनुपम ज्ञान को चाहते हैं। उस विवेक को चाहते हैं। भगवन् रूढ़िवाद को नहीं चाहते हैं। क्योंकि रूढ़िवाद भी मानव के विनाश का कारण बन जाता है। इसीलिए भगवन् हमारी यह ही प्रबल इच्छा रहती है कि हम रूढ़िवाद को ! सदैव उस महत्ता को उस पवित्रता को चाहते हैं जहाँ हम !नहीं चाहते। हम तो भगवन् अन्तर आत्मा के ज्ञानी बनते रहें। अन्तर आत्मा को जानते हुए हमारा जीवन एक प्रतिभाशाली बनता हुआ इस संसार सागर से पार हो जाए।

आज मैं उस परम पिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन करने लगी। जहाँ वेदों में उस के ज्ञान और विज्ञान का प्रायः वर्णन होता रहता है। जहाँ मेरे प्यारे प्रभु ने मानव को ! मानव जीवन दिया है। मानव जीवन जब इस जगत् में आता है मानवता में जब परणित होता है तो महत्ता का दिगदर्शन होने लगता है। उस दर्शन के पिपासु बनते हुए हम इस संसार सागर से जो महान अपमान वाला जगत् है। जिसमें एक मानव दूसरे मानव के रक्त का पिपासु बना हुआ होता है ऐसे जगत् को नहीं चाहते। हम उस जगत् को चाहते हैं जहाँ प्रत्येक मानव प्रेम का प्रत्तीक हो। स्नेह का प्रतीक हो। जैसे ममतामयी माता अपने पुत्र की स्नेहयुक्त रखती है, इसी प्रकार यह जगत भी, यह मानव समाज भी स्नेहयुक्त होना चाहिए। जिससे हमारे हृदयों में विडम्बना का प्रादुर्भाव न हो। हम सदैव आनन्दमय और मग्न होते हुए अपने जीवन को उज्ज्वल और महत्ता की पवित्र वेदी पर ले जाएं। और वहाँ ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा को जानने वाले बनें।

ज्ञान और विज्ञान है क्या? इसके ऊपर भी विचार विनिमय करना है क्योंकि हमारे यहाँ त्रेता काल में क्या द्वापर में क्या, यहाँ परम्परा से ही वैज्ञानिक प्राणी होते रहे हैं। जिन्होंने परमाणुवाद को जानने के लिए प्रयास किया है। आज हम भी उस मार्ग के पथिक

बनना चाहते हैं। आज मेरे प्यारे महानन्द जी कुछ प्रेरणा दे रहे हैं। इनका वाक्य ! इनकी प्रतिभा मुझे बड़ी ही प्रिय लगा करती है। यदि इनके वाक्यों में कटुता का प्रतीक न हो तो इनकी प्रतिभा बहुत ही प्रिय हुआ करती है। परन्तु कोई वाक्य नहीं। आज तुम्हारे वाक्यों को लेकर के ही अपने वाक्यों को प्रारम्भ करने वाले हैं।

जब हम उस महान विज्ञान की वेदी पर पहुंचते हैं जहाँ वैज्ञानिक प्रकृतिवाद का दिग्दर्शन करते हैं और यह कहा करते हैं कि जहाँ ब्रह्मचेतना का अभाव माना जाता है वास्तव में वहाँ ब्रह्म चेतना का प्रभाव नहीं होता। वहाँ केवल उस वैज्ञानिक की तपस्या का अभाव होता है। यदि उस वैज्ञानिक की तपस्या का अभाव नहीं होता तो परमात्मा का अभाव उसके मस्तिष्क में आ नहीं सकता था। ब्रह्म चेतना का प्रभाव उस मानव के हृदय में प्रायः आता रहता है। जिसके हृदय में तपस्या के अंकुर नहीं होते। आज एक मानव प्रकृति के गर्भ में जाने के पश्चात तपस्वी बनता है। मानो तप करने के लिए तत्पर रहता है। उसकी यह प्रबल इच्छा होती है कि मैं ब्रह्म अस्त्र, आग्नेय अस्त्र, वरुणास्त्र, शिवास्त्र, रोहणी अस्त्र बनाना चाहता हूँ। नाना प्रकार की विचारधारा होती है कि मैं उन अस्त्रों में जानने के पश्चात अपनी प्रतिभा को जानना और उसमें तन्मय होना चाहता हूँ। एक वैज्ञानिक यह विचार विनिमय करता है कि मैं चन्द्रमा की यात्रा करने जा रहा हूँ। द्वितीय कहता है कि मैं मंगल की यात्रा में सफल होना चाहता हूँ। शुक्र के लिए कल्पनाबद्ध रहता है। और भी नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों में उसकी महान विडम्बना होती है। एक कल्पना बनाता है परन्तु उस कल्पना के साथ साथ नाना प्रकार के यन्त्रों को जानने का प्रयास करता है। वह उन यन्त्रों में पहुंच जाता है जहाँ वायु तत्त्व और परमाणु अधिक होते है। और अग्नि तत्त्व उसमें उससे सूक्ष्म होते हैं जहाँ जल परमाणु सूक्ष्म होते हैं। इसी प्रकार उन परमाणुओं को सन्निधान से एकत्रित करता है। सन्निधान करने के पश्चात उनका युक्ति युक्त निदान करके एक यन्त्र को निर्धारित कर लेता है। उस यन्त्र में वह विराजमान हो जाता है। ऊपर के लोकों को जाने वाले जितने भी यन्त्र होते हैं। उनमें वायु की प्रधानता अधिक होनी चाहिए। अग्नि उससे सूक्ष्म होनी चाहिए। क्योंकि अग्नि के परमाणु ऊर्ध्वगति को प्राप्त होते हैं। जब वैज्ञानिक यन्त्र बनाकर वायु के

वेग में जब अग्नि का सन्निधान होता है। तो उसकी प्रक्रिया उसमें प्राण की अवरेतगति होती है, उसके पश्चात ऊर्ध्वागति को प्राप्त होना उसका एक स्वाभाविक हो जाता है। आज मैं यह क्या उच्चारण करने चला हूँ। मुझे स्मरण आता रहता है कि वैज्ञानिक उन यन्त्रों को कितना तीव्रगति वाला बना लेता है। जिस समय महाभारत का संग्राम होने वाला ही था। उस समय अर्जुन के पुत्र बभ्रुवाहन अपने स्थान से महाभारत संग्राम के लिए कुरूक्षेत्र में पहुंचने के लिए अवतरित हो रहे थे। मार्ग में ही भगवान कृष्ण और महाराजा अर्जुन दोनों का स्मागम हुआ। दोनों सन्यासी रूप में थे। सन्यासी रूप में होने के नाते बभ्रुवाहन उन्हें अच्छी प्रकार न जान सका। उन्होंने कहा कि आप कौन हैं? उसने कहा कि मैं बभ्रुवाहन हूँ। मैं पातालपुरी का राजा हूँ। मैं आपके इस महाभारत के क्षेत्र कुरूक्षेत्र को दृष्टिपात करना चाहता हूँ। क्योंकि इसकी जो रज है वह बड़ी पावन है मैं उस धूलि को दृष्टिपात करना चाहता हूँ। जब उन्होंने यह वाक्य श्रवण किया तो महाराजा कृष्ण बोले कि क्या तुम संग्राम करने आए हो। उन्होंने कहा कि प्रभु मैं ! संग्राम नहीं कर पाऊंगा। क्योंकि संग्राम करने के लिए मेरे पास सेना नहीं है। हाँ एक बात अवश्य है कि मैं निश्चय करके आया हूँ, मैं अपनी माता से आज्ञा पाकर के आया हूँ कि कुरुक्षेत्र में मैं उस स्थान मे रहूँगा। जिस स्थान से मैं यह दृष्टिपात करूंगा कि जिसका पक्ष परास्त होगा उसी स्थान में मैं उसी समय अस्त्रो शस्त्रों से युक्त होकर उसी दल में शामिल हो जाऊंगा। उन्होंने कहा कि तुम ऐसे बलवान हो जो स्वयं उस स्थान में रहोगे जिनका दल परास्त होने वाला है। उन्होंने कहा कि हां महाराज तुम्हारे द्वारा ! ऐसी क्या विशेषता है? उन्होंने कहा कि भगवनमैंने अपने जीवन में तीन अस्त्रो !ः शस्त्रों को जाना हैं। उन तीनों से मुझे यह पूर्ण विश्वास रहता है कि मेरा एक एक अस्त्र ऐसा है जो अठ्ठारह अटठारह अक्षौहिणी सेना को एक ही समय में नष्ट कर सकता है। जब उन्होंने यह वाक्य श्रवण किया तो पूछा कि इसकी परीक्षा क्या है? उन्होंने कहा कि भगवन आप इसकी !परीक्षा ले सकते हैं। यह मेरा अस्त्र है इसे मैं आपके समीप जी वृक्ष है इसकी महाकृतियां में इसे अर्पित कर रहा हूँ और इसकी पत्ती पत्ती को छेदन

करके यह अस्त्र मेरे द्वारा आ जाएगा यही मेरे अस्त्र में विशेषता है।

भगवान् कृष्णा ने कहा कि हम परीक्षा चाहते हैं। उस समय महाराज ब्रबरीक ने ऐसा ही किया। अपने अस्त्रों का प्रहार कर दिया। और वह अस्त्र वृक्ष की पत्ती पत्ती को छेदन करने लगा। कुछ पत्तियां भगवान् कृष्णा ने अपने पगों के नीचे कर ली थी। उस समय जब अस्त्र पत्ती पत्ती को छेदन कर रहा था और सूक्ष्म पत्तियां रह गई तो महाराजा ब्रबरीक ने कहा हे भगवन् आपके पगों को छेदन करके यह मेरे समीप आ सकता ! है। भगवान कृष्णा ने उन पगों को दूर कर लिया। उन पत्तियों को छेदन करके वह अस्त्र महाराज ब्र्बरीक के समीप आ गया। उसी अस्त्र को हमारे यहाँ ब्रह्मास्त्र कहा जाता है। ऐसा कहा जाता है कि महारािजा कृष्णा और अर्जुन ने यही विचारा कि ! इसका तो ऐसा भयंकर परिणाम हो सकता है कि यह महाभारत कुरुक्षेत्र में नहीं होने देगा। अब कया करना चाहिए? अर्जुन ने कहा कि इससे कुछ और जानकारी करो। महाराजा ब्रबरीक से बोले हे ब्रबरीकजब तुम इतने क्षत्रिय हो !, इतने महान वैज्ञानिक हो तो मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम दानी कितने हो। उन्होंने कहा कि प्रभु जो ! आप चाहोगे वही दान मैं अर्पित करने वाला हूँ। तो उन्होंने कहा कि यह जो कंठ से यह आपसे !ऊपर वाला भाग है इसे हमें अर्पित कर दीजिए। उन्होंने कहा कि भगवन् ऐसा व्यवहार क्यों? मैंने आपको जान लिया है आप तो कृष्णा हैं। आप ही इस महाभारत के रचयिता हैं। इसलिए आपको मैं यह दान दे रहा हूँ। आप मेरे कंठ से ऊपर वाले भाग को अर्पित कर लीजिए। उन्होंने कहा कि नहीं हम आपके शरीर से दूर नहीं चाहते हैं। आप इस संग्राम को दृष्टिपात करो परन्तु आप भुजाओं से अस्त्रों और शस्त्रों से कार्य नहीं कर पाओगो। उन्होंने कहा कि भगवन् यह मुझे स्वीकार है। !

तो मुनिवरोंदेखो !, हमारे यहाँ ऐसे वैज्ञानिक होने चाहिए जिससे राष्ट्रीयता उनके ! मस्तिष्कों में होनी चाहिए। जिससे जीवन का एक उद्देश्य उनके समीप होता है। उसी काल में जबउन्होंने कहा कि प्रभु यह शरीर आपका हो चुका है तो तीनों प्राणी एक ! स्थान में विराजमान हो गये। तीनों का परिचय हुआ। क्योंकि वह अर्जुन के पुत्र होते थे अर्जुन के चरणों को स्पर्श किया और कहा कि आप तो मेरे पिता हैं। आप यदि

चाहते हैं तो हे पिता आपको संग्राम की आवश्यकता नहीं है। मैं इस संग्राम को एक क्षण समय में समाप्त कर सकता हूँ भगवन् महाराज अर्जुन ने कहा नहीं हम ऐसा ! यह जो संग्राम हो रहा है कि जैसा !नहीं चाहते। महाराजा कृष्ण बोले कि हे बबरीक तुमने इस विज्ञान की प्रतिभा को जाना है कि क्या तुम्हें इस संग्राम में निमिन्त्रित किया गया है? उन्होंने कहा प्रभु मुझे किसी ने निमन्त्रित नहीं किया है। और न मैं निमन्त्रण ! चाहता हूँ क्योंकि इस संग्राम से तो हमारे परिवार का ही विनाश होने जा रहा है। मैं एक वाक्य और जानना चाहता हूँ कि आप तो जनार्दन हैं आप तो केशव !भगवान है परन्तु यह ऐसा क्यों हुआ? भगवान कृष्ण बोले कि यह इसलिए हुआ है इस समय विज्ञान की पराकाष्ठा, विज्ञान की प्रतिज्ञा उज्वल हो गई है। जब विज्ञान ऊँचे स्थान पर चला जाता है और उसमें आध्यात्मिकवाद नहीं रहता, ईश्वरवाद नहीं होता उस समय अभिमान की मात्रा प्रबल होती है। अभिमान का परिणाम केवल विनाश हुआ करता है। इसलिए आज इसके विनाश का कारण उपस्थित है। मुझे तो केवल ऐसा ही प्रतीत हो रहा है।

बब्रीक बोले कि संसार में ईश्वर भी कोई वस्तु होती है? उन्होंने कहा कि संसार में ईश्वर भी होता है। क्योंकि ईश्वर का न मानने से ही यह संग्राम है। उस समय बब्रीक ने कहा प्रभु मैं तो विज्ञान की प्रतिभा मैं परिणित होता हुआ अब मैं बुद्ध मे जाने का ! प्रयास कर रहा हूँ और मंगल में जाने वाले यन्त्रों के निर्माण में मैं कटिबद्ध हो रहा हूँ। कुछ काल से मेरी प्रबल कामना जागरूक हो रही है कि ईश्वर कोई वस्तु नहीं है। उन्होंने कहा कि अरे बब्रीक। ईश्वर का न मानना ही संसार में अन्धकार है। और ईश्वर का स्वीकार करना ही प्रकाश कहा जाता है। जब मानव के हृदय में, राष्ट्र के गर्भ में ईश्वरवाद होता है, मानववाद होता है उस समय ऐसी रक्त भरी क्रान्ति नहीं हुआ करती हैं। क्योंकि रक्त भरी क्रान्ति का जो कारण होता है मानो वह ईश्वर को न मानना ही होता है। आध्यात्मिक विचारों से ऊँचे विचार होते हैं और ईश्वर से ही राष्ट्र का निर्माण ऊँचा हुआ करता है। राष्ट्र में दुर्बलता नहीं होती है। इसलिए आज राष्ट्र में प्रबलता न होने का कारण केवल ईश्वर की प्रतिभा को नष्ट कर देना है। आध्यात्मिकवाद को अपने

से दूर कर देना है।

महाराज बब्रीक ने यह स्वीकार कर लिया तो उन्होंने कहा प्रभु मैं तो ईश्वरवाद में ! विश्वास नहीं कर रहा था। आज मुझे यह ज्ञान हुआ है कि वास्तव में जब प्रकृति के गर्भ में जाते हैं अणु परमाणुओं को एकत्रित करने लगते हैं उस समय मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति ने तुझे इतना मोह लिया है, इतना ममतामयी में धारण कर लिया है। क्योंकि उस प्रकृति के गर्भ में जाने के पश्चात मैं ब्रह्म चेतना को अपने से दूर कर देता हूँ। इसलिए आज से मैंने यह संकल्प धारण किया है कि मैं ईश्वरवादी बनूंगा। और उसकी प्रतिभा को जानना, मेरा अनुसन्धान करना एक लक्ष्य रहेगा। जब यह वाकय कहा तो भगवान कृष्ण बोले अरे, बब्रीक क्या तुम ईश्वर पर अनुसन्धान कर ! सकते हो। ईश्वर पर आज तक कोई अनुसन्धान नहीं कर पाया है। ईश्वर को वही जानता है जो अपने पर अनुसन्धान कर लेता है और जो अपने पर अनुसन्धान नहीं कर पाता वह संसार में प्रभु का अनुसन्धान कर ही नहीं पाता।

आज का हमारा वाक्य क्या कह रहा है? वास्तव में हम अपना अनुसन्धान करें और अनुसन्धान किए बिना संसार में एक प्राणी भी दूसरे प्राणी को नहीं जानता। ईश्वरवाद तो बहुत दूर है बेटा ईश्वरवाद राष्ट्र में होना चाहिए क्योंकि राष्ट्र का जो प्राण है वह ! ईश्वरवाद है। एक समय महाराज ज्ञानश्रुति से महर्षि भारद्वाज जी ने कहा कि हे ब्रह्म मैं यह जानना चाहता हूँ राष्ट्र का प्राण क्या है !ज्ञानी राजन? उस समय महाराज ज्ञान श्रुति ने कहा भगवन राष्ट्र का जो प्राण है वह ईश्वरवाद है। ईश्वरवाद ही राष्ट्र का प्राण ! माना गया है और राष्ट्र की क्रान्ति क्या है? उन्होंने कहा राष्ट्र की क्रान्ति मानव के द्वारा वह मानवीय विचार ही हैं जो राष्ट्रीय क्रान्ति लाता है। अपना अपना अधिकार लाने के लिए महान क्रान्ति हुआ करती है। उन्होंने कहा कि हे राजन मैं यह और जानना ! चाहता हूँ कि राष्ट्र की शान्ति क्या है? उन्होंने कहा राष्ट्र की शान्ति है राजा के राष्ट्र में यज्ञ कर्म होना। यज्ञ आदि कर्मों का होना यह राष्ट्र की शान्ति मानी गई है। उन्होंने कहा हे राजन। राष्ट्र का जो प्राण है। वह ईश्वर है !, शान्ति यज्ञ है और क्रान्ति मानव का कर्त्तव्य है। इसलिए मानव में ईश्वरवाद होगा तो कर्त्तव्य होगा और कर्त्तव्य होगा तो यज्ञ

होगा और यज्ञ होगा तो मानव के राष्ट्र में सुख होगा, शान्ति होगी महत्ता की जिज्ञासा सदैव मानव के हृदय में प्रदीप्त रहेगी।

जब यह वाक्य उन्होंने प्रकट किया तो महर्षि भारद्वाज जी ने कहा कि राष्ट्र का गहना क्या है, राष्ट्र का भूषण क्या है? उन्होंने कहा राष्ट्र का जो भूषण है वह राष्ट्र का चरित्र है। राजा के राष्ट्र में जितना चरित्र होगा उतना ही राजा के राष्ट्र में भूषण होगा, पवित्र होगा। इसलिए राजा के राष्ट्र में चरित्र होना चाहिए। महर्षि भारद्वाज ने कहा कि हे राजनमैं एक वाक्य और जानना चाहता हूँ कि तुम राजा हो !, अधिराज हो, राजा के राष्ट्र की वसुन्धरा क्या है? ज्ञान श्रुति ने कहा कि हे ऋषिवर राष्ट्र की जो वसुन्धरा ! है वह मानव की प्रतिभा है, मानव की प्रतिभा में जो ज्ञान और विज्ञान है वही राष्ट्र की वसुन्धरा है। वसुन्धरा का अभिप्राय जिसमें हम बसते हैं मानो राष्ट्र की जो प्रतिभा है वह मानवता में परणित रहने वाली है इसलिए उसे हमारे यहाँ राष्ट्र प्रतिभा स्वीकार किया जाता है।

महर्षि भारद्वाज ने कहा हे ज्ञान श्रुति जीतुम इसका विश्लेषण जानते हो !? उन्होंने कहा कि भगवन्राजा के राष्ट्र में जितना चरित्रवाद होगा !, एक मानव दूसरे मानव का विश्वासी होगा। एक मेरी पुत्ररा एक राष्ट्र के विभाग से दूसरे राष्ट्र के विभाग में जाने के पश्चात मानो जिसकी प्रवृत्ति माता भौजाई की दृष्टि से दृष्टिपात करने वाला प्राणी हो, उस राजा के राष्ट्र में तो चरित्र होता है। चरित्र की मीमांसा यह भी है, कि राजा के राष्ट्र में जो द्रव्य है उसका सन्तुलन करना मानो उसको सामान्य दृष्टि से, व्यापकता से सन्तुलन करना इससे राजा के राष्ट्र में सतचरित्रता होती है। दूसरे के अधिकार को जो मानव हनन करता है, अपने में ग्रहण करता है वह भी अचरित्रवान व्यक्ति माना गया है। इसीलिए राजा के राष्ट्र में यह सर्वत्र समान विभाजित वस्तुएं होनी चाहिए।

उसके पश्चात उन्होंने कहा कि कर्त्तव्य किसे कहते हैं? हे भगवन् वहीं कर्त्तव्य होता है ! जो मानव कर्त्तव्य का पालन करता हुआ अपने अधिकार पर जो निर्भय रहता है। वह मानव कर्त्तव्यवादी है। अपने जीवन की प्रतिभा में कटिबद्ध रहता है। मानवता की

उसमें एक महत्ता होती है। उसी से अपने जीवन को स्वराष्ट्र बना लेता है।

उस समय महर्षि भारद्वाज ने कहा कि महाराज मैं यह जानना चाहता हूँ कि राजा ! के राष्ट्र की क्रान्ति क्या है? उन्होंने कहा कि क्रान्ति उसे कहते हैं जो मानव अपने कर्तव्य के पालन करने के पश्चात अधिकार को स्वीकार करता है। अपना जो अधिकार है उसी मैं वह सन्तुष्ट रहता है और जो दूसरे के अधिकार को छीनने का प्रयास करता है मानो तब उस राजा के राष्ट्र में अजीर्ण हो जाता है। और जहाँ अजीर्ण होता है वहाँ क्रान्ति नहीं होती। वहाँ तो एक मानव दूसरे मानव के रक्त का पियासु बन जाता है। इसलिए वाक्य यह कह रहा है कि राजा के राष्ट्र में जो क्रान्ति होती है वह क्रान्ति अपने अधिकार में सन्तुष्ट रहना है। और जो अधिकार को छीनने का प्रयास करता है उसको दलित करना है। यह राजा के राष्ट्र में महान रक्तभारी क्रान्ति को जन्म देती है। उन्होंने कहा, बहुत सुन्दर राजन मैं यह और जानना चाहता हूँ कि !हे ज्ञान श्रुति जी ! राजा के राष्ट्र में जो पवित्रवाद है, मानवता हे महत्ता है मानो देखो, अप्रात कहलाया है इसको वसुन्धरा कहते हैं वसुन्धरा की मीमांसा क्या है? उन्होंने कहा कि राजा के राष्ट्र में इस प्रकार के वैज्ञानिक होने चाहिए जो खाद्य और खनिज पदार्थों को जानने वाले हों। खाद्य और खनिज पदार्थों पर जहाँ राजा के राष्ट्र में अनुसंधान होता रहता है वहाँ पवित्रवाद होता रहता है। माना वसुन्धरा या प्रकृति के गर्भ में क्या नहीं होता। राजा के राष्ट्र में इस पर अनुसन्धान होना बहुत अनिवार्य है। खाद्य पदार्थ अधिक होना चाहिए। अधिक उस काल में होता है जब अनुसन्धान करने वाले व्यक्ति होते हैं। बुद्धि के विशेषज्ञ होते हैं। माता के गर्भ में जब अनुसन्धान करने वह कटिबद्ध होते हैं, इसके गर्भ में जाना, नाना प्रकार की धातु को जानना, खनिजों को जानना, उससे नाना प्रकार के यन्त्रों को बनाना और नाना दूसरे लोकों में भ्रमण करना आदि जिस राजा के राष्ट्र में ऊँचे ऊँचे विभाग होते हैं। इसीलिए उस राजा का राष्ट्र पवित्र होता है। यही वसुन्धरा की मीमांसा है वसुन्धरा नाम माता को कहा जाता है जो माता अपने गर्भस्थल से सुन्दर सुन्दर प्यारे पुत्रों को जन्म देती है वह माता वसुन्धरा !को जन्म देती है महान पुत्रों !

संसार में पूज्यनीय होती है।

आज का हमारा वाक्य क्या कह रहा है। आज हम विचारमान बनते हुए अपने मानव जीवन को अनुसन्धान की पवित्र वेदी पर ले जाते चले जाएं। हे माता तू !वसुन्धरा ! वास्तव में पवित्र है, तेरी मानवता तेरा गर्भाशय है। वह उज्ज्वल उस काल में होता है जब यहाँ भगवान कृष्णा जैसे महापुरुषों का कणांद और गौतम जैसे वैज्ञानिकों का जन्म देता हुआ तेरा गर्भाशय पवित्र हो जाता है।

जब यह वाक्य महर्षि भारद्वाज ने श्रवण किया तो हर्ष की कोई सीमा न रही। उन्होंने कहा कि हे राजनतुम वास्तव में बुद्धिमान हो !, महान हो, पवित्र हो, परन्तु मैं यह और जानना चाहता हूँ कि तुम्हारा जो राष्ट्र है उस राष्ट्र में जहाँ मानवता के अंकुर होते हैं वहाँ एक धारा होती है। यज्ञ कर्म होते हैं। तुम्हारे राष्ट्र में यज्ञ कर्म किसे कहते हैं? उन्होंने कहा कि भगवन्मेरे राष्ट्र में नाना प्रकार के संकल्प को जानने वाले हैं !, अग्नि में आहुति देने वाले हैं और अग्नि में जब आहुति दी जाती है राष्ट्र सुगन्धिमय होता है। विचारों की सुगन्धि और नाना प्रकार की वनस्पतियों की सुगन्धि जिस राजा के राष्ट्र में होती है वह राष्ट्र वास्तव में पवित्र होता है। मेरी यही कामना रहती है इसी कामना को लेकर के मैं राष्ट्र का पालन करता हूँ। और ईश्वरवाद की प्रतिभा मेरे राष्ट्र में रहनी चाहिए। क्योंकि ईश्वरवाद ही वास्तव में राष्ट्र का भूषण माना गया है।

आज का हमारा वाक्य क्या कुछ रहा है कि हम प्रभु की याचना करते हुए अपने उस महान जीवन को सुन्दर बनाते हुए महान और पवित्रवाद की वेदी पर ले जाते हुए अपने जीवन को सार्थक बनाना चाहते हैं। उस वेदी पर ले जाना चाहते हैं जहाँ आनंद की एक प्रतिभा का जन्म होता रहता है। हमें अपने प्यारे प्रभु को जानना चाहते हैं। प्रभु को बिना जानें संसार में आस्तिकवाद का प्रसार नहीं होता। मेरे प्यारे महानन्द जी ! कहा करते हैं कि आप तो आध्यात्मिकवाद ईश्वरवाद में लगे रहते हैं। परन्तु आधुनिक काल का संसार कोई चन्द्रमा की यात्रा कर रहा है कोई नाना प्रकार के अस्त्र शस्त्र में नियुक्त हो रहा है, निर्माणशालाओं में परणित हो रहा है। मैं यह कहा करता हूँ कि बेटायह संसार नाना प्रकार के यन्त्रों से ऊँचा नहीं बनता !, ऊँचे ऊँचे भवनों से भी

संसार ऊँचा नहीं बना करता है। सुन्दर सुन्दर मार्ग भी हों उससे भी संसार ऊँचा नहीं बनता यह संसार ऊँचा उस काल में बनता है जब मानव के द्वारा चरित्र होता, महत्ता होती है, पवित्रता होती है, एक मानव दूसरे मानव के रक्त का पिपासु नहीं होता। उस काल में राष्ट्र भवनों से ऊँचा नहीं बना करता है वे सुन्दर नहीं होते जिनमें यज्ञ और सदाचर की वार्त्ता न प्रकट होती है। वह मार्ग नहीं होता जिन मार्गों पर सदाचारी व्यक्ति भ्रमण नहीं करते। उस मानव में उच्चता कुछ नहीं होती जो केवल अपने में प्रमादी बन जाता है। प्रमादी व्यक्ति संसार में नहीं रहना चाहिए। ऐसा ही हमारे यहाँ परम्परा से माना गया है। आज पुनः से हमें उस धारा को अपनाना है। चन्द्रमा में जाना आज कोई आश्चर्य नहीं। चन्द्रमा में जाना बुद्ध में जाना, मंगल में जाना, शुक्र में जाना और भी नाना प्रकार के लोकों में भ्रमण करना यह तो मानव मन के द्वारा भी भ्रमण कर सकता है। परन्तु चरित्र तो उस काल में आता है जब मानव अपने ऊपर अनुसंधान करता है। यह तो प्रकृतिवाद अनुसंधान है, अणु महाअणुओं को एकत्रित करना है, इससे मानव उज्ज्वलता को जा सकता है, वायु मण्डल में परणित हो सकता है यह कोई आश्चर्य नहीं है। कल मैंने अपने कुछ वाक्य प्रकट करते हुए कहा था कि समाज को संसार में उज्ज्वल बनाना है। चरित्रवाद की वेदी को लाना है। जिससे समाज में मानवता का एक दिग्दर्शन होता रहे। और राष्ट्रीयता उसके जीवन में आती रहे। क्योंकि ईश्वर एक मानव जीवन का प्रकाश कहलाया गया है, अन्तःकरण को उज्ज्वल बनाने वाला है।

वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय क्या है कि हम परमात्मा का चिन्तन करते रहें। प्रभु की आराधना करते हुए, मानवता की पवित्र वेदी का भ्रमण करते रहें। पवित्र वेदी को अपनाते रहें। ज्ञान कर्म की उपासना करते रहें। जिससे हमारा जीवन एक महत्ता की पवित्र वेदी पर रमण करता हुआ संसार सागर से पार होता चला जाए। हम अपनी मानवता को अपनाने का प्रयास करें वैज्ञानिक बनें, महान वेदी पर चले जाएं परन्तु अपनी चरित्रता और मानवता को न त्यागें।

मैं आज कोई अधिक परिचय देने नहीं आया हूँ केवल वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय है कि हम संसार में राष्ट्रवाद को अपनाना चाहते हैं। विज्ञान को अपनाना चाहते हैं।

परन्तु विज्ञान में जाने के पश्चात अपनी मानवता को शान्त न करो। यह है आज का हमारा वाक्य। कल समय मिलेगा तो कल महानन्द जी अपना वाक्य प्रकट कर सकते हैं। इनको सर्वत्र समय प्रदान किया जा सकेगा जिससे यह अपने हृदय के जो उद्गार हैं उनको प्रकट कर सकें। क्योंकि इनका उद्गार बहुत प्रबल होता है। विस्तार क्या होता है। आज समय इतना आज्ञा नहीं दे रहा है जो आज इनको समय प्रदान किया जाए। आज तो हम अपने विचारों को यहाँ विराम देना चाहते हैं। आज के वाक्यों का अभिप्राय है कि हम राजा के राष्ट्र में चरित्रता को लाना चाहते हैं। मानवता को लाना चाहते हैं, सुगन्धि को लाना चाहते हैं, अनुसंधान लाना चाहते हैं, विज्ञान चाहते हैं, अस्त्र शस्त्र चाहते हैं। परन्तु यह सब ईश्वरवाद के साथ साथ चाहते हैं। यह आज का वाक् अब हमारा समाप्त होने जा रहा है। हम प्रभु की प्रतिभा को जानते रहें।

बेटा राम को वन प्राप्त हो गया और जब वह पञ्चवटी पर जा !जिस समय भगवन् ! पहुंचे तो उनके द्वारा सुदर्शन ऋषि महाराज आ पहुंचे और उन्होंने कहा, भगवन् ! आज ऐसे स्थान में विराजमान हैं जहाँ रावण आततायी का आप पर आक्रमण हो सकता है। उस आक्रमण के लिए आपके द्वारा कौन सा साधन है जिससे आप अपनी रक्षा कर सकते हैं। भगवान् राम ने कहा कि मेरे द्वारा ऐसा साधन है कि मैं उससे रक्षा कर सकता हूँ। उन्होंने कहा कि क्या है? हे ऋषिवर मेरे द्वारा एक चरित्र की प्रतिभा ! है मेरे द्वारा सत्यता की प्रतिभा है, मैं अपने सत्य ज्ञान से उससे संग्राम कर सकता हूँ लक्ष्मण विज्ञान में बड़े पूर्ण थे। निपुण होने के कारण उन्होंने नाना प्रकार के यन्त्रों की प्रतिभा को जानने का भयंकर वन में प्रयास किया था। क्योंकि एक समय वे महर्षि भारद्वाज के आश्रम में प्रविष्ट हुए थे। जब भारद्वाज और उनकी पत्नी विराजमान थे। भारद्वाज ने कहा था कि हे रामआप भयंकर वन में आ गएं हैं !, आप कैसे सदाचारियों की रक्षा करोगे। क्योंकि यहाँ आपको आततायी प्राणी बहुत प्राप्त होंगे। उन्होंने कहा कि मेरे द्वारा कोई साधन नहीं है। उन्होंने कहा कि मैं अपने जीवन में अनुसन्धान वेत्ता रहा हूँ। मेरे द्वारा कुछ अस्त्रों शस्त्रों को कोष है इसको तुम स्वीकार कर लो। महर्षि भारद्वाज ने जिन यन्त्रों तन्त्रों को उन्होंने पञ्चवटी पर युक्त कर लिया था। यह होती है मानव की

साध्य प्रतिभा, मानव का वास्तविक जीवन कि ऋषि महर्षि उनके जीवन के साथी बन जाते हैं।
वाक् वाक्य मुझे बारम्बार स्मरण आता चला जा रहा है जहाँ मैं यह विचार विनिमय करने के लिए तत्पर रहता हूँ कि भगवान राम को इतने अस्त्रों शस्त्रों का कोष कहाँ से प्राप्त हो गया जो रावण जैसे साम्राज्यवादी से संग्राम करने का उनका साहस बन गया था। भगवान् राम महर्षि भारद्वाज से लगभग छह माह तक अस्त्रों शस्त्रों की शिक्षा ग्रहण करते रहे। यहीं कोष उन्हें कुछ प्राप्त हुआ, कुछ उन्होंने सुग्रीव से अपनी मित्रता की, उसी मैत्री के बल से उन्होंने राजा रावण से संग्राम किया।
वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि जो महान् सत्यता की वेदी पर होते हैं उनके रक्षा के लिए संसार में बहुत प्राणी होते हैं। इसलिए मानव को विचारना है और विचारक बनकर के इस संसार में अपने जीवन को व्यतीत करना है। जहाँ मानव के द्वारा चरित्र की प्रतिभा होती है वहीं तो राष्ट्र और समाज पवित्र बनकर इस संसार को ऊँचा बना देते हैं। हम अपने जीवन में एक ही वस्तु को लाना चाहते हैं। रूढ़िवाद नहीं चाहते हैं, सदाचार चाहते हैं, मानवता चाहते हैं महत्ता की प्रतिभा चाहते हैं। यह है आज का हमारा वाक्य। अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं मैं कल प्रकट कर सकूंगा। आज का यह वाक्य समाप्त। कल कुछ संक्षिप्त परिचय हम भी देंगे। कल मेरे प्यारे महानन्द ! जी अपना वक्तव्य प्रकट करेंगे। कुछ आधुनिक काल की विचारधारा भी यह प्रकट करेंगे। ऐसा इनका विचार है। आज मैं इनके मन्तव्य को जान गया था, परन्तु उससे मुझे प्रयोजन अधिक नहीं था। कल मेरे प्यारे महानन्द जी अपने उदगार प्रकट करेंगे। ! जोर बाग) अब वेदों का पाठ होगा इसके पश्चात हमारी वार्त्ता समाप्त हो जाएगी।, नयी दिल्ली(

१८ 30 07 1973 पुष्प 21 पञ्चक यज्ञ का स्वरूप

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने, पूर्व की भांति, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस

मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिसमें परमात्मा की महिमा का प्रायः वर्णन किया जाता है।
क्योंकि परमपिता परमात्मा सदैव, विज्ञान में रमण करने वाला है। वह विज्ञान, जो हमारे से अपरोक्ष रहता है परन्तु जो हमारी आभा में निहित रहता है हमारी बुद्धियों से वह दूरी रहने वाला है, परन्तु बुद्धियों में भी रमण करने वाला है। अब दो वाक्य आते हैं, कि बुद्धियों से दूरी और बुद्धियों में रमण करने वाला। परन्तु यहाँ विचार आता है कि कैसे दूर रहता है और वह किस प्रकार बुद्धियों को संचालित करता है।

मन का प्रतिबिम्ब

मेरे प्यारेमन के द्वारा !, आत्मा का सन्निधान होता है, तो मन अपना कार्यवाहक प्रारम्भ कर देता है, और मन की जो सूक्ष्म धारा है, उसका नाम बुद्धि कहा जाता है। परन्तु उसमें क्रिया आती है। प्राण को विभाजन करने की, अथवा किसी भी वस्तु का विभाजन करने की, उसमें प्रवृत्ति आती है। परन्तु यह सन्निधान मात्र से होती है। तो वह सन्निधान आत्मा का होता है। परन्तु परमात्मा उसमें समाहित रहता हैं। तो इसीलिए वह समाहित रहने के नाते वह बुद्धियों से दूरी रहता है, समीप रहता है, समीप रहता है, और दूरी भी रहता है। दूरी इसीलिए रहता है, क्योंकि वह मन का प्रतिबिम्ब है। अथवा मन की एक धारा है, और उस धारा में रमण करने वाला मनस्तव कहलाया जाता है। तो इसीलिए वह जो परमपिता परमात्मा है, वह बुद्धियों के निकट भी है, और बुद्धियों से दूरी भी है। तो इसीलिए वेद कहता है कि बुद्धि से हम उस चेतना को निर्णय नहीं कर सकते। परन्तु वह जो चेतना है, जिसको हमारे यहाँ प्रभु कहा जाता है। उसे हम बुद्धि ! से उसका निर्णय कर पायेंगे। हम प्रकृति के कणों को जान सकते हैं। सूर्य को हमारे वेदो में रथी कहा है, और इन्द्र को भी रथी कहा है। परन्तु यहाँ इन्द्र नाम सूर्य का ही आता है, तो वह जो इन्द्र है, वह रथ पर विराजमान हो करके और उस रथ के जो मानो अश्व हैं। उन पर विराजमान हो करके जब वह सूर्य उदय होता है, तो प्रकाश ही प्रकाश हो जाता है। जैसे राज स्थल है राष्ट्रीय सभा विराजमान है। यदि राष्ट्र का नायक

इसके द्वारा नहीं है, तो वह शून्यवत रहता है। जब वह शून्यवत रहता है तो रथी का उदय हो जाता है तो वह सभा भी प्रकाश में आ जाती है इसी प्रकार वह जो मानो सूर्य है वह रथी है, अश्वों पर विराजमान है और उसके अश्व क्या हैं? बेटा उसके जो ! अश्व हैं वह नाना प्रकार की किरणें है वह जो किरणें है उसमें वह समाहित रहता है। और उसकी किरणें जब संसार में आती हैं तो संसार सुषुप्ति से जागरूक में आ जाता है। मेरे प्यारे वह मानव का समाज का प्रकाशक बन करके आता है। नेत्र अपना ! कार्य प्रारम्भ कर देते हैं। तो विचार क्या वह जो सूर्य है जिसको वेद ने इन्द्र कहा है और उसको मानो रथी कहते हैं क्योंकि रथी पर नाना प्रकार की किरणों पर विराजमान हो करके वह संसार को प्रकाश देता है। अथवा नाना प्रकार की वनस्पतियों को प्रकाश में लाता है। वह जो नाना प्रकार की वनस्पतियाँ हैं उनमें जो गुण हैं उन गुणों का अनुवादन करने के लिए उन गुणों को प्रकाश में लाने के लिए हमारे यहाँ आयुर्वेदाचार्य होते आए हैं।

औषध विज्ञान

परम्परागतों से ही, आयुर्वेदाचार्य होते हैं, परन्तु वह जो नाना प्रकार की जो वनस्पति हैं, उसके गुणों को जानने वाले और जब उसके गुणों को जानने वाले वैद्यराज होते हैं तो मुनिवरोंदेखो !, नाना प्रकार की वनस्पतियों को सूर्य की किरणों से अंकित करता है अथवा उसका अनुसन्धान करता हैं। वह जो आयुर्वेद महापण्डित होता है वह अग्नि की आभाओं को सबसे प्रथम वह जानता है। और अग्नि की धाराओं को जानने वाला ही मानव बेटावह जो वनस्पति है इसमें क्या क्या गुण हैं !? क्या क्या कार्य करती है? उनका वह निर्णय अथवा उनको क्रियात्मक रूप में लाने का प्रयास करता है। तो विचार क्या कि हमारे यहाँ प्रायः औषध विज्ञान होना चाहिए।

वर्ण व्यवस्था

हमारे यहाँ, परम्परागतों में जब आयुर्वेद के महापण्डिता थे तो आयुर्वेद के पण्डिता जब विराजमान रहते तो मुनिवरोंदेखो !, आचार्य कुल में, ब्राह्मण कुल में जब ब्रह्मचारी

प्रविष्ट होती तो मुनिवरोंदे !खो, उसके मस्तिष्कों पर आयुर्वेद के कथनानुसार नाना प्रकार की औषधियों का लेपन करते। और उस लेपन से मानव की बुद्धि का, मस्तिष्क का यह ज्ञान होता था कि यह अमुक बालक, अमुक वर्ण में जाने वाला है। परन्तु देखो, वर्ण व्यवस्था का विकास और उसकी प्रतिभा का जन्म हो जाता तो मुनिवरोंदेखो !, परिणाम मैं इस वाक् को मैं वर्ण व्यवस्था में जाना नहीं चाहता हूँ। परन्तु वे आयुर्वेदाचार्य आचार्य जन निर्णय करते और निर्णय करने के पश्चात उसको वर्ण व्यवस्था में धारण कर देते तो उससे मुनिवरोंदेखो !, समाज का जो निर्माण है वह आचार्यों के द्वारा विवेकियों के द्वारा उसकी उदबुद्धता होती है।

तो मानो मुझे बहुत परम्परा का साहित्य, परम्परा का वाक् स्मरण आता रहता है। परन्तु उस वाक् में मैं सदैव यही कहा करता हूँ कि वह समाज तथा आचार्य जगत ऊँचा होना चाहिए। परन्तु वह जो सुचरित्र होता है सुविचारक होता है विवेकी होता है। उस विवेकी की चर्चा मान में होती है परन्तु उसका तिरस्कार करने वाला कोई नहीं होता। मानो तिरस्कार अशुद्ध वाक्यों का प्रायः तिरस्कार होता ही है। और वह जो तिरस्कार है वह सदैव मानवता में परणित रहता है।

तो मेरे प्यारेआज मैं यह उच्चारण करने चल !ा हूँ कि हमारा वेदमन्त्र क्या कहता है? वेद की आभा हमें कौन से मार्ग के लिए पुकार रही है? वेदवाणी वेद में कोई ऐसा शब्द नहीं है जिसमें मानव समाज का निर्माण न हो। जिसमें राष्ट्रवाद का निर्माण न हो जिसमें चरित्र का निर्माण न हो। वेद सबसे प्रथम चरित्र की घोषणा करता है। उसके पश्चात सामाजिक जीवन की घोषणा करता है। तो विचारना यह है कि हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, मुनिवरोंदेखो !, आयुर्वेद के महा पण्डिता उस सूर्य विज्ञान को जानने वाले परम्परागतों से रहे हैं। वह हमारा जन्म सिद्ध अधिकार रहा है। परन्तु ऋषि मुनियों ने ऐसी ऐसी औषधियों को एकत्रित किया है जिन औषधियों से मुनिवरोंदेखो !, मानव का विकास होता है। और ऐसी ऐसी औषध भी प्रायः होती है। जिनका लेपन करने से मुनिवरोंदेखो !, मानव के उन संस्कारों को भी जागरुक किया जाता है और वह जो मानव के संस्कार अन्तःकरण में है अब वह ऐसा क्यों? क्योंकि औषधि जो होती है।

वह इस माता वसुन्धरा के गर्भ में होती है। वह प्रकृति की मानो जटा है, उन जटाओं के प्रत्येक स्वरूप को जानना है। इसी प्रकार सूक्ष्मता में जाओगे तो यह जो मन है वह भी प्रकृति की जटा है। प्रकृति की जो जो जटाएं है अहा उनको जानना उन जटाओं के प्रत्येक स्वरूप को जानना। इसी प्रकार सूक्ष्मता में जाओगे तो यह जो मन है यह भी प्रकृति की जटा है अब जटा के कितने स्वरूप हैं तो मुनिवरोंदेखो !, इसीलिए औषधियों से इसका बहुत सम्बन्ध है। मन का और औषधियों का बहुत सम्बन्ध है।

तान्त्रिक

परन्तु बहुत सा मनोविज्ञान भी कार्य करता है। जैसे मनों में किसी प्रकार का मानो देखो, प्रकृति के आवेश आते रहते हैं। उन आवेशों को शान्त करने के लिए मानो देखो, तांत्रिकता में कुछ वाक् आते है। तो मुनिवरोंदेखो !, तांत्रिकता वह कुछ नहीं हो पाता, वह केवल यह है, क्या उसमें जिस मानव की मन को आशक्ति होती है, उस आशक्ति के आधार पर मनुष्य जो रुग्ण होते हैं वह मन में विश्वास को धारण करने से वह सर्वत्र नष्ट हो जाते हैं। तो परिणाम यह कि मानो देखो, कि हमें मन को विचारना है। और मन को भी हमारे यहाँ रथी कहा जाता है, वह मन भी इन्द्र है, हे इन्द्रमुनिवरो देखो !, वह भी इन्द्र है जो अन्तरिक्ष में मुनिवरोंनाना प्रकार की वृष्टि का स्वामी बनता है !। और वह वकासुर को शान्त करता है जब वह मुनिवरोंदेखो !, वह इन नाना प्रकार की वृष्टि में सहवृत होता है तो मुनिवरोंदेखो !, वह इन्द्र है। वह इन्द्र सूर्य है, वह इन्द्र वायु है। इन्द्र हमारे यहाँ पर्यायवाची शब्दों में आता है। तो वह जो वृष्टि है मुनिवरोंदेखो !, सूर्य जो रथी बना हुआ है उसकी जो अश्व नाम की किरणें हैं, कांति है, मानो वही तो समुद्र को तपाती है, समुद्रों को ऊर्ध्वा बनाती हैं और चन्द्रमा जब मुनिवरोंदेखो !, सोम बन करके वह सूर्य की किरणों को अपना आश्रित बन करके जब मुनिवरोंदेखो !, उसकी आभा कांति बन करके समुद्रों से मिलान करती है। तो समुद्रों से मानो देखो, वह सोम चन्द्रमा को कहते हैं सोम जल को कहते हैं उसकी कांति के साथ साथ वायु का सम्बन्ध करके अग्नि की उसमें पुट लग करके ही मुनिवरोंदेखो !, वह नाना जल

ऊर्ध्वागति को वह चला जाता है। उर्ध्वागति को जब प्राप्त होता है ऊर्ध्वा गति में उसका मन्थन किया जाता है। तो जब मन्थन होता है अग्नि के द्वारा वायु के द्वारा, मुनिवरों ! देखो, सूर्य की नाना किरणों इसमें अपना कार्य करती हैं। अथवा मन्थन करती है वह जो मन्थन करती हैं तो उसमें मन्थन करने के पश्चात वृष्टि प्रारम्भ होती है। और वह जो वृष्टि है मुनिवरोंदेखो !, वह वृष्टि एक महान वत कहलाई जाती है वह वृष्टि मुनिवरों ! इन्द्र के द्वारा मेघों के द्वारा होती है।

गौ का महत्व

देखो, वह जो वृष्टि है, अब हमारे यहाँ वैज्ञानिकों ने वृष्टि यागवेत्ताओं ने यह निर्णय किया कि हम क्या मानो देखो, समुद्रों को तपाने के लिए हम सूर्य की किरणों में अग्नि का भान करना चाहते हैं, अग्नि का हम याग करना चाहते हैं, तो मुनिवरोंदेखो !, वातावरण में उस वातावरण को लाना होगा, जिस वातावरण से सूर्य की किरणों का सम्बन्ध रहता है, और जिन औषधियों से सूर्य का सम्बन्ध रहता है। उन औषधियों को एकत्रित करने के पश्चात मुनिवरोंदेखो !, उसमें अग्नि प्रधान होती है। उन औषधियों में अग्नि जब प्रधान होती है उन औषधियों को एकत्रित करके और मुनिवरोंदेखो !, हमारे यहाँ गो घृत को श्रेष्ठतम माना गया है क्योंकि मैंने उस वाक् को बहुत पुरातन काल में कहा भी है आज भी मैं उच्चारण किए देता हूँ मानो यह जो गो नाम का जो पशु है उसमें नाना यन्त्र लगे हुए हैं। जो प्रभु के विज्ञान के साथ साथ उसकी वैज्ञानिकता ! वह जो यन्त्र हैं वह वो अन्नाद ग्रहण करते हैं जिस अन्नाद !दृष्टिपात होती है। मेरे प्यारे को मेरे प्यारे दूसरे प्रकार का अन्न कहलाया गया है। जो पशुओं को सृष्टि के ! प्रारम्भ में प्रदान किया गया था। उस अन्न को पाते हैं। उन वनस्पतियों को पाते हैं देखो !और मुनिवरों, वह जो नाना प्रकार की किरणों हैं वह जो अश्व हैं देखो, उस रथी के इन्द्र नाम के रथी गो नाम के पशु से विशेषकर सम्बन्ध होता है।

मुनिवरोंदेखो !, जब गो नाम का पशु मुनिवरोंदेखो !, दुग्ध देता है प्रसन्न हो करके उस समय उसका जो सूर्य स्वर होता है वह गतिवान होता है, जिस गो का सूर्य स्वर

गतिवान होता है तो जानो कि उसमें सूर्य की स्वर्ण विधि नाम की नाड़ी का सम्बन्ध, केतु नाम की किरण का सम्बन्ध, और मुनिवरोंदेखो !, सूर्य स्वर के गो नाम के पशु के साथ होता है। मानो देखो, उसका जो रीढ़ का विभाग है रीढ़ के विभाग में उसमें स्वर्णतव और उन औषधियों को उन किरणों को एकत्रित करना प्रकृति से अथवा सूर्य की किरणों से, इन्द्र से वह लेकर के श्वांस की गति और रीढ़ की गति एक सीमा में दोनों का जब सन्निधान हो जाता है सन्निधान होने के पश्चात वह जो नाना प्रकार के यन्त्र है नाड़ियों के द्वारा उन यन्त्रों में वह चेतना जाती है, अग्नि जाती है वह धाराएं जाती हैं। उन धाराओं से गो नाम के पशु ने जो अन्नाद पाया था उस अन्नाद में से मन्थन हो करके और वह स्वर्ण की किरण मन्थित हो जाती हैं मुनिवरोंदेखो !, वह जो दुग्ध है वह उसका उसको मन्थन किया जाता है और मन्थन करने के पश्चात उसको गो घृत कहते हैं वह जो गो घृत है उसमें सूर्य की प्रधानता है इसीलिए वैद्यराजो ने कहा है वैद्यराजों ने कहा है कि यह जो गो घृत है अमृत ब्रह्मे यह अमृत है। और उसको अमृत क्यों कहते हैं क्योंकि इसमें अग्नि प्रधान है, स्वर्ण प्रधान है, मुनिवरोंदेखो !, स्वर्ण और अग्नि की दोनों की प्रधानता से ही और यही औषधियों की प्रधानता वाली औषधियों को एकत्रित करके जब यागवेत्ता वृष्टि याग करता है तो मुनिवरोंदेखो !, वह सूर्य की किरणों तक उसका स्थान होता है अथवा वह किरणे मन्थन करके अपने में शोषण करती है वातावरण अग्निमय बन जाता है। अग्निमय बन करके मुनिवरोंदेखो !, उसी प्रकार की समिधा होती है।

पान्ति याग

अब मुनिवरोंदेखो !, समिधा जैसे हमारे यहाँ जैसे पीपल का वृक्ष है उसमें अग्नि प्रधान है, इसमें सूर्य की किरणें अधिक प्रधान हैं। उससे पीपल के वृक्ष के जो कण होते हैं उन कणों में भी स्वर्ण की मात्रा होती है मानो उनमें आभूषण की मात्रा होती है तो वह मानो जब उसकी समिधा हो करके और आक की समिधा मुनिवरोंदेखो !, आक की समिधा का वास्तव में आचार्य ने वहिष्कार किया। परन्तु वृष्टि यज्ञ में यह आता है।

उसको हमारे यहाँ पान्ति याग कहा जाता है। वास्तव में तो पान्ति याग का अभिप्रायः यह है कि पान्ति याग उसे कहते हैं जहाँ पांचों वस्तु हों। ऐसा कहा जाता है मानो जैसे हमारे यहाँ पांच ज्ञानेन्द्रियाँ मानी जाती हैं तो मुनिवरोंदेखो !, पांचो ज्ञानेन्द्रियों में, जहाँ ज्ञान प्रधान होता है, वहाँ अग्नि प्रधान होती है। क्योंकि हमारे यहाँ ज्ञान को भी अग्नि कहते हैं, और वह जो ज्ञान रूपी अग्नि है उसका सम्बन्ध मानो देखो, पांचों ज्ञानेन्द्रियों से रहता है पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ ही हमारे ज्ञान का मुख्य कारण बनती है। तो मुनिवरों ! देखो, वह जो ज्ञानेन्द्रियाँ हैं उस ज्ञानेनिद्रयों का सम्बन्ध पान्ति याग से रहता है। पान्ति याग का अभिप्रायः यह कि पांचों ज्ञान इन्द्रियों का समावेश करते हुए, मन के द्वारा और मन का समावेश बुद्धि में और बुद्धि का समावेश मानो अन्तःकरण में, और अन्तःकरण का समावेश अहंकार में मुनिवरोंदेखो !, चित्त में जब सब का समावेश हो जाता है और वह मुनिवरोंदेखो !, वह जो एकोकी आत्मा, इस शरीर में याज्ञिक बना हुआ है, वह जो पान्ति याग करने वाला है, मुनिवरोंदेखो !, वह उसमें सुगठित होता हुआ मेरे प्यारे ! अब जिनको वह जब वह एक दूसरे में समाहित हो गएं हैं। उस समय आत्मा का जो ज्ञान है आत्मा का ज्ञान केवल्य है, मात्रा में सूक्ष्म बन करके अब मुनिवरोंदेखो !, वह केवल्य आनन्द हो जाता है उसको आनन्द कहते हैं।

तो यहाँ पान्ति याग का अभिप्रायः यह कि पांचों इन्द्रियों को हम ज्ञानेन्द्रियों को समावेश करने की हमारी प्रवृत्ति होनी चाहिए। जब वह एक दूसरे में समाहित हो जाते हैं अथवा समावेश हो जाता है इनका तो मुनिवरोंदेखो !, वह पान्ति याग हो जाता है। पांचों को ले करके जैसे मुनिवरोंदेखो !, वह पीपल है, आक हैं, और मुनिवरोंदेखो !, जैसे अश्वगन्ध माना जाता है, स्वातीति है, गुलवृति है। इन पांचो प्रकार की समिधा को लेकर के अग्नि में याग करते हैं। उसको पान्ति याग कहते हैं मुनिवरोंदेखो !, इसी को हमारे यहाँ जैसे पान्ति याग होता है मेरे प्यारे महानन्द मुझे जी ने एक समय ऐसा कहा ! कि पांचों प्रकार के मांसों से लेकर के याग करने का नाम पान्ति याग है। परन्तु प्रायः ऐसा नहीं। ऐसा जो मानव करते हैं पांचों पशुओं का माँस ले करके जो याग करता हैं वह पशु और पामर व्‌्यक्ति होते हैं मानो देखो, उनका वैदिक से बहिष्कार

कर देना चाहिए। बेटा मैं इस वाक् को इसीलिए उच्चारण कर रहा हूँ आज मैं उन ! वाक्यों में नहीं जाना चाहता हूँ कि संसार क्या क्या करता रहा है। परन्तु यहाँ वैदिक साहित्य यह कहता है कि पान्ति याग होने चाहिए। और पान्ति याग एक तो साधारण याग होते हैं उस पान्ति याग में ही मुनिवरों हमारे यहाँ वृष्टि याग का समावेश हो ! देखो !जाता है। इसी प्रकार जैसे मुनिवरों, पांचों ज्ञानेन्द्रियों को अपने में समाहित करने वाला मानो यह जो अन्तरात्मा है अन्तर्मुखी बन करके इन पांचों को अपने में वशीभूत अपने में समाहित करते हुए जो इनका याग करता है और एक सूत्र में ला करके बेटा ! से मिलान होता है अथवा मानो आवागमन के जो नाना आभाएं हैं उससे वह !प्रभु ज्ञान के एक सूत्र में बिखरा हुआ न रहने से उसको !विमुख हो जाता है। मुनिवरों पान्ति याग कहा जाता है। इसी प्रकार मुनिवरोंजो बिखरे हुए अग्नि के कण हैं !, अग्नि के जो परमाणु हैं उनको एक सूत्र में लाना है तो मुनिवरोंहमें नाना समिधा के द्वारा !, औषधियों के द्वारा याग करना है और वातावरण को उसी के अनुकूल बनाना है।

तो मुनिवरोंप्रायः वही हो जाता है। मुझे स्मरण आता ! रहता है बेटादेखो !, महाराज अश्वपति के यहाँ एक समय वृष्टि याग हुआ। तो जब वृष्टि याग हुआ तो राजा ने नाना औषधियों को एकत्रित किया। उनके द्वारा वह जो याग हुआ पान्ति याग हुआ उसके पश्चात वृष्टि याग हुआ। उसमें दोनों समावेश हो गएं तो मुनिवरोंदेखो !, इसका सम्बन्ध मानव के विचारों से सम्बन्धित रहता है, मानव के विचार इतने महान पवित्र होने चाहिए, इतना अहिंसा से विमुख देखो, अहिंसा से सुगठित होने चाहिए, हिंसा से दूर होने चाहिए। ऐसा जो याज्ञिक पुरुष होता है वह मुनिवरोंदेखो !, अपना पान्ति याग करता है।

तो आज बेटामैं अधिक ! विवेचना देने नहीं आया हूँ, विचार विनिमय यह कि मुनिवरों ! देखो, वह कल का एक विषय तुम्हारे समीप अधूरे प्रगट कर गया था वह यह कि महर्षि बाल्मीकि की चर्चा कर रहा था। महाराजा बाल्मीकि ने मेरे प्यारे जब वह ! रत्नागीरि से गायत्री यज्ञ में परणित होने लगे, तो देवर्षि नारद से कहा कि महाराज ! मेरे कल्याण का मार्ग, आप ही दे सकते हैं। मैं इस द्रव्य को नहीं चाहता। यह द्रव्य

ब्रह्मचारियों के मध्य में रहना चाहिए। क्योंकि यह याग का द्रव्य है। हे प्रभु तो मुनविरो ! जब यह वाक्य उन्होंने प्रगट किया और देखो, अपने गृह में अपने आश्रम को उन्होंने प्रस्थान किया। देवर्षि नारद अपने आश्रम में प्रवष्टि हो गए तो देवर्षि नारद जी ने उन्हें यह उपदेश दिया कि अब तुम अब पान्ति याग करो। मानो देखो, उन्होंने लगभग एक वर्ष तक देवर्षि नारद ने आसनों को सिद्ध कराया आसनों को सिद्ध करा करके वह कहा कि तुम वह प्रयत्न करो जिससे तुम्हारा चित्त शान्त हो। अब मुनिवरोंदेखो !, चित्त शान्त उस काल में होता है जब मानव के द्वारा न तो क्रोध रहे, न ममता रहे और न मोह रहे ममतव जिसे कहते हैं मेरे प्यारे और न अभिमान रहे अहा उसके पश्चात मेरे ! यह सर्वत्र वस्तु समाप्त होन !प्यारेे के पश्चात तप ही तप आ जाएगा।

तपना

मुनिवरोंतपना किसे कहते हैं !? तपना कहते हैं जो पान्ति याग में इन्द्रियों का तापना है। इन्द्रियों को संयम में लाने वाला जो पुरुष है इन्द्रियों को जब सिद्ध कर लेता है, इन्द्रियों में अपने मन की प्रवृत्तियों को समावेश कर लेता है तो मेरे प्यारे वह पान्ति ! याग करने वाला पुरूष मानो देखो, गायत्री और छन्दो का ऋषि बन जाता है हमारे यहाँ परम्परागतो में मानो देखो, छन्दों और गायत्री ऋषि कहलाते थे गायत्री और छन्दो का अभिप्रायः यह कि गायत्री तो गाई जाती है। और छन्दों का धारण किया जाता है। छन्द उसे कहते हैं जो आभा है। मेरे प्यारेवह आभाओं का जन्म होता है !, उन आभाओं की जो चित्त में तरंगे उत्पन्न होती हैं उन चित्त की तरंगों का नाम मुनिवरोंदेखो !, छन्दावली, उन छन्दों से उन तरंगों का मानो देखो, अन्तःकरण में ही समावेश कर देना चाहिए।

गायत्री गान से प्राप्ति

मेरे प्यारे जैसे महर्षि पातञ्जलि ने और भी आदि ऋषियों ने जैसे चित्त की वृत्तियों को ! निरोध करने को कहा है, मानो देखो, वह पान्ति याग कहलाता है। मुनिवरोंदेखो !, जब महर्षि बाल्मीकि ने विराजमान होकर के गायत्री और छन्दों छन्दावली ऋषि बने। तो

वह क्योंकि यह शास्त्रीय और वैदिकता से सुगठित कहलाई जाती है विचार यह कि मानो जब वेद के रूप को वेद के मन्त्र को गाया जाता है। वेद तो गाया जाता है और जब ऊँचे स्वर से मानव गाता है तो मुनिवरोंदेखो !, उसमें दो वस्तु आ जाती है। सबसे प्रथम जो मानव वेद की गायत्री को गाता है उसकी वाणी में सतवाद आ जाता है। और जब वाणी में सत्वाद आता है तो सत् में मधुरपन आ जाता है। मुनिवरोंदेखो !, जिसकी वाणी में सत्वाद भी हो और मधुरपन भी हो वह मानव तो संसार में कृतज्ञ कृतज्ञ हो जाता है। मानव की वाणी में सतवाद तो है परन्तु मानव की वाणी में यदि मधुरपन नहीं है, तो उस मानव के अन्तःकरण का जो सुकृत है, वह हनन हो जाता है। मेरे प्यारे ! देखो !ऐसा गायत्री और छन्दों से सिद्ध होता है। मुनिवरों, महर्षि बाल्मीकि ने लगभग चौरनवं वर्षों तक इस प्रकार का तप किया। उन्होंने सबसे प्रथम यह विचारा कि मैंने इस वाणी से कितना कठोर और मैने भय दिया है इस वाणी से हे प्रभु मेरी वाणी ! जो अन्तरात्मा !को सदैव ऊँचा बना अब गायत्री का यज्ञन करने वाला प्राणी मुनिवरों देखो !में याग करता है पान्ति याग मुनिवरों, उसको दो वस्तु प्राप्त हो जाती है। वास्तव में तो चार वस्तु प्राप्त होती हैं। सबसे प्रथम सत्य उच्चारण करना द्वितीय सत्य में मधुरपन आना और मुनिवरोंदेखो !, तप आना है और तप के पश्चात मेरे प्यारे तप अक्रोध में ! परणित हो जाना, यह देखो, गायत्री गान से प्राप्त होती है। परन्तु जो गाता नहीं है वह मानव जीवन को लेकर के संसार में अभागा बना रहता है।

चित्त का भोजन

मेरे प्यारेमुझे वह काल भली भांति स्मरण आता रहता है !, जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा परणित होते थे, तो वे गायत्री को गाते थे। और हमारे द्वारा वह गान रूप में परणित कराते थे। अब गाता कौन मानव है? जिसका अन्तःकरण शान्त होता है, जिसका चित्त शान्त होता है और चित्त शान्त उस काल में होता है जब चित्त का भोजन उसे प्राप्त होने लगता है। चित्त का भोजन क्या है? बेटा अन्तःकरण अथवा ! चित्त का भोजन है ज्ञान। चित्त का भोजन है मानो यह जो विषय हैं नाना प्रकार के

जो विषय स्वादन में इनसे जब वह उपराम हो जाता है। तो मुनिवरोंदेखो !, वह चित्त का भोजन ज्ञान है, विवेक है चित्त का जब अन्न प्राप्त हो जाता है तो चित्त स्वतः शान्त हो जाता है। और जब चित्त शान्त हो जाता है उसकी वाणी में मौनपन आ जाता है और वाणी में छन्द आ जाते हैं उस वाणी में ओजस्तव आ जाता है। वह मानव संसार में बेटादेखो !, सौभाग्यशाली है। हे मेरे प्यारेतेरे राष्ट्र में !प्रभु !, तेरी विद्या में तेरे विज्ञान में क्या नहीं है भगवन तेरी इस पवित्र विद्या को अध्ययन करते हुए !हम तो भगवन ! मानो हम तो चकित हो जाते हैं। और हमें ऐसा भान होने लगता है जैसेमाता का पुत्र माता के अनुकूल विराजमान हो जाता है। और माता के अनुकूल कर्म करने लगता है। माता उससे पुलकित होती हैं। माता के विपरीत चलता है, माता को माता के अनूकुल कर्म करने लगता है माता उसे प्रीति देती है माता के विपरीत चलता है माता को अशुद्ध वचन उच्चारण करता है तो माता उससे दूरिता हो जाती है। जब माता दूरिता हो जाती है। तो प्रीति कौन दे सकता है? तो यह जो गायत्री माँ है यह तो ममता है, यह चौबीस अक्षरों वाली गायत्री है चौबीस तत्त्व हमारे शरीर में भासतें है मुनिवरोंदेखो !, तीन तन्मात्राएं हैं, तीन उनके शब्द हैं, इस प्रकार मुनिवरोंदेखो !, यह मानव को ऊर्ध्वा बनाने के लिए सदैव यह जो माँ गायत्री है, अक्षरों वाली चौबीस अक्षरों वाली यह छन्दों के सहित जब छन्दो के सहित मुनिवरोंदेखो !, अन्तरात्मा में याग करते हो पान्ति याग तो मुनिवरोंदेखो !, मानव को सर्वत्र वस्तु प्राप्त हो जाती है।

मेरे प्यारेवह वस्तु क्या है !? वह वस्तु है मेरे प्यारे ममतव नहीं रहता उस मानव ! में कर्त्तव्य की भावना आ जाती है। वाणी में मधुरपन हो जाता है। वह जो उसका एक !तप है वह नितान्तर बन जाता है और वह शब्द तप उच्चारण करता है मेरे प्यारे दे !मानव मुनिवरोंखो, मुझे एक समय मुझे ऐसा स्मरण है, मैं अपने पूज्य गुरुदेव के द्वारा विराजमान था। मैंने एक समय याग किया पूज्यपाद गुरुदेव के कथनानुसार, वे नित्य प्रति याग कराते थे। देखो, अग्न्याधान कराते थे, तो वे कहा करते थे कि जैसे यज्ञ वेदी में अग्न्याधान करते हैं इसी प्रकार तुम अपने अन्तःकरण में भी अग्न्याधान करो अन्तःकरण का अग्न्याधान क्या है? मुनिवरोंदेखो !, मानो यह जो ज्ञान, कर्म, उपासना

है। इसकी समिधा बनाओ और वह जो उपासना है उसका घृत बनाओ और वह मुनिवरोंदेखो !, जब अन्तःकरण में घृत रूपी उपासना रूपी घृत की जब स्वाहा कह करके आहुति दोगे तो अन्तःकरण में जो संस्कार है। वह उदबुद्ध हो करके मानो वह जिसके प्रति तुम अग्न्याधान करते हो, वह देवता जो तुम्हारे शरीर में वास कर रहे हैं, वे देवता जागरूक होकर के और तुम देववत में जा करके परम पिता परमात्मा को प्राप्त हो जाओगे। जैसे मुनिवरों जैसे अग्नि सदैव मानो अग्नि की ऊर्ध्वा गति होती है ! है वह भी ऊर्ध्वा में रहने वाला कण कण में !उसका सखा है। आत्मा का सखा प्रभु व्याप्त है तो मनिवरों उससे मानो देखो, यह जो ज्ञानेन्द्रियाँ है, कर्मेन्द्रियाँ हैं उनके विषयों की सामग्री बना करके तुम याग करोगे तो तुम्हारा जीवन वास्तव में सौभाग्यशाली बन जाएगा।

गुरुदेव का अध्ययन

आओ मेरे प्यारे मैं अधिक विवेचना तो देने नहीं आया हूँ विचार यह कि मैं उच्चारण ! कर रहा था कि जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अग्न्याधान किया तो मैंने तब एक पुस्तक का अध्ययन मानो एक पोथी का मैं अध्ययन करने लगा और वह पोथी अकल्याण की थी, अकल्याण की क्या उसमें असुरों का वर्णन था। तो पूज्यपाद गुरुदेव ने मेरा आश्रम से बहिष्कार कर दिया। जब बहिष्कार कर दिया तो मानो देखो, बारह वर्षो तक बहिष्कार रहा। तो मैंने अपने पूज्य गुरुदेव से कहा, भगवनआप !ने ऐसा क्यों किया? उन्होंने कहा हे तुम पामर हो क्योंकि तुम तपस्या करना नहीं चाहते हो। तुम ! मानव नहीं हो। जब तुम दैत्यों के विवरण का अध्ययन करोगे तो तुम्हारे द्वारा असुर प्रवृत्ति आ जाएगी और वह जो असुर प्रवृत्ति है वह तुम्हारे सुकृत को हनन करने लगेगी इसीलिए तुम अधिकारी नहीं हो। तो मुनिवरों उसको त्यागा गया तो विचार ! यह कि जो मानव अग्न्याधान करता है और अग्नयाधान के पश्चात् जिस पोथी का अध्ययन करता है मानो यदि वह अकल्याण की है तो उस मानव को याग करने का !अधिकार नहीं होता इस संसार में तो विचार विनिमय क्या तो बेटामेरे पूज्यपाद गुरुदेव

ने मेरा बारह वर्ष तक बहिष्कार किया और यह कहा कि तुम गायत्रियों का जपन करो। परन्तु जो गायत्री का जप नहीं कर पाता, गायत्री और छन्दों को अपने जीवन में नहीं लाता, अकल्याण की पोथियों का अध्ययन करता है उस मानव के सात जन्मों का पुण्य समाप्त हो जाता है, ऐसा मुझे पूज्यपाद गुरुदेव ने अध्ययन कराया।

तो मुनिवरोंदेखो !मैं उनके के चरणों में ओत प्रोत हो गया और मुनिवरों !, लगभग उनकी वन्दना की मेरे प्यारे उनकी चरणामयी जैसे ममतव प्रव्हे मानो पूज्यपाद गुरुदेव ! ने मुझे आज्ञा दी कि आओ और अध्ययन करो। मेरे प्ारे विचार विनिमय यह कि ! हम याग का कर्म करना चाहते हैं। मैं यागों के सम्बन्ध में अधिक विवेचना करना नहीं चाहता। परन्तु याग करना अवपे मानव शरीर का। याग करना है मानव शरीर का क्योंकि इसको पान्ति याग कहा जाता है इन्द्रियों का अध्ययन करने के पश्चात्। मेरे प्यारे मैं अधिक विवेचना देने नहीं आया हूँ। आज मैं केवल यह उच्चारण करने आया ! की उपासना करते हुए और अपने मानव जीवन को ऊर्ध्वा गति में ले !हूँ कि हम प्रभु जाते हुए? हम सदैव विवेकी बनें। विवेकी बन करके साधारण समाज को भी ऊँचा बनाएं और मुनिवरोंदेखो !, इन्द्र की उपासना करते रहें। वह जो इन्द्र देव है जो वास्तव में रथी कहलाता है वह इन्द्र हमारा कल्याण करने वाला है।

तो मैं उच्चारण कर रहा था, महर्षि बाल्मीकि की चर्चा। महर्षि वाल्मीकि ने जब इस प्रकार का अध्ययन किया तो देवर्षि नारद आते और उनकी परीक्षा लेते। उन परीक्षा में वह पूर्ण हो जाते। तो मुनिवरोंदेखो !, परिणाम यह हुआ कि महर्षि बाल्मीकि मुनिवरों ! इतने ऊर्ध्वा ऋषि बने कि वे सदैव उसका स्वागत करते थे जो भी अतिथि आता था, मुनिवरोंदेखो !, जहां मानव के विचार ही तो हैं। जब मानव मेरे प्यारे जो मानव का ! हनन करके उनके द्रव्य को धारण करता हो, मेरे प्यारे वह मानव अतिथियों की सेवा ! करने लगे। अरे, वही तो मानव का आत्मिक याग है जिसको याग कहते हैं। जो मानो सदैव इतनी कटुता में परणित रहते, उनकी वाणी में महानता न थी। परन्तु महानता आ गई। परन्तु वह तप की महिमा है, वह गायत्री माँ की करुणा है, वह प्रभु की ! देखो !उसकी आज्ञा का पालन करना हमारा कर्तव्य है। मेरे प्यारे !महानता है बेटा,

इससे हमें ऊँचा बनना है। ऊँचा बनते हुए विचार विनिमय क्या आज मैं यह उच्चारण कर रहा हूँ कि हम सदैव देखो, मेरी माता हो पिता हो अथवा मानव हो, पति हो, पत्नी हो प्रत्येक को अपने अपने कर्तव्य में सदैव दक्ष होना चाहिए। और गाना गाना चाहिए। वह गान क्या है? वह गान है गायत्री जो स्वरों से गाई जाती है। वेद जो स्वरों से गाया जाता है और गाने का अभिप्रायः यह कि जो अपने अन्तःकरण में धारण किया जाता। मेरे प्यारेउसको हमें सदैव धारण करना है !।

महर्षि वाल्मीकि ने, रामायण का साहित्य लेखनी वद्ध किया। जो जो साहित्य उनके समीप जाता रहा वह लेखनी वद्ध होता रहा। राम के जीवन से, ले करके राम के मरण पर्यन्त लेखनी वद्ध किया। जब भगवान राम ने यह विचारा कि मेरे गृह में विवेकी बालक का जन्म हो, तो उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि हे लक्ष्मण सीता को महर्षि ! वाल्मीकि के आश्रम में त्याग करके आओ। मानो क्योंकि वह यहाँ वायुमण्डल देखो, नद का किनारा नदी का तट है उसी तट पर मानो देखो, मेरी पत्नी स्वच्छ वायुमण्डल में जन्म देगी तो राष्ट्र का कल्याण होगा।

तो मेरे प्यारेवह साहि !त्य मुझे स्मरण आता रहता है। राम की आज्ञा थी, मुनिवरों ! देखो, राम ने, लक्ष्मण को आज्ञा दी और लक्ष्मण सीता को लेकर के वाल्मीकि आश्रम में ले गए। मेरे प्यारेराम ने ऐसा क्यों किया !? प्रत्येक मानव मेरे प्यारे महानन्द जी ! भी कहा करते हैं। राम ने इसीलिए किया क्योंकि ऊँचा जो बालक का जन्म होता है वह स्वच्छ वायु में होना चाहिए मेरे प्यारे गृह का और राष्ट्र का जो वातावरण था ! वह उनके आँगन में आने वाला नहीं था क्योंकि वह अपने जीवन में स्वयं त्यागी और तपस्वी रहे।

तो मुनिवरोंदेखो !, वहाँ देखो, लव को जो जन्म हुआ, वह वाल्मीमि आश्रम में हुआ। और कुश नाम का जो बालक था वह वाल्मीकि को कहीं देखो, कुशा से प्राप्त हुआ, वह मानो देखो, वह मानो देखो, दोनों की पालना माता सीता के आँगन में हुई तो मुनिवरोंदेखो !, यह अहा ब्रह्मे यह मर्यादा होती है। हमारे परम्परा में मर्यादा थी। क्या ऋषि मुनियों के द्वारा बालक का जन्म होना चाहिए उन आश्रमों में होना चाहिए जो

जहाँ स्वच्छ वातावरण हो। राष्ट्रीयता मानो देखो, आहार होना चाहिए राष्ट्र का क्या तो मुनिवरोंदेखो !, वह अब बाल्मीकि के आश्रम में मानो देखो, सन्तान का जन्म होता है।

वाल्मीकि आश्रम में लव कुश का जन्म

विचार यह कि देखो, वाल्मीकि आयुर्वेद के महा पण्डिता थे। आयुर्वेद की औषधियों को पान कराते पान कराने पश्चात बालक का जन्म, बालक माता के गर्भस्थल में ही उन औषधियों को माता पान करती वह स्वच्छ बन जाती थी तो मुनिवरोंदेखो !, उसके द्वारा ऋषि मुनियों के आश्रम में आयुर्वेद के यहाँ पंडित होते थे। उन पण्डितों के यहाँ उनका जन्म होता बालक उनको पान करते मानो देखो, मधु स्वर्ण का दोनों का पात बनाया जाता था। और पात बना करके जब बालक माता के गर्भ से दूरी होता तो मुनिवरों ! देखो, वह गर्भ के जो विशेषज्ञ होते वह उसको देखो, मधु और स्वर्ण दोनों का का पान कराते बालक को जब उसकी रसना पर उसका स्पर्श करते (कृपया ध्यान दें यह आगे का यह प्रवचन शब्द ध्वनि के रूप में उपलब्ध नहीं है(वह बालक के उदर में जाता और जहाँ जहाँ तक वह जाता वह बालक का हृदय स्पष्ट और शुद्ध और पवित्रहोता चला जाता था। उसका जो विष वर्तमान होता, शरीर में जो विष होता वह समाप्त हो जाता। मेरे प्यारेमाताओं को चाहिए कि वह माता स्वर्ण का रुद्रा मधु !, सेमकृतिभा और अमृता यह चार औषध होती हैं। इन चार औषधियों का रस बनाया जाता है। उस रस को बालक का जन्म होते ही उसकी रसना पर स्पर्श करना चाहिए। जिससे उसके दोष समाप्त हो जाए। यदि हमें अन्तःकरण का किसी प्रकार का दोष आ गया तो वह दूर होना चाहिए। तो इस वाक्य को आयुर्वेद के पंडिता जानते हैं।

इस सम्बन्ध में मैं अधिक विवेचना देना नहीं चाहता हूँ। विचार विनिमय यह, कि जहाँ महर्षि वाल्मीकि तपस्वी थे, गायत्री के ऋषि थे, इन्द्र के ऋषि थे, वहाँ वह आयुर्वेद के महा पण्डित भी थे। क्योंकि औषधियों का पान करने वाले जो त्यागी तपस्वी होते हैं, वे अन्नादि को पान नहीं करते, वे औषधियों का पान करते हैं तो आयुर्वेद के पण्डित बन जाते हैं। परिणाम यह कि लव का जो जन्म हुआ वह वाल्मीकि आश्रम में हुआ

और कुश कुशा के वन में मिला। परन्तु जैसा मेरे महानन्द जी ने एक समय प्रगट कराया कि सीता लव को त्याग करके अंजनी में जल लेने गई तो वह प्राप्त नहीं हुआ तो बाल्मीकि ऋषि ने तपस्या के द्वारा कुश को जन्म दिया। जब कुश को जन्म दिया तो सीता के कण्ठ में दृष्टिपात करके जब धारण करने लगे तो माता ने कहा नहीं भगवन ऐसा न कीजिए। आप मेरे गुरुदेव है इस बालक को मेरे आँगन में धारण ! कराइए। परन्तु प्रायः ऐसा नहीं था कि तपस्या से बालक को धारण किया जा सके। परन्तु वहाँ कुशा के छेदन करते समय में वह बालक उन्हें प्राप्त हुआ।

ऐसा मुझे स्मरण है कि शकुन्तका नाम की एक कन्या थी वह महाराजा स्वाति ऋषि के आश्रम में परणित रहती थी। तब स्वातान नाम के ऋषि ब्रह्मचारी उनके आश्रम में प्रविष्ट हुए। मना वाचनम् ब्रह्म मानो मन की गति चंचल होने पर ब्रह्मचारी से गर्भ की स्थापना हो गई। उसने गर्भ के बालक को कुशा के आसन पर विराजमान करके वाल्मीकि आश्रम के निकट त्याग दिया। वह महर्षि वाल्मीकि को प्राप्त हो गया। और माता पिता ने दोनों पुत्रों का पालन किया। और पालन करके बाल्यकाल से ही अस्त्रों ! शस्त्रों को शिक्षा दी। देखो, महर्षि वाल्मीकि केवल तपस्वी ही नहीं थे, आयुर्वेद और धनुर्विद्या में पारंगत थे। धनुर्विद्या प्राप्त कराते रहे। वाल्मीकि ने तपस्या करने के पश्चात महाराजा रेणकेतु राजा के यहाँ राज पुरोहित भी रहे। वह लगभग उनके यहां पचास वर्ष तक राज पुरोहित रहे। अस्त्रों की विद्या शिक्षालय में प्रदान कराते रहते। यह चित्रण जब हमारे समीप आता तो हृदय गद् गद् होने लगता है। तो विचार विनिमय यह कि हमारे यहाँ जो नियम परम्पराओं के हैं उस नियम में मानव का जीवन जब एकत्रित होता है तो कर्म और क्रिया में परणित होता है तो उसमें समाज का कल्याण होता है। इसीलिए विवेकी पुरुष होने चाहिए। पञ्चक याग करने वाले पुरुष होने चाहिए। पञ्चक याग का अभिप्रायः पशु का नष्ट करना नहीं है। यह तो पामर व्यक्ति का कर्तव्य है। यह याग नहीं होता। वह तो रसना का आनन्द होता है। मैं यह कहा करता हूँ कि जो दूसरों के माँस को धारण करते हैं, दूसरे प्राणियों को हनन करके उन्हें जीवन का संसार में अधिकार क्य रह जाता है? क्योंकि वह परमात्मा से राष्ट्र में लाए हैं। यदि किसी मृत

को प्राण नहीं दे सकते तो वह देखो, किसी का पिता मृत्यु को प्राप्त हो गया पुत्रपिता को जीवित नहीं बना सकते। तो उन्हें किसी प्राणी का हनन करने का अधिकार भी नहीं रहता। इसीलिए हे मानव तेरी मानवता अहिंसा परमो धर्मः में निहित रहती है। आत्मा ! में तेरी निष्ठा रहती है।

यह है आज का विचार अब मैं अधिक विचार देना नहीं चाहता। मैं कल कुछ विज्ञान की चर्चाएँ और आत्मा की विवेचना करूंगा। आज का यह विचार समाप्त हो गया। आज का विचार क्या कि हम परमपिता परमात्मा की प्रार्थना करते हुए सदैव विवेकी बनते हुए राष्ट्र और समाज का कल्याण करने वाले बनें। हम आयुर्वेद के महापण्डित बनें और हमारे यहाँ जो रथी इन्द्र है हम उसको अच्छी प्रकार जानें और उसके विज्ञान को जानने वाले बनें। हमारा यह विज्ञान ऊर्ध्वागति में होता हुआ प्रकृति के गर्भ को अच्छी प्रकार जानते हुए और परमपिता परमात्मा में संलग्नता में रमण करते हुए मानवता का उत्थान करें। यह है आज का वाक्। अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएँ कल प्रगट करेंगे। वेद पाठ।

१९ 29 03 1977 पुष्प 21 कर्तव्य से जीवन है

देखो, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया हमारे यहाँ परम्परा से ही पाठ्य क्रम अथवा उन पद्धतियों का प्रायः वर्णन होता रहता है। जिन पद्धतियों में उस परम पिता परमात्मा जो चेतना है, जो सत है उसकी प्रतिभा का प्रायः वर्णन होता रहता है। जब हम वेद की प्रतिभा पर विचार विनिमय करने लगते हैं तो हमारा हृदय गदगद होने लगता है। हम यह कहा करते हैं कि कैसा अनुपम ज्ञान है। जिस ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा में मानव शरीर की सुन्दर रचना होती है और कैसा सुन्दर रचता करने वाला है। क्या क्या वस्तु उस प्रभु ने रची है। यह सब आश्चर्य जनक है। जब हम इन वाक्यों पर विचार करने लगते हैं कि परमात्मन तू कितना महान है। तेरी महत्ता को उच्चारण करते हुए हमारे नाना ऋषि मुनि हुए परन्तु अन्त में वे नेति नेति उच्चारण करते हुए इस संसार से

चले गए। परन्तु तेरी जो विचित्रता है अथवा तेरी जो महत्ता है उसको मानव दृष्टिपात भी नहीं कर पाता। तेरी जो रचना है आनन्दमयी है अनिर्वचनीय है। क्योंकि तेरा जो स्वरूप है वह इतना तेजोमय है इतना आनन्दमय है कि विचार वेत्ताओं ने भी विचार किया परन्तु वे भी अन्त में वाणी से मौन हो गये।

मेरे प्यारेवह मेरा प्यारा प्रभु कैसा है !ऋषिवर !? कितना विचित्र हैं? कहा जाता है कि एक समय बेटादेवताओं में महान संघर्ष ! हो गया। और वे अभिमान में परणित हो गए। देवताओं ने यह जान लिया कि तुम्हारा स्वामी कोई नहीं है। संसार में जो तुम करते हो स्वतन्त्र रूप से। केवल तुम्हीं तुम करते हो। जब देवताओं के मस्तिष्क में यह वाक्य आया कि हम ही सभी कार्य करते हैं, तो बेटादेखो !, हमारे यहाँ सब देवतागण राजा इन्द्र के द्वारा जा पहुंचे। बोले हे महाराजहम बड़े बलवान हैं !, और महान हैं। मुनिवरों ! देखो, यह विचार धारा उस महान चेतना ने स्वीकार की। तो मेरा जो प्यारा प्रभु है उसने यह जान लिया कि देवताओं को यह अभिमान हो गया है कि वास्तव में तुम स्वतन्त्र हो। तुम ही चेतन करने वाले हो। तो मुनिवरों जब वह विचार आया तो ! । यह आनन्दमयी ज्योति उत्पन्न हो गई। वह जो ज्योति !देवताओं के मध्य में बेटा उत्पन्न हुई मानो जिसे हमारे यहाँ यद्म कहा जाता है, यद्म उत्पन्न हो गया।

अब देवताओं में एक महान क्रान्ति आई और उन्होंने भगवान इन्द्र से कहा कि महाराज ! यह क्या है? इन्द्र ने सभी देवताओं से मिलकर के कहा यद्म को अग्नि के अर्पित करना चाहिए कि उसकी जानकारी हमें करायें। यह कौन है? तो बेटा अग्नि देवता ने वहाँ ! से प्रस्थान किया, देवताओं के समाज से और वह महाराजा यद्म के समीप जा पहुंचा और महाराजा यद्म से बोले कि महाराजआप कौन हैं !? अपना परिचय दीजिए तो महाराजा यद्म बोले, आप कौन है? उन्होंने कहा, प्रभु मैं अग्नि हूँ। तुम संसार में क्या कार्य करते हो? उन्होंने कह प्रभु यदि मेरी इच्छा हो जाय तो मैं इस संसार को एक ! भस !द्मण समय में भगवन्‌मी भूत कर सकता हूँ। जब अग्नि ने ऐसा कहा तो महाराजा यद्म ने बेटा एक तिनका उनके समीप नियुक्त कर दिया और यह कहा कि तुम इसे ! जो अग्नि में सत्ता थी। वह तो चैतन्य !भस्म करो। इसको नष्ट कर दो। तो मुनिवरों

में रमण कर गई थी। परन्तु चैतन्य में रमण कर गई तो यहाँ अग्नि शक्तिहीन हो गया। अग्नि ने कहा प्रभुयह तो मेरे साम्राज्य से बाहर है। परन्तु देखो !, उस तिनके को वह अग्नि भस्म नहीं कर सकी। अब अग्नि बड़ा लज्ज़ित होकर के वहाँ से भ्रमण करते देव ताओं के समाज में जाकर बोले कि महाराज यह जो अद्भुत रचना है मैं इसको जान ! नहीं पाया। यह क्या वस्तु है ?

मुनिवरो, महाराजा इन्द्र ने सब देवताओं में वायु से कहा, हे वायु देवता अब तुम ! जाओ उसके द्वारा, उसका परिचय लो। मुनिवरों वायु देवता ने वहाँ से प्रस्थान ! आप कौन !किया। भ्रमण करते महाराज के समीप आ पहुंचे। वायु देवता ने कहा प्रभु हैं? उन्होंने कहा कि मैं एक यक्ष हूँ। यक्ष ने कहा कि क्या आप वायु देवता हैं? तुम क्या कर सकते हो? वायु ने कहा प्रभु यदि मेरी इच्छा हो जाए तो मैं इस संसार को ! इस पृथ्वी को अन्तरिक्ष में ले जाकर अर्पित कर सकता हूँ। यह संसार मेरे आश्रित रहता है। उन्होंने कहा कि यह जो उनके समीप तिनका है इस तिनके को तुम दूर कर दो यहाँ से। मुनिवरों वायु ने अपना बल लगाया। क्योंकि वायु का अपना अस्तित्व ! नहीं था, वह जो अस्तित्व था वह मूल अस्तित्व में रमण कर गया था। अब वायु में इतनी सत्ता नहीं रही। मुनिवरो, अब वायु लज्जित होकर के वहाँ से भ्रमण करता हुआ देवताओं के समाज में आ पहुंचा और कहा भाईमैं उसको नहीं जान पाया !, वह क्या वस्तु है। मुनिवरोंदेखो !, बारी बारी सभी देवताओं का प्रस्थान हुआ। परन्तु कोई देवता ऐसा शक्तिशाली नहीं रहा जो तिनके को भस्म कर सके या उसे उसके स्थान से दूर कर सके।

मुनिवरोंदेखो !, भगवान इन्द्र को देवताओं ने कहा आप जाइये। महाराज इन्द्र ने वहाँ से प्रस्थान किया और इन्द्र भ्रमण करते हुए उस यक्ष के समीप आये, महाराज यक्ष से कहा महाराजअब यक्ष !, इन्द्र को दृष्टिपात करते हुए अन्तरध्यान हो गया। जब अन्तरध्यान हो गया तो मुनिवरोंद !ेखो, इन्द्र को बड़ी लज्जा आई कि मैं देवताओं से क्या उत्तर दूंगा। मुनिवरों वह भ्रमण करते हुए देवताओं की सभा में आ गये। क्योंकि ! उन्हें यक्ष का दिगदर्शन न हो सका। परिणाम यह हुआ कि वह देवताओं की समाज

वा !ऋषिवर !में बोले कि वह यत्न तो बड़ा अद्भुत है। मेरे प्यारेक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हमारा जो मानवीय शरीर है उसमें मुनिवरोंदेखो !, यह जो अग्नि, विद्युत कार्य कर रही है, वायु अपना कार्य कर रही है, मानव को यदि मौन हो जाता है कि जो यह जो हो रहा है वह मैं ही कर रहा हूँ मैं कम्पन कर रहा हूँ। वह कम्पन के स्रोत को नहीं विचारता। मुनिवरोंदेखो !, प्राण से तो कम्पनता होती है। वायु से ही तो कम्पनता होती है। वायु का अपना अस्तित्व होता नहीं वायु मैं जो वास्तविकता है उसका जो अस्तित्व है उसका स्रोत बेटा एक महान चेतन देव है। !

महर्षि पणपेतु जी ने इस सम्बन्ध में कहा कि यह जो मेरा प्यारा प्रभु है वह कैसा है? वह ऐसा है कि उसके सामर्थ्य से यह जगत अपना कार्य कर रहा है। चेतनता जो मानव में दृष्टिपात आ रही है, प्रत्येक इिन्द्रयां अपना कार्य कर रही है। यदि बेटा एक चेतना ! नहीं होगी तो इन्द्रिय होते हुए भी मानव दृष्टिपात नहीं करपाता। बेटा जब हम विचार ! अपना !विनिमय करते हैं और जब अभिमान में परणित हो जाते हैं तो हमारे में बेटा अस्तित्व नहीं रह पाता। जब हम अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाने के लिए सदैव हम विचारने लगते हैं कि जितना भी यह !ऋषिवर !तत्पर हो जाते हैं तो मेरे प्यारे जगत हैयह सब प्रभु के गर्भ में रमण कर रहा है। कितना कोई विशाल से विशाल वैज्ञानिक हो, भौतिक विज्ञानवेत्ता हो, आध्यात्मिक वेत्ता हो परन्तु दोनों ही विज्ञानों में उस परम पिता परमात्मा की प्रतिभा दृष्टिपात आ रही है।

मुनिवरोंदेखो !, एक वैज्ञानिक है वह विचारने लगता है कि मैंने नाना प्रकार के अस्त्रों शस्त्रों को नियुक्त किया है परन्तु यह विचार आ जाता है कि वह अस्त्रों शस्त्रों में जो परमाणु हैं जो धातु हैं, उसका निर्माण क्या है? किन तत्त्वों से है? उसका कौन बनाने वाला है? उसका रचयिता कौन है? तो विचार आता है कि मैंने इसको रचाया है। नाना प्रकार के अणुओं को जाना है। मैंने नाना प्रकार की कृतियों को जाना है, ऋत को जाना है उनका मिलान किया, मिलान कर के मैंने इसको जाना है। तो प्रश्न यह उत्पन्न हुआ कि यह जो ऋत है जो तुम ने जाना है उसका स्रोत क्या है? क्योंकि ऋत और सत में ही तो यह सरा जगत निहित रहता है। जितना भी यह जगत है, इसमें

परमाणुवाद हो, आध्यात्मिकवाद हो, ब्रह्मवाद हो परन्तु ऋत और सत दोनों में ही रमण करने वाला है। जैसा हमने इससे पूर्वकाल में बेटा तुम्हें प्रकट कराया था कि वास्तव ! में हम ऋत और सत में रमण करने वाले हैं। तो भौतिक वैज्ञानिक से कोई इसका उत्तर नहीं बन पाता तो तात्पर्य यही होता है कि वह जो रचयिता है वह और कोई है, वह चेतना है। उस चेतना के गर्भ में मानव रमण करता रहता है।

एक मानव परम्परा से एक बुद्धि की याचना करने के लिए चलता है शुक्र की प्राप्ति करने के लिए नाना प्रकार के यन्त्रों को बनाता है। परन्तु वह जो मस्तिष्क है उसमें भी एक लघु मस्तिष्क होता है। लघु मस्तिष्क के पिछले विभाग में ऐक क्राणित नाम का मस्तिष्क होता है। उसमें नाना वाहक नाड़ियां होती हैं। जिन नाड़ियों का सम्बन्ध प्रत्येक धातु से रहता है। लोक लोकान्तरों से उनका सम्बन्ध रहता है। हमारे ऋषि मुनियों ने ऐसा माना है कि मानव का जो यह मस्तिष्क है यह बड़ा विचित्र है। इसमें कितने प्रकार की धारा होती हैं, कहीं बुद्धि बनती है, कहीं मेधा बनती हैं, कहीं ऋतम्भरा बनती है और कहीं प्रज्ञा बन जाती है। उसमें भी नाना प्रकार के भेदन हैं। बुद्धि में (भिन्नताए) भी कहीं रजो गुणी बुद्धि होती है, कहीं तमोगुणी होती है, कहीं एक सात्विक बुघ्द्धि का निर्माण होता है। तो नाना बुद्धियों में रमण करना ही एक मानव का कर्त्तव्य होता है।

मेरे प्यारेयह क्या है !ऋषिवर !? मस्तिष्क में व्यान नाम का जो प्राण है जो कंठ से ऊपर के विभाग में रहता है वह उसका स्वामी कहलाया गया है। हमारे इस मानव शरीर में बेटा व्यान 4 उदान 3 अपान 2 प्राण 1 पांच प्राण कार्य कर रहे हैं। जिनको ! और समान ये पांच प्राण कहते हैं। इस महानगरी में हमारे महान मन्त्री हैं। कैसे अपने अपने विभाग के सुन्दर मन्त्री हैं। जब यह विचार विनिमय करने लगते हैं कि कितने सुंदर राष्ट्र का निर्माण हो रहा है कितनी सुंदर राष्ट्रीयता है इस मानव शरीर में जब हम यह विचार विनिमय करते हैं तो हमारा हृदय तो गद् गद् होने लगता है और अपने में यह अनुभव करने लगते हैं कि प्रभु ने जो यह सुंदर पुरी बनाई है। यह कितना सुन्दर राष्ट्र है। इसके मन्त्री कितने सुन्दर हैं। व्यान नाम का जो प्राण है वह कंठ के ऊपरले विभाग में रह कर क्या क्या कार्य करता है। उसके आधीन मस्तिष्क रहता है,

लघु मस्तिस्क रहता है, क्रागित नाम का मस्तिष्क रहता है, ब्रह्मरन्ध्र भी इसके अधीन रहने वाला है। व्यान प्राण में उसको इतनी महान सुन्दर मिमांसा है कि जिसकी विचार विनिमय करता हुआ मानव आश्चर्य चकित हो जाता है। दशनों का सिद्धान्त और मानवीय सिद्धान्त से सुगठित कर दिया है इसको।

देखो, कितना सुन्दर हमारा मस्तिष्क है। लघु मस्तिष्क है और उसके पश्चात ब्रह्मरन्ध्र है। जब मानव के अन्तरात्मा का विचार लघु और क्रागित मस्तिष्क में जाता है तो वहाँ जो मस्तिष्क में नाना प्रकार की नाड़ियां हैं वे जागरूक हो जाती हैं। और वे इतनी जागरूक हो जाती हैं, मानव का जो संकल्प होता है वह उन नाड़ियों के साथ लगता हुआ जो मानव विचारता रहता है वे ही नाड़ियां वायु मण्डल से कार्य करना प्रारम्भ कर देती है। जैसे एक विज्ञानवेत्ता स्वर्ण जैसी धातु को जानने का प्रयास करता है, परन्तु वह स्वर्ण का विचार कैसे आया? क्योंकि स्वर्ण नाम की नाना प्रकार की विचार शक्ति मानव के मस्तिष्क में हैं। स्वर्ण नाम की कोई न कोई सुन्दर नाड़ी होगी, जिसका स्वर्ण जैसी धातु से सम्बन्ध होता है। प्रायः सूर्य से सम्बन्ध होता है और सूर्य का जो सम्बन्ध है वह स्वर्ण से रहता है इसलिए मानव स्वर्ण जैसी धातु को जान लेता है। यदि मानव के मस्तिष्क में स्वर्ण का विचार पूर्व न होता, माता के गर्भ में यदि रचना समय नहीं होता तो उस स्वर्ण जैसी धातु का विचार भी उसके मस्तिष्क में नहीं आ सकता था।

परन्तु उन नाड़ियों को जागरूक करने की आवश्यकता है। जागरूक कैसे होती है? वह विचार से होती है। संकल्प से होती है। जब मानव का विचार और संकल्प होता है तो प्रायः वह जानी ही जाती है। उनकी विचार धारा एक महत्ता में परणित हो जाती है।

तो मेरे प्यारे जब हम गम्भीरता पूर्वक यह विचार विनिमय करते हैं कि !ऋषिवर ! वास्तव में हमारा जो यह लघु मस्तिष्क है, इसमें लोक लोकान्तरों का विज्ञान है। सूर्य विज्ञान है, चन्द्र विज्ञान है और भी नाना प्रकार का विज्ञान है। परन्तु यहाँ विज्ञान केवल मानव यौगिक रूपों में जानता है। भौतिक धातुओं में जब रमण करता है, प्रकृति के गर्भ में चला जाता है तो यह माता वसुन्धरा अपने कंठ में धारण कर लेती है। और जो विचार, जो संकलन आता है वही इसे स्मरण होता रहता है और मानव उसका

विज्ञानवेत्ता बनता चला जाता है। नाना प्रकार के यन्त्रों का वेत्ता बन जाता है। ब्रह्मास्त्र बनाने लगता है। कहीं शिव अस्त्र बनाने में वह सफलता को प्राप्त हो जाता है। कहीं अग्नेयास्त्र हैं, कहीं वरुणास्त्र हैं। नाना प्रकार के अस्त्र शस्त्रों में युक्त होता हुआ वह मानव अपनेपन में बहुत विज्ञानवेत्ता और विशालता को प्राप्त होता रहता है।

तो मैं आज बेटा इस व्यान नाम के प्राण के सम्बन्ध में सूक्ष्म सा प्रकाश देने आया ! हूँ। कोई अधिक परिचय देने नहीं आया। और जोयोगी जन होते हैं उनका अन्तरात्मा जब लघु मस्तिष्क में ब्रह्मरन्ध्र में चला जाता है तो वे सर्व विश्व का भ्रमण कर लेता है। उसके लिए ब्रह्मास्त्र क्या? ये सब तुच्छ हो जाते हैं। वह मिलान करना नहीं जानता वह केवल अपनी आत्मा का इस महान व्यापक परमात्मा में रमण करना जानता है और जब व्यापकता में यह आत्मा रमण हो जाता है तो उस महापुरुष के द्वारा हिंसा नाद का शब्द भी नहीं रहता। वह अहिंसा परमो धर्मः के रूप में दृष्टिपात होने लगता है।

तो बेटा आज मैं क्या उच्चारण करने चला हूँ। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि भौतिकवाद ! नहीं होना चाहिए, अणुवाद नहीं होना चाहिए, परमाणुवाद नहीं होना चाहिए। परन्तु उसके साथ में मानव का शुद्ध और सात्विक विचार भी होना चाहिए। जब तक उसके द्वारा सात्विक विचार नहीं होता, उसमें रजोगुण प्रधान होता है या तमोगुण प्रधान होता है और रजोगुण और तमोगुण की प्रतिभा मानव को अभिमान में ला देती है और वह जो अभिमान होता है वह मानव के लिए राष्ट्र के लिए, समाज के लिए विनाश का कारण बनता रहता है। वह अभिमान ही मृत्यु का कारण ही जाता है। उसको जीवन नहीं कहते, उसको मृत्यु कहते हैं। आज कोई मानव मृत्यु को प्राप्त होना चाहता, मृत्यु की गोद में जाना चाहता है तो अपने विचारों को संकीर्ण बना ले। मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा। शरीर को त्यागने का नाम मृत्यु नहीं है। शरीर को त्यागना तो स्वाभाविक है परन्तु मृत्यु उसे कहते हैं जो मानव संसार में कायरपन से जीवन की व्यतीत करता है। राजा हो, मानव हो, कोई भी हो जिसको आत्मा धिक्कारता हो वह मानव मृत्यु के मुख

में विराजमान रहता है।
मेरे प्यारेआज का हमारा यह विचार क्या कह रहा है !ऋषिवर !? आज मैं विशाल चर्चा प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ। केवल मानव के विज्ञान को चर्चा कर रहा हूँ कि प्रभु कितना सुन्दर है। कितना निर्माण वेत्ता है? कितना मेरे सुन्दर प्यारे प्रभु का यह निर्माण है। मैं उस व्यान नाम के प्राण की मीमांसा करना चाहता हूँ। जिसमें अरबों खरबों प्रकार की तरंगे मानव के मस्तिष्क में व्यान नाम प्राण के द्वारा होती है। इसीलिए मानव लोक लोकान्तरों की कल्पना करता है। जानकारी करने का उसका स्वभाव होता है। उसके मस्तिष्क में यह विचार आता है कि तू संसार की जानकारी मैं सफलता को प्राप्त हो जाते। प्रायः वह हो ही जाता है। वह क्यों होता है? क्योंकि उसका मस्तिष्क इस प्रकार का बना हुआ है। और मन की जो संलग्नता है, मन का जो सम्बन्ध है, वह प्रत्येक नाड़ियों से होता है क्योंकि मन संसार में व्यापक होता है।
मन कैसा व्यापक है? मन और प्राण दोनों ही संसार में व्यापकता को प्राप्त होते रहते हैं। जैसा महर्षि शाण्डिल्य जी ने कहा है। महर्षि भारद्वाज का सिद्धान्त भी यही है। और पिपलाट जी ने भी ऐसा ही कहा है। जहाँ पिप्लाद और भारद्वाज और रेवक इन सभी का विचार विनिमय हमारे समीप आता है। तो विचार आता है कि उनके विचारों में कितना व्यापकवाद और उन्होंने यह अपनी घोषणा के साथ कहा है। कि मानव इस संसार में जो भी कुछ तुम्हें दृष्टिपात आ रहा है। यह मन और प्राण की ही रचना दृष्टिपात आ रही है। बेटा जिसका विभाजन होता है। और जो विभाजन करने वाला ! है दो ही वस्तुएं हैं। संसार में इसी आधार पर इन दोनों का जो मिलान है, वह केवल हम यौगिकता से ही कर सकते हैं। अन्यथा हो नहीं पाता। मन का जो संकलन है यही प्राणों का विभाजन करता है। प्राणों का जितना विभाजन करता है। प्राणों का जितना विभाजन हो जाता है उतना ही मानव विकृत रूपों में परिणित हो जाता। और प्राणों का मिलान हो जाता है। विकृतता नहीं रह पाती। वह अविकृतता में परिणित हो जाता है। जैसा प्राण शक्ति को वायु में से परिणित कर लिया जाता है। अग्नि में कर लिया जाता है। अग्नि में एक अरब चौरासी लाख प्रकार की तरंगे होती है। उन तरंगों को जानकर

ही संसार में वास्तविक वैज्ञानिकता को प्राप्त हो पाता है।

मेरे प्यारे एक वैज्ञानिक माता वसुन्धरा के गर्भ में चला जाता है। वह अग्नि !ऋषिवर ! के परमाणुओं को जानने के लिए तत्पर हो जाता है। जैसे मानव के गृह में विद्युत प्रकाशित रहती है, यह तो विद्युत का सूक्ष्म भाग होता है। इससे ऊपर जो विद्युत होती है वह देखो, लगभग अरबों गुना अधिक ऊपर जो विद्युत होती है वह देखो, लगभग अरबोकं गुना अधिक होती हैं। जहाँ हम और गम्भीरता से यह विचार विनिमय करते हैं कि उनमें कितनी शक्ति है? एक मानव अपनी प्राण शक्ति के द्वारा उसी महान अग्नि के तेज के द्वारा अग्नि को जानता हुआ, विद्युत को जानता हुआ कि विद्युत कितने प्रकार की होती है। इस पृथ्वी मण्डल से सूर्य लोक की यात्रा में भी सफल हो जाता है। मेरे प्यारे जितना अग्नि तत्व जाना जाएगा उतना ही मानव आग्नेय लोकों को !ऋषिवर ! प्राप्त हो सकेगा। जितना वायु को जान लिया जाता है। उतना ही वायु में अनुसन्धान वेत्ता बनता रहता है। उतना वायु लोगों को प्राप्त हो सकेगा। और जो पार्थिक तत्त्वों को जानता है। उस मातावसुन्धरा के गर्भ को जानता है कि कितने खाद्य और खनिज पदार्थ हैं? दोनों प्रकार की प्रतिभा को जानने वाला देखो, पार्थिक लोकों को प्राप्त होता रहता है। और जो सदैव तमोगुण में परणित रहता है वह मानव तो सदैव अन्धकार में रमण करता रहता है। उसको कोई महत्ता प्राप्त नहीं होती संसार में।

तो बेटाअनुसन्धान करना !, विचार विनिमय करना, परमात्मा की प्रतिभा को स्मरण करना यह प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है, यह प्राणी मात्र का कर्त्तव्य है। जहाँ हम अपनी प्रतिभा को उस परमात्मा के गर्भ में ले जाना चाहते हैं। विचित्रता मैं परणित करना चाहते हैं वहीं तो आत्मा की प्रतिभा है। वही आत्मा की चेतना प्रतीत होने लगती है। यह आत्मा का ऐसा सुन्दर एक महान रूप है जिसको जानता हुआ मानव लज्जित हो जाता है। चकित हो जाता है।

मेरे प्यारे आज हमारा वाक्य क्या कह रहा है। हमारे यहाँ जैसा पिप्लाद जी !ऋषिवर ! ने कहा है कि संसार में दोनों वस्तुएं विभाजन होने वाला और विभाजन करने वाला मन ही है। मन के द्वारा संसार का विभाजन होता है। एक मानव मानव का परिचय

देता है, उसके मध्य में भी मन है। विचारों में भी मन है। एक मेरी प्यारी माता परिवार का परिचय देती है, परन्तु वह परिचय किसके आधार पर देती है? केवल मन के आधार पर। क्योंकि मन ने विभाजन कर दिया कि यह मेरा पुत्र है, यह मेरी पुत्री है, यह पिता है, यह महा पिता है, यह मेरी परम्परा चली आ रही है। यह क्या है? यह मन का ही तो कार्य है। मन ही तो इसका विभाजन करता है। मन ही प्रवृत्तियों का विभाजन कर देता है। यह मन ही है जो एक दूसरे से मानव को घृणित कर देता है और जब मानव घृणित हो जाता है, मन में इतनी घृणा आ जाती है कि वह मानव इाका दिग्दर्शन भी पान करने के लिए तत्पर नहीं होता। तो यह क्या है? यह हमारा विचार क्या कह रहा है? विचार विनिमय यह है कि मन को घृणात्मक नहीं बनाना चाहिए। जितनी मन में घृणा होगी उतनी ही मानव के विचारों में संकुचित्तत्ता होगी। क्योंकि मन को स्थिर करना यह मानव का कर्त्तव्य है। प्राणों को सगठित करना प्राणों को मन से मिला देना यह मानवता कहलाई गई है।

वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हमारी जो दार्शनिकता है यह केवल मन और प्राण के आधार पर है। इसका विचार विनियम किया जाए। और वह जो चेतना है जिस चेतना के आधार पर मानव दृष्टिपात करता है विचार विनियम करता रहता है यह सब आत्मा के आधार पर है। हम उस चेतना को जानने का प्रयास करें। संसार में मानव के आने का उद्देश्य केवल अपनी चेतना को जानना है। अपने मानवत्व को जानना है। और जहाँ मैं यह उच्चारण करने लगूं जैसा मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे प्रेरणा दे रहे ! राष्ट्रवाद हो !हैं। बेटा, मानव वाद हो, साम्यवाद हो यह सब मानव के विचारों में और कर्त्तव्यवाद में निहित रहता है। वह राष्ट्र नहीं होता है जिस राजा के राष्ट्र में नाना प्रकार की विचारधारा और अन्न से पीड़ित व्यक्ति रहते हों, वह कर्त्तव्य पालन वादी राष्ट्र नहीं होता।

मेरे प्यारे हमारे यहाँ मनु प्रणाली में नाना राजा हुए। मैंने कई समय इसका !ऋषिवर ! परिचय कराया है। महाराजा मनु की साढ़े सात हजार प्रणालियों ने राज्य किया है इस भूमण्डल पर। परन्तु उनका विचार विनिमय कैसा रहता था? सदैव त्यागी और

तपस्वी रहते थे। जब ब्रह्मवेत्ता राजा होता है तो प्रजा में हानि नहीं होती। प्रजा मे केवल सात्विकवाद होता है, महत्ता रहती है। जिस राजा के राष्ट्र में गदा होती है उसमें अपराधियों को शान्त कराने की क्षमता होती है। इसीलिए हमारे आचार्यों ने कहा कि ब्रह्मचारी रहता हुआ शासक अपराधी को दण्ड देने वाला हो। राष्ट्र में जो गदा नाम का शस्त्र है जिससे अपराधी को और घातक को जहाँ नष्ट किया जाता है वहाँ मानव की प्रवृत्ति विचारशील होकर महत्ता में परिणत होनी चाहिए। क्योंकि उसी को राष्ट्रवाद कहते हैं। जैसे मैंने अभी तुम्हें मन्त्रियों की चर्चा कराई है। जो व्यान नाम का प्राण मानव के शरीर में है इसके द्वारा केवल विज्ञान विभाग है और प्रसारण विभाग है। प्राण और अपान और उदान जितना उनका कोष होता है उनके स्वामी हैं। उस कोष को पचाते हैं, सुन्दर बनाते हैं। परन्तु जो वितरण मन्त्री होता है उसे अर्पित कर देता है। इसको सामान्य प्राण कहते हैं। हमारे इस मानव शरीर में नाना प्रकार की जो नस नाड़ियां हैं उनमें वह रस सबके द्वारा परिणत हो जाता है जो जिसका भाग होता है।

उसके पश्चात आचार्यों ने कहा कि जिसे हम अपान कहते हैं वहीं मृत्यु मानी गई है। अपान को ही ब्रह्म कहा गया है क्योंकि जब अपान और प्राण दोनों का मिलान हो जाता है उस समय आत्मा को बाध्य होकर के शरीर को त्यागना होता है। हमारे इस मानव शरीर में एक गुप्तचर विभाग भी है। कैसा सुन्दर विभाग है? मानव के कैसे रक्षक हैं? जैसे मानव के मुखारविन्द पर दन्त हैं वह दन्त कैसा कार्य कर रहे हैं? कितने सुन्दर रक्षक हैं? कोई अशुद्ध वस्तु नहीं जाने देते। सामान्य प्राण के द्वारा रसना गुप्तचर का कार्य करती हैं और अस्त्रों शस्त्रों से कार्य होने लगता है। यह जो प्रभु का मानव शरीर बनाया हुआ है जिसमें एक विशेष निर्माण हो रहा है। जिसमें विज्ञानशाला है, जिसमें एक महत्ता है। इसी राष्ट्र को विचार करके महाराजा मन ने इस बाह्य राष्ट्र का निर्माण किया था। आज हमें इस आन्तरिक राष्ट्र को विचार करके बाह्य राष्ट्र का ज्ञान होता है। ऐसा सूचना विभाग होता है, ऐसा प्रसारण विभाग होता है, उसके ऊपर हमारा विचार विनिमय होना बहुत अनिवार्य है। इसी से हमारे राष्ट्र में उन्नति और शान्ति का एक प्रतीक बनता है। जब हम ईश्वरीय राष्ट्र पर विचार करते हैं यह राष्ट्र स्वयं उन्नत

बन जाता है। जब राजा के राष्ट्र में स्वार्थवाद आ जाता है यह स्वार्थवाद मानव के विनाश का एक मार्ग बन जाता है। मेरे प्यारे प्रभु को याचना करते हुए ऐसे विनाश ! के मार्ग को अपनाना मानव का कर्त्तव्य नहीं होता। वह अकर्त्तव्य हो जाता है। और अकर्त्तव्य में मृत्यु हो जाती है। और कर्त्तव्य में जीवन होता है, महत्ता होती है, विचित्रता होती है। वह जो अधिराज आत्मा शरीर में विराजमान है जो इन्द्र बना हुआ है वह सब देवताओं का स्वामी है वह कितने सुन्दर स्वरूप को प्राप्त हो रहा है।

बेटा मैं इन वाक्यों को और गम्भीर नहीं बनाना चाहता। वाक्य उच्चारण करने का ! अभिप्राय यह था कि हम अपने मानवीय राष्ट्र का विचार विनिमय करें। जिसमें विज्ञानशाला है, निर्माण शाला है, विचित्र शालाएं हैं, भवनों की विशाल और स्वास्थ्य शाला हैं, नाना शालाएं हैं, चरित्र शाला भी इसके द्वारा हैं।

बेटा यदि राजा के राष्ट्र में चरित्र नहीं रहता तो उस राजा का राष्ट्र नष्ट भ्रष्ट हो ! जाता है। मानव के द्वारा चरित्र नहीं होता तो मानव की मृत्यु हो जाती है। मानव यदि तेरा चरित्र सुन्दर नहीं है, तू परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता। ज्ञान और विवेक तेरे में नहीं आ सकता। जब राजा के राष्ट्र में चरित्र नहीं रहता तो राजा को भी धिक्कारा जाता है। हे राज तेरे द्वारा चरित्र नहीं रहा है, तू प्रजा के पालन करने का अधिकारी नहीं रहा है। उस राजा को दूर कर दिया जाता है। यह मनु सिद्धांत कहता है, वैदिक विचार कहता है। ऐसी ऐसी विचार धारा मानव के मस्तिष्क में होती है। महत्ता उसके द्वारा होती है तो यह सब संसार उत्तम बनता रहता है। राजा चरित्रवान होगा तो प्रजा उसका अनुकरण करती है। जब प्रजा अनुकरण करती है तो बेटा इस समाज में ! महत्ता होती है, विचित्रता होती है मानवता होती है। हम अपने ऊपर अनुसन्धान वेत्ता बनें, जीवन ग्राही बनें, मृत्यु ग्राही न बनें, क्योंकि मृत्यु ही मानव को अधोगति को ले जाता है। शरीर के त्यागने को मृत्यु नहीं कहते। कर्त्तव्य के न पालन करने को मृत्यु कहा जाता है। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हे मानव तू अपने में ! अभिमान न कर। क्योंकि वह जो चेतना है वह निर्मल है, स्वच्छ है, आनन्दमय है, प्रकाशमय है। उस चेतना को विचार द्वारा विनिमय करने का प्रयास कर। आज तुम्हारे

द्वारा अन्तरद्वन्द नहीं होना चाहिए। प्रकाश होना चाहिए। आनन्द होना चाहिए। जिससे जीवन में आनन्द का एक सदैव दिगदर्शन होता रहे। महत्ता की ज्योति ही संसार को उज्ज्वल बनाने वाली है। हम अपने मानवतत्व की विचित्र धारा को जानते हुए और प्रभु को अपना साक्षी बनाते हुए इस संसार सागर से पार होते चले जाए। यह आज का हमारा वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है।
हमारे वाक्यों का अभिप्राय क्या? कि हम प्रभु का गुण गान गाते रहें। और अपने में अभिमानी न हों। नेत्रों को दूषित न करें। इन्द्रियों के विषयों को विचारें। इन्द्रियों का जो विषय है इसको एकत्रित करो। हृदय रूपी जो गुफा है। जहाँ चेतना का केन्द्र है उस चैतन्य को जानने का प्रयास करो। यह मानव का कर्त्तव्य कहलाया गया है। अपने कर्त्तव्य का पालन करने को जीवन कहते हैं। और अकर्त्तव्य को मृत्यु कहते हैं। अकर्तव्य में जब मानव आता है तब परमात्मा से अपने को दूर कर देता है। कर्त्तव्यवादी प्राणी सदैव परमात्मा को स्मरण करता है।

यह है बेटा आज का हमारा वाक्य। कल समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं मैं कल प्रकट ! कर सकूंगा। आज का हमारावाक्य अब समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक्यों का अभिप्राय कि हम प्रभु का चिन्तन करते रहें। अपनी मानवता को जानते हुए और ऋषियों का जो हमारे ऊपर परम्परा से ऋण है उससे उऋण होते रहें। राज ऋण है उससे उऋण होते रहें। यह हमारा कर्त्तव्य है। आज का हमारा वाक्य अब समाप्त। कर्त्तव्यवाद का नाम ही राष्ट्र है, कर्त्तव्यवाद का नाम ही समाज है, कर्त्तव्यवाद का नाम ही ऋषित्व कहलाया गया है कर्त्तव्यवाद का ही राजा कहा जाता है। और जो कर्त्तव्य का पालन नहीं करता वह संसार में मृत्यु के तुल्य होता है। अब वेदों का पाठ होगा इसके पश्चात हमारी वार्त्ता समाप्त। क्योंकि आत्मा कदापि समाप्त नहीं होता। परमाणुवाद भी नष्ट नहीं होता। यह तो छिन्न भिन्न होता रहता है। रूपान्तर होता रहता है परमाणुओं का रूपान्तर हो जाना ही शरीर शरीर त्याग कहते हैं। उसको अज्ञानी मृत्यु कहा करते हैं। और जो महापुरुष होते हैं वह रूपान्तर कहा करते हैं कि शरीर के परमाणुओं का, आत्मा का

रूपान्तर हो गया है। बेटा मृत्यु शब्द हमारा जो महान दर्शन है उसमें मृत्यु शब्द ! समाप्त हो जाता है। यह आज का हमारा वाक्य समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। धन्य कृष्ण मन्दिर !हो भगवन, सिकन्दराबाद

२० अतिथि 002 पुष्प 20 राजा प्रजा को कर्तव्यवादी बनाएं।

जीते रहो! देखो, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्पराओं से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेद वासी में सर्वत्र एक मानवीय विज्ञान है, अथवा सर्वत्र प्रकृति का विज्ञान है। इस विज्ञान के लिए प्रत्येक मानव लालायित रहता है। क्योंकि मानव के मस्तिष्क में सूक्ष्म सूक्ष्म व)िशेष वाक् नाड़ियां (होती हैं। और उन सूक्ष्म नाड़ियों में से सूक्ष्म सूक्ष्म धाराओं का जन्म होता है। और उन सूक्ष्म धाराओं का जो सम्बन्ध है वह प्रकृति अथवा वसुन्धरा के गर्भ से होता है। वसुन्धरा के गर्भ में यह सर्व जगत आता है। वसुन्धरा के गर्भ में नाना प्रकार के लोक लोकान्तर आते हैं। इन लोक लोकान्तरों के साथ वाक् नाड़ियों का सम्बन्ध है। करोड़ों नाड़ियों का अस्तित्व होता है। परन्तु यह जो मानव का शरीर है। यह जो मानवीय शरीर है यह तो विज्ञानमय है। इस मानव शरीर में नाना तारागण, नाना सौर मण्डल हैं। यदि शरीर में सौरमण्डल नहीं होंगे, चन्द्र मण्डल नहीं होंगे तो मानव यह निर्णय ही नहीं कर पा सकेगा। मानव यह उच्चारण करने में असमर्थ रहेगा कि यह सूर्य मण्डल है, यह चन्द्र मण्डल है, यह आरुणि मण्डल है, यह जेठाय नक्षत्र है, यह चन्द्र मण्डल है, यह आरुणि मण्डल है, यह जेठाय नक्षत्र है। इत्यादि मन और प्राण को एकाग्र करके योग के द्वारा इस प्रकृति का विज्ञान स्वतः ही मानव के समीप आ जाता है, और इसका स्पष्टीकरण भी हो जाता है। यही प्रकृति पर अधिपथ्य करने का एक मात्र भार्ग है।

मुझे बहुत पुरातन करल की वार्त्ता स्मरण आ रही है। एक समय जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन करता था तो उनके चरणों की धूलि को मस्तिष्क के ऊपर

जब मैं अकृत करता तब पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते थे। कि संसार में जितना भी मानवीय विज्ञान है वह मानव के हृदय में है। तो विचारना यह है कि इस मानव के शरीर में मन और प्राण दोनों के मिलान का दोनों के समन्वय कानाम योग कहलाता है। आज तो मानव योगी बनना चाहता है। वह योगी बनने से पूर्व संसार की जो नाना प्रकार की प्रक्रियाएं हैं, प्रकृति का जो वातावरण है प्रकृति में जो चंचलताओं को मुनिवरों अपने हृदय में समाहित करना होगा। और मन और प्राण !के द्वारा इन्द्रियों के विषय का विरोध करता हुआ जब मन और प्राण दोनों का समन्वय हो जाता है। तो उस समय मानव योग सिद्ध हो जाता है। वह योगी कहलाता है। इसीलिए योगी जनों के लिए किसी लोक लोकान्तर का ज्ञान असम्भव नहीं रहता। नाना प्रकार के सौर मण्डल का क्या जितना भी प्रकृतिवाद है उसके ऊपर वह अधिकार कर लेता है, प्रकृति को वश में कर लेता है। मुनिवरों आत्मा सदैव सत्चित् कहलाता है तो इसीलिए विचार ! विनिमय यह कि प्रकृति सत् है तो सत् के ऊपर वह अपना अनुशासन कर लेता है। अनुशासन करने वाला जो प्राणी है अथवा योगी है। वह इस महान् प्रकृति के ऊपर अपना शासन कर लेता है। जैसे एक माता का पुत्र है, वह अपने आँगन में माता को लोरियों का पान कर रहा है। वह माता के सब अंगों को जानता है और मुनिवरों ! जब वह इस माँ वसुन्धरा को जानना चाहता है वह इसको खिलवाड़ के रूपों में रमण करता हुआ मानो इसको त्यागता हुआ आगे वसुन्धरा के गर्भ मे जाने का प्रयास करता है तो वह मानव योग में पारायण जाता है।

मुझे स्मरण आ रहा है कि पुरातन काल में हिंसक प्राणियों के आँगन में भी जाने का सौभाग्य मुझे प्राप्त होता रहा है। हिंसक प्राणी जो मानव का भक्षण कर जाते हैं परन्तु जो यौगिक आत्मा होती है। उसकी दृष्टि में हिंसा और अहिंसा कुछ नहीं रहती है। वह तो सदैव आनन्द के मार्ग के लिए लालायित रहता है। प्रकृति के ऊपर उनका अनुशासन हो जाता है। तो मुनिवरोंदेखो !, वह तो सर्वत्र आनन्द ही आनन्द दृष्टिपात करता है। योगी की प्रखर बुद्धि हो जाती है। प्रखर विचार हो जाते हैं। महत्ता में वह रमण करने

लगता है।

तो विचारना क्या? योगी किससे कहते हैं? बेटायोग का प्रारम्भ कहाँ से होता है !? विचारना यह है कि हमें, जब हम ऊर्ध्वगति की बातों को लेकर के चलेंगे। सबसे प्रथम मानव का जो योग प्रारम्भ होता है। आचार्यों ने कहा है उसी को मुझे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कराते रहते थे कि सबसे प्रथम अहिंसा से प्रारंभ होता है वह अहिंसा को विचारने वाला बने। अहिंसा कितने प्रकार की होती है। अहिंसा है क्या? जब मानव अहिंसा को अपने में धारण कर लेता है। अहिंसा के ऊपर उसका अनुशासन ले जाता है तो मुनिवरों उसकी दृष्टि में कोई हिंसक प्राणी नहीं रहता। योगी का इन्द्रियों के ऊपर ! अनुशासन हो जाता है।

हमारे ऋषियों ने कहा कि इन्द्रियों का रस लिया जाए। मानो इन्द्रियों ने कहा कि इन्द्रियों को रस लिया जाए। मानो इन्द्रियों का फेम का फेन बनाया जाए। ऐसा ऋषिजन कहते हैं परन्तु देखो, इन्द्रियों का फोम क्या (फेम)? इन्द्रियों के विषयों को मन्थन करने के पश्चात जो जो इन्द्रियों में गुण हैं अथवा जो जो उनका विषय है। उन विषयों का एकत्रित करने वाला ही साधक योग में पारायण बन सकता है। इनके विषयों को एकत्रित करने के पश्चात जब रस बनाया जाता है। उस रस को जो योगो पान कर लेता है। वह मन और प्राण दोनों का विरोध करके मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। आओ मेरे प्यारे मैं अधिक विवेचन नहीं प्रकट करूंगा। केवल वाक्य उच्चारण करना यह है ! कि आज हम इस प्रातःकाल की अमृत बेला में उस अपने प्यारेप्रभु का गुणगान गाते हुए वेद की प्रतिभा को जानते हुए हम प्रकृति के मन को विचारते हुए हम अपने ऊपर अनुशासन करने का प्रयास करें। क्योंकि जब तक हमारे जीवन में अपने ऊपर अनुशासन नहीं होगा तो योग में कदापि भी ऊँचे नहीं बन सकेंगे।

मुझे स्मरण आता रहता है बेटाजब म !ैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से पृथक हुआ तो मुनिवरोंदेखों यहाँ नाना ऋषिजन आते। नाना बालिकाएं आतीं। परन्तु देखो !, उनको योग के मार्ग पर नाना प्रकार की शिक्षा दी जाती। तो शिक्षा का अभिप्राय क्या? शिक्षा क्या है? यह आत्मिक शिक्षा होती है। वही तो शिक्षा है। परमात्मा का जब ज्ञान कराया

जाता है। आत्मा क्या है? इस मानव शरीर में चेतना है। तो मुनिवरों उस चेतना को ! जानने का नाम योग कहलाता है। आज हम जब मनके ऊपर विचार करते हैं तो प्रत्यक्ष होता है कि मन और प्राण सर्वत्र प्रकृति के गर्भ में है। मान तो इस पृथ्वी वसुन्धरा के गर्भ में भी है। जितना भी विभाजन वाद तुम्हें दृष्टिपात आ रहा है। जितना भी नाना प्रकार के फलों में नाना प्रकार की वनस्पतियों में जो भी तुम्हें नाना प्रकार के रसास्वादन तुम्हें प्रतीत हो रहे हैं। इन सबका मूल कारण केवल मन और प्राण ही माने जाते हैं। क्योंकि इस पृथ्वी में जो नाना प्रकार का खाद्य है। खनिज है और नाना प्रकार का विभाजनवाद है वह केवल मन और प्राण के ही कारण है। हमारे यहाँ कुछ ऐसा माना जाता है कि जब संसार में मुनिवरों मानव होता है अथवा मोक्ष में होता है तो ! मोक्ष में दो वस्तुएं इसके साथ सन्निधान में रहती है। एक कारण रहता है जिसको हमारे यहाँ मन और प्राण दोनों का समन्वय कहा जाता है। जब जब दोनों का समन्वय होता है तो तब तब संसार में विभाजन होता गया। माता गर्भस्थल में बालक आया। परतु यह देवात्मा माता के गर्भ में आई तो मानो उसी समय मन और प्राण, ज्ञान और प्रयत्न दोनों पृथक पृथक हो गए। ज्ञान का मध्यम मनिराम को कहा जाता है।

जितना भी विभाजनवाद है वह सब प्राण में कहा जाता है। प्राण और मन दोनों का विभाजन हुआ। परन्तु जब दोनों का विभाजन हुआ तो ज्ञान के माध्यम से एक प्राण के पांच प्राण बने। मानों। 1. प्राण 2. अपान, 3. व्यान, 4. उदान, 5. समान। ये पांच प्राण बने। परन्तु जब आगे इसको कार्य प्रदान कर दिया प्राण का क्या कार्य है? प्राण का नाभि से ऊर्ध्वगति को जाना। वायु मण्डल से कुछ परमाणु लाना, मानव शरीर से परमाणुओं को त्याग देना है। इसी प्रकार अपान का कार्य है। नाना प्रकार के अस्वतों को दूर करने का कार्य अपान कहलाता है। इसी प्रकार उदान हमारे यहाँ (मलों) किन्हीं आचार्यों ने कण्ठ में माना है। परन्तु किन्हीं आचार्यों ने उदर में माना है। परन्तु वह प्राण कहीं भी हो इस विवाद में मुझे अधिक नहीं जाना है। केवल वाक्य यह उच्चारण करना है कि वह जो उदान है वह कन्ठ से लेकर के उदर तक का कार्य करता रहता है। ऐसा भी किन्हीं आचार्यों ने स्वीकार किया। समान जो सर्वत्र शरीर में

अपना रसास्वादन करता रहता है। मेरे प्यारेदेखो !, व्यान का कार्य है। वायुमण्डल का जितना भी वातावरण है उनमें से सूक्ष्म परमाणुओं को लेकर के मानो वह अपनी यौगिक अस्वतों में इनका मिलान करा देता है। चारों प्राणों का अव्याहृत गतियों में रमण कराता रहता है। इसी प्रकार बेटा मैं इन सूक्ष्म विचारों को नहीं देना चाहता हूँ। विचार ! विनिमय क्या? जब व्यान ने कार्य प्रदान कर दिया तो ज्ञान तो प्रबल हो गया। उस समय बेटा विभाजन और हुआ। इन पांचों प्राणों में उनको भाग विभक्त कर दिया। ! देखो !मुनिवरों, नाग देवदत्त धनंजय, कूर्म और कृकल पांच प्राण और बने। अब पांचों प्राण जब बन गए। इस शरीर में आन्तरिक प्रवृत्ति बन गई। उसके पश्चात जब यह प्राणों का विभाजन हो गया तो मुनिवरों प्राण के दस से अधिक विभाजन तो हो ही नहीं ! सकते थे। परन्तु प्राणों का बाह्य जगत बनने लगा। अब बाह्य जगत क्या बना? मुनिवरों ! इन्हीं प्राणों की प्रक्रिया से पांच ज्ञानेन्द्रियां बनीं। पांच कर्म इन्द्रियां बनीं। और जब यह पांच ज्ञान इन्द्रियां और कर्म इन्द्रियां बन गई तो यह मानव शरीर का एक वृक्ष के रूप में आ गया। उसके पश्चात मानो इन्द्रियों के जो विषय थे वह इस वृक्ष की पत्तियां बनकर के मानो कोपल बन करके बाह्य जगत बनने लगा। इन्द्रियां अपने जगत को अर्थात प्रकृतिवाद को दृष्टिपात करने लगी। मानो इस शरीर का विभाजन हो गया।

जब वह बाह्य जगत बना। बाह्य इन्द्रियां दृष्टिपात करने लगी तो शुद्ध अशुद्ध दोनों आ गए। जब दोनों आ गए तो शुद्ध अशुद्धता से आगे जब बाह्य जगत बना तो बेटा कार्य ! कार्य करता रहा। प्रबलताआती रही। !करता रहा। प्रबलता आती रही। तो उसमें बेटा तो उसमें बेटा एक तृष्णा उत्पन्न होगई। कार्य करने की शक्ति आ गई। अति कार्य ! का नाम तृष्णा कहलाता है। वह जब तृणा उत्पन्न हो गई। तृष्णा उत्पन्न होने के हर्ष आगया। इस !क्रोध आ गया। अहा !पश्चात मान और अपमान आ गए। मुनिवरों देखो !यह असुर बन गए। मुनिवरों !शरीर में बेटा,जब असुर प्रबल हो गए तो न तो संसार में निद्रा आती है। मानो संसार में शोक ही शोक रहता है। कार्य करने की वह तृष्णा इतनी प्रबल हो गई है। कार्य आज्ञा के अनुसार होता है। तो अभिमान आता है। और यदि कार्य आज्ञा के अनुसार नहीं हेता तो बेटा निराशा आती है। उस समय !

क्रोधआता है और क्रोध के पश्चात् मानव के शरीर का विनाश हो जाता है। वे जो ज्ञान की वाहक नाड़ियां हैं। वे भस्म होने लगती हैं। विचार विनिमय क्या? अब ऋषि मुनियां ने कहा यह क्या बना? अरे,यह वृक्ष केसा बन गया!? इतना अति वृक्ष बन गया कि उसको पत्तियां भी नष्ट होने लगी। अजीर्ण हो गया।

अब ऋषि मुनियों ने एक साधन मानव के समीप लाने का प्रयास किया। उन्होंने कहा, अब यौगिक क्षेत्र में आ जाओ, अब योग के ऊपर निधान करना प्रारम्भ करो। तो मुनिवरोंदेखो !, अब यौगिक क्षेत्र में लाने का मानव को प्रयास किया गया। अब मानव को योग में कैसे लाया जाए? क्योंकि इन्द्रियां तो प्रबल हो गई हैं। तृष्णा अधिक प्रबल हो गई है। मानो शत्रु यहाँ प्रबलता को प्राप्त हो रहे हैं। तो उस समय यह कहा कि यह जो शत्रु है उनका विनाश करो। अब मुनिवरोंदेखो !, इनका विनाश कैसे करें? इसके लिए हमारे ऋषि मुनियों ने कहा कि इसके लिए आज तुम सबसे प्रथम अहिंसा को विचारना प्रारम्भ करो। अहा सबसे !इनका निरोध करना प्रारम्भ करो।अब मुनिवरों ! प्राम जो मानव यौगिक क्षेत्र में जाता है, योग के मार्ग को प्राप्त करना चाहता है। वह 1. काम, 2. क्रोध, 3. मद, 4. लोभ, 5. मोह इनका विनाश करने के लिए सबसे प्रथम विचारता है। मुनिवरों यहाँ आज्ञा के अनुसार कम होना भी यौगिक क्षेत्रमें बाधक ! है। यदि आज्ञा के अनुसार नहीं होता है वह भी बाधक है। इसीलिए ऋषि मुनियों ने कहा कि इन दोनों को त्याग दो। कठिनाई उत्पन्न न करो। कोई भी तृष्णा न उत्पन्न अध्ययन क !होना यह मुनिवरोंा कार्य है।

यह मानव शरीर का जब अध्ययन किया जाएगा इन्द्रियां क्या हैं? इन्द्रियां का विषय क्या है? अब इन्द्रियों के विषय में विचारने लगता है साधक। अब साधना में परणित होता है। मानव यहाँ से साधना का प्रारम्भ होता है। साधना के ऊपर मानव अनुशासन करना प्रारम्भ कर देता है। मानव यह कहता है कि अब मैं इस संसार से कैसे उत्तीर्ण हूँ? कैसे मुझे मोक्ष में जाना है। अब मुनिवरोंदेखो !, मोक्ष के लिए कल्पना करता है। एक महात्मा के द्वार पर जाता हैं ऋषि मुनियों के द्वार पर जाता है। कहता है महाराज ! मैं मोक्ष चाहता हूँ। परन्तु मोक्ष कैसे होगा? जब तृणा इतनी बलवती हो गई है।

मानो उसे तृष्णा से मान और अपमान होता है। 1. काम, 2. क्रोध, 3. मद, 4. लोभ, 5. मोह की जागरूकता आती है। तो यह कैसे शान्त हो सकता है? तो मुनिवरों ऋषि ! मुनियों ने कहा तुम शान्त हो जाओ और इस प्रकृति के क्षेत्र में मातावसुन्धरा की उपासना करो। वह जो माता वसुन्धरा तूमेरा कल्याण कर। तू मेरी माँहै। ममतामयी ! माँ है। माना शिशुपन में मैं तेरी लोरियों को पान करता था मैं वेसा ही शिशु बनना कैसे बनूंगा !चाहता हूँ। परन्तु वह शिशु माँ? जब मैं अपनी नाना प्रकार की धृष्टताओं को त्यागने का प्रयास करूंगा। 1. स्वाध्याय से 2. अहिंसा से 3. सत् से 4. अस्तेय से मानो 5. ब्रह्मचर्य से। मैं नाना प्रकार के साधन बना करके, वैदिक ज्ञान के आश्रित बन करके, मैं प्रभु का आश्रित बन करके, मैं ओइम रूपी धागे में प्रत्येक इन्द्रिय को, इन्द्रियों के विषय को पिरोना चाहता हूँ। माँ उस समय मैं तेरी गोद मेंआना चाहता ! हूँ। जब यह साधक उपासना करता है। मानो साधक के लिए केवल एक उपासना रह जाती है। और वह उपासना क्या है? उस उपासना के कारण, उपासना के ही माध्यम से वह मन और प्राण दोनों का जिनका विभाजन हो गया था। मुनिवरों उन ! दोनों का समन्वय करना चाहता है।

वह समन्वय कैसे होगा? यह विचारना है आज हमें। वह समन्वय उस काल में होगा। जब हम संसार के नाना प्रकारके कार्यों को त्याग देते हैं। त्याग देने के पश्चात केवल हम कर्तव्यवाद पर आ जाते हैं। यदि हमें प्रकृति का उपभोग भोगना है तो उसमें कर्तव्यवाद की वेदी से लेकर के चलते हैं। यहाँ कर्तव्यवाद जैसे मानो एक याज्ञिक पुरुष है यह यज्ञ करता है। सुगन्धि करता है। विचारों की सुगन्धि देता है। साकल्यों की सुगन्धि देता है। परन्तु उसका कर्तय है वह कर्तव्य पारायण हो। उसमें तब अभिमान नहीं हेगा। जहाँ कर्तव्य पारायणता में अभिमान आ जाता है वह कर्तव्यवाद नहीं रहता। केवल विडम्बना उस (उपहास की बात) रह जाती है। वह विडम्बना (उपहास की बात) तो विचार विनिमय क्या !मानव के सुकृत हनन कर लेती है बेटा? हमारे यहाँ आचार्यों ने कहा है कि आज संसार को इस यौगिक क्षेत्र को तुम ऊँचा बनाना चाहते हो तो प्रातःकाल की अमृत वेला में मानो शानत वातावरण में विराजमान होकर के उस शान्त

वातावरण को विचारा जाए। यह शान्त वस्तु क्या है? क्योंकि जिससे मेरे हृदय को यह शान्ति छूती चली जाती अब सबसे प्रथम तृष्णा को त्यागना है तो न तो 1. काम आता है 2. न क्रोध आता है 3. न मद आता है 4. न लोभ आता है। मानव जब तृष्णा से शून्य हो जाता है। तृष्णा को त्याग देता है और तृष्णा उसको कहते हैं जो मुनिवरों ! आज्ञा के अनुसार कार्य हो जाता है तब भी और कार्य न भी हो तो भी उसकी और बलवती इच्छा होती रहती है वह तृष्णा को त्यागना है। स्वाध्याय के द्वारा और सुविचारों के द्वारा उसको त्यागा जाएगा।

विचारों का अध्ययन करना और अक्षरों का बोधी होना दोनों में अन्तर है। वह अन्तर क्या है? एक मानव तो वेद की पोथी ही पोथी कण्ठस्थ करता चला जा रहा है। परन्तु एक वेदमन्त्र को विचारता है। वह कहता है कि इस प्राण को विचारा जाए। इस मनुष्यत्व को विचारा जाए। विचारता हुआ अध्ययन करता है। अध्ययन किसे कहते हैं? कि मेरी इन्द्रियों का जो विषय है। उससे संसार को दृष्टिपात करना है। मानो चंचलता में नहीं जाना है। इसकी विचारना है कि मेरी नेत्रों की ज्योति में से कितनी धाराओं को जन्म होता है? और धाराएं क्या क्या कार्य करती हैं? जब रजोगुणी प्रवृत्ति होती है उस समय नेत्रों की धारा में अशुद्धवाद होता। जब सतोगुणी होता है। जब रजोगुण होता है। तो उसमें कितना रजोगुण होता है? तो ऋषिजन कहते हैं जब सात्विक प्रवृत्ति रहती है जो 6552 प्रकार की धाराओं का जन्म होता है। परन्तु जब रजोगुणी होती है तो 3007 !प्रकार की तरंगों का जन्म होता है। और जब तमोगुण होता है। उस समय मुनिवरों मानव का सुकृत हनन होने लगता है। तमोगुणी प्रवृत्ति में तमोगुणी जो नेत्रों की तरंगों क 9000 ज्योति है उसमें लगभग ा जन्म होता है और उससे मानव का सुकृत हनन हो जाता है। परिणाम क्या? कि इस विषय को विचारना है। नेत्र जब सात्विक प्रवृत्ति में होते हैं, नेत्रों की ज्योति को विचारता है। वह नेत्रों की ज्योति अग्नि की धाराएं हैं। उन अग्नि की धाराओं को हमें आन्तरिक जगत् में समेट लेना है।

जब आन्तरिक जगत् में वह समेट ली जाती है उसके पश्चात् वाणी में क्रोध में कितनी तरंगे होती है? काम में कितनी तरंगे होती हैं? जब तमोगुणी होता है और जब सतोगुणी

विचार होते हैं तो वाणी में कितनी तरंगे होती हैं? एक मानव अति क्रोध में जब वाक्य उच्चारण करता है तो ऋषि कहते हैं कि अरबों खरबों जो तरंगे उससे कुछ सूक्ष्म वायु मण्डल में मिश्रित होती है। जब सतोगुण होता है उसमे लगभग एक अरब करोड़ 16 लाख के लगभग तरंगों का जन्म होता है। तो इससे हमें यह सिद्ध होता है। कि 29 हमें वायुमण्डल के वातावरण को शोधन करना है। इसीलिए मुनिवरों इन सब विचारों ! को त्याग करके आन्तरिक जगत में इनको विचारा जाए। आन्तरिक जगत इनका अध्ययन किया जाए। जब अध्ययन किया जाता है उस समय अहिंसा सिद्ध हो जाता है। जब अहिंसा सिद्ध हो जाता है उसी समय हिंसक प्राणी उसके चरणों में ओत प्रोत हो जाते हैं। उस समयन तो भय रहता है और न उस समय मानो विडम्बना उपहास) रहती है। न उसे शरीर का यह भय होता है कि यह नष्ट हो जाएगा क्योंकि (की बात उस मानव का जीवन विशाल बन जाता है। उस योगी, उस साधक के हृदय में हिंसक नाम का कोई प्राणी ही नहीं रहता।

आज मैं बेटाअब अधिक विवेचना नहीं ! दूंगा इस सम्बन्ध में अपना विचार मैं केवल संक्षिप्त करने जा रहा हूँ। विचारना यह है कि हम प्रत्येक इन्द्रिय का अध्ययन करना प्रारम्भ करें। अध्ययन क्या है? बेटा जब हमारी त्वचा के ऊपर स्पर्श होता है तो ! समोगुणी का स्पर्श और धाराओं वाला होता है। रजोगुणी स्पर्शऔर धाराओं वाला होता है। रजोगुणी स्पर्श और धारा वाला, सतोगुणी स्पर्श और धारा वाला होता है। परन्तु त्वचा के ऊपर अध्ययन करना मानो इसको सतोगुण में नाना रजोगुण तमोगुण को त्याग देना उसको आन्तरिक जगत् में प्रविष्ट कर देना इसको हमारे यहाँ अनुशासन कहते हैं। अध्ययन का नाम ही अनुशासन है। विचार विनिमय यह बेटा कि आज हम ! अनुशासन करने वाले बनें। प्रत्येक इन्द्रिय के विषय को हम आन्तरिक जगत में ले जाएं। तृष्णा को त्यागना आन्तरिक जगत में ले जाना।

इन्द्रियों का जब अध्ययन करने के पश्चात् मुनिवरोंइनमें जो रस उत्पन्न होता है व !ह द्युलोक को प्राप्त होता है। ऋषि कहते हैं कि इन्द्रियों का मन्थन करने के पश्चात इनका फोम फेन बताया जाता है। इनका फोम बना करके मुनिवरों समूचे जो दैत्य हैं उनको !

नष्ट किया जाता है। अरे, यह दैत्य कौन है? जो मुनिवरों अज्ञान शरीर में बसा हुआ ! है। अज्ञान इन्द्रियों में समाहित हो गया था। मानो वह इन इन्द्रियों के रस का फोम बना करके अज्ञान को नष्ट कर देते हैं। संसार में ज्ञान का नाम प्रकाश है। जब प्रकाश ही प्रकाश हो जाता है अन्त द्वन्द नहीं रहता उस समय बेटा मानो इन्द्रियों का फोम ! बनाया। हमारे यहाँ फोम का नाम एक शस्त्र बनाया जाता है। ऋषि मुनियों ने उसको शस्त्र माना है। उस समय बनता है फोम जब मन और प्राण दोनों का मिलान हो जाता है। तो मन और प्राण का दोनों एक दूसरे में निवास से यह शरीर रूपी वृक्ष बना है। और एक दूसरे के मिलान से यह वृक्ष अंकुर बन करके बेटामोक्ष को प !्राप्त हो जाता है।

तो विचार विनिमय यह कि आज हम यौगिक क्षेत्र में जाना चाहते हैं। मुझे तो बेटा ! स्मरण आता रहता है कि संसार में जो योगी बनना चाहता है। मुझे मेरे पूज्यपाद इन्द्रियों को फोम जब बनाया !गुरुदेव का वह अध्ययन स्मरण आता रहता है। मुनिवरों जाता है जबनाना प्रकार की वनस्पतियों को पान किया जाता है। आयुर्वेद के अध्ययन के अनुसार नाना प्रकार की वनस्पतियां तो क्या ऐसी ऐसी औषधि हैं। इस माता वसुन्धरा के गर्भ में कि योगी जब उसका आसन बनाकर के योग सिद्ध हो जाता है। आसन पर विराजमान हो करके वह आसन सहज हो सिद्ध हो जाता है। एक औषध होती है जिसको सूली अनानाद कहते है। एक सेलखण्डा होती है। योगी में इन दोनों को बारह बारह वर्ष तक रस पान किया जाता है। जैसे हमारे यहाँ स्वाति नक्षत्र में एक औषधि उत्पन्न होती है जिसको हम मुण्डिका कहते हैं, स्वाकृति कहते हैं। इन दोनों औषधियों का मिलान किया जाता है। दोनों का एक आसन बनाया जाता है। मुनिवरों मुझे ! स्मरण है जिस समय महात्मा मूञ्जु मुनि महाराज के यहाँ अश्वनी कुमारों का जन्म हुआ तो शनेनकेतु जो माता थी। स्वाति नक्षत्र में होने वाली जो औषधि थी, उसको एकत्रित करके बालक को उसका आसन बनाकर उस पर विश्राम कराया जाए। निद्रा में तलीन कराया जाए। तो उस बालक के मस्तिष्क में सूक्ष्म सूक्ष्म हो जाते हैं मानो उन औषधियों के विद्युत के प्रभाव से वह स्पष्ट हो जाते हैं। और सूक्ष्म सा अध्ययन

करने मात्र से बेटावह जो संस्कार बाल्यकाल में किए जाते हैं उन संस्का !रों की उब्दुधता हो जाती है। परिणाम क्या? कि मुनिवरोंदेखो !, जैसा हमें बनना है जिस प्रकार का बनना है उसी प्रकार का ज्ञान हमें होना चाहिए। नाना प्रकार की औषधियों का पान होना चाहिए।

मुझे स्मरण आता रहता है जिस समय बेटा यौगिक क्षेत्र में जाने का हमने प्रयास ! किया तो पूज्यपाद गुरुदेव 6 माह तक नाना के वृक्षों का पञ्चांग पान कराते रहते 6 थे। जैसे बटवृक्ष है, पीपल वृक्ष है, स्वाति वृक्ष है शनि वृक्ष है। इनके पांचाग को पान कराते रहते थे। तो इन्द्रियां वैसे ही शोधन होती हैं। जब इस प्रकार का तप किया जाता है। इस प्रकार का अध्ययन किया जाता है। मैंने बहुत पुरातन काल में अपने विचार देने के लिए कहा परन्तु मेरे प्यारे महानन्द जी की आज यह प्रेरणा थी कि योग के ऊपर अपना कुछ प्रकाश दिया जाएऔर कुछ साधना के ऊपर साधना तो मानव का जीवन है। मनुष्यत्व में ले जाने वाली साधना तो मानव को करनी ही चाहिए। मेरे प्यारे । विचार विनिमय यह कि बहुत सा कार्य पुरातन काल में होता रहा। परन्तु मुझे! अन्न के !स्मरण है कि महर्षि दालभ्य मुनि जब तपस्या करने लगे तो उन्होंने बेटा ऊपर अध्ययन करना प्रारम्भ किया। उन्होंने विचारा कि जो भी पान किया जाता है वह अन्न कहलाता है। तो उन्होंने नाना प्रकार की वनस्पतियों को पान कराया। महर्षि स्वाकृति ऋषि ने और महर्षि पञ्चकेतु ऋषिमहाराज ने लगभग वर्ष तक बट 14, पीपल, शनि, श्वाति, शुकेतु इन वृक्ष का पंचांग पान कराया और कराने के पश्चात उनको योग सिद्ध हुआ। परिणाम यह कि योग वैसे ही प्राप्त नहीं होता। आज मानव योग की कल्पना ही कल्पना करना चाहता है। परन्तु यौगिक जितने आसन हैं प्रारम्भ में जब मानव की योग को प्रारम्भ करना है तो समय समय जिस क्रिया को करो तो उसका अध्ययन करना प्रारम्भ करो। जब अध्ययन करोगे अध्ययन से तुम्हारे मस्तिष्क में विवेक आता रहेगा। ज्ञान प्रबल होता रहेगा। प्रकृति के ऊपर अनुशासन होता रहेगा। परन्तु यदि हम योग करते हैं। प्राणायाम करते है। परन्तु यदि हमारा इनके ऊपर अध्ययन नहीं है तो उससे लाभ प्राप्त नहीं होता। लाभ उस काल में प्राप्त होता है जबकि जिस क्रिया को

करो। उसके ऊपर अध्ययन करना प्रारम्भ करो।

हमारे ऋषि मुनियों ने सबसे प्रथम अध्ययन को ऊँचा माना है। अध्ययन का अभिप्राय यह है कि हम प्रत्येक इन्द्रिय का अध्ययन प्रारम्भ करें। जिस क्रिया को मानव करना चाहता है मानो सर्वांग कृति आसन करता है और उसको विचारा जाए। शान्त मुद्रा में उस आसन के ऊपर अध्ययन किया जाए, तो वह आसन सिद्ध हो जाता है। जिस औषधि को हम पान करना चाहते हैं, जिस पंचांग को हम पान करना चाहते हैं उसका हमें अध्ययन होना चाहिए। इसमें कितनी व़िुत है? इसमें कितने जल परमाणु हैं? कितने अग्नि परमाणु? कितने नाना प्रकार के परमाणु हैं? जिससे हमारा शरीर सात्विक वातावरण में जा सके। यह सब अध्ययन कहा जाता है। हमारे ऋषि मुनियों ने एक एक वृ के अध्ययन करने में वर्षों व्यतीत किए। एक एक औषधि के अध्ययन में वर्षों व्यतीत हो जाते हैं। तुम्हें यह सब प्रतीत है जिस समय महात्मा दधीचि के मस्तिष्क की महाराज इन्द्र ने दूर कर दिया था। तो मुनिवरोंदेखो !, अश्वनी कुमारों ने जो बह्म विद्या को पान कर रहे थे। उन्होंने तीन औषधियों को एकत्रित किया था और तीन औषधियों को विचारने के लिए बारह वर्ष का अध्ययन उन्होंने किया था। वह तीन औषधि कौन सी थी? शंकाहूलि संखाहुली, शंखपुष्प स्वेत्ता, अप्रीति यह तीन औषधि हैं। इनका पाह बनाया जाता है। मानों अग्नि में तपाकर के मुनिवरों माह तक पृथ्वी 6 लगभग यह ! के गर्भ में रहे। उसके पश्चात जिस मानव के कण्ठ का भाग दूरी हे जाए। उसका लेपन करने से ज्यों का त्यों बन जाता है। तो परिणाम यह कि् आज हम इसको कहते हैं अध्ययन। अध्ययन का अभिप्राय क्या कि हम यौगिक क्षेत्र में जाए। अध्ययन करने वाले बनें। जब तक हमारा अध्ययन ऊँचा नहीं होगा। एक मानव वेद को पोथी की पोथी जानता है। वेद के मन्त्रों पर यदि अध्ययन नहीं है तो मुनिवरों वह अक्षरों का बोधी ! कहलाता है। जब अध्ययन हो जाता है। उस समय विवेक उत्पन्न होता है। और यह विवेक जब समाज में होता है, जिस समाज में अध्ययनशील पुरुष होते हैं। उस समाज अथवा राष्ट्र में कुरीति नहीं आ पाती।

मेरे प्यारे मुझे स्मरण आता रहता है । जगत का बहुत सा साहित्य। आज मैं अधिक !

विवेचना देने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय यह कि हमेंअध्ययन करना चाहिए। एक मानव है वह मानव का अध्ययन करता है। कैसे करता है?वह उसकी चर्चा को दृष्टिपात करता है। परन्तु उसका जो कर्म है, उसका जो विचार है उसका अध्ययन करता है। उसमें वह समाहित होकर दृष्टिपात करता है। अध्ययन करते करते उसे उस मानव की जानकारी हो जाती है। तो विचारना क्या? बेटा हमें प्रत्येक वस्तु को साक्षात्कार करना ! है। इसी का नाम योग है। आज हम उस योग को तो लाना चाचहते है। हम परमात्मा को साक्षात्कार करना चाहते है। हम परमात्मा को साक्षात्कार करना चाहते हैं। तो मन और प्राण दोनों का अध्ययन होगा। जितना भी जगत में विभाजनवाद है वह चाहे लोक लोकान्तरों में हो, वह चाहे पृथ्वी में हो, वह वनस्पतियों में क्यों न हो, मानव में क्यों न हो, जितना भी विभाजनवाद तुम्हें दृष्टिपात आता है यह मन और प्राण के पृथक होने से ही सब दृष्टिपात हो रहा है। परन्तु जब हम दोनों का मिलान करना चाहते हैं। अध्ययन कर दोनों का लेते हैं कि इसका विभाजन क्यों है? जैसे हम अध्ययन करते हैं यह सूर्य मण्डल है। यह चन्द्र मण्डल है, यह आरुणि है, यह वृहस्पति है, यह स्वाति है, सप्तऋषि मण्डल है, यह वशिष्ठ हैं यह अरुणादत्ति है, यह जेठाय है, यह जो नाना प्रकार के लोक लोकान्तर हमें दृष्टिपात हो रहे हैं यह विभाजनवाद दृष्टिपात हो रहा है। परन्तु यह सब मन और प्राण के कारण ही दृष्टिपात हो रहा हैं तो हमें मन और प्राण के ऊपर अध्ययन करना है। जब मन और प्राण दोनों का मिलान हो जाए तो मुनिवरों ! तो वह योग सिद्ध कहलाता है।

चिन्तन किसे कहते है? मन और प्राण दोनों के चिन्तन का नाम ही प्रभु को जानना है। जब हम दोनों का चिन्तन करेंगे, अध्ययन करेंगे, उस चेतना को जिसको हम ओइम् कहते हैं। उस ओइम् रूपी धागे में जब हम मन और प्राण दोनों एक सूत्र में ला देते हैं, दोनों का एक मन का बनाकर के ओइम् रूपी धागे में पिरोया जाता है। तो आत्मा अपने प्रभु को साक्षात्कार कर लेता है। तो मेरे प्यारे आज मैं अधिक विवेचना तो ! देने नहीं आया हूँ। आज हम अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाने आए हैं। प्रभु क्या है, प्रभु का हमें अध्ययन करना है। यह कण कण में दृष्टिपात आ रहा है। यह प्रकृतिवाद

का जो सूक्ष्म तत्त्व है यह जहाँ भी भयभीत होता है वहीं परमात्मा को उपस्थिति इसको भयभीत करती है। तो विचार विनिमय यह कि प्रत्येक वस्तु का अध्ययन करना। जीवन को ऊँचा बनाना है। यह है बेटाआज का हमारा वा !क्य। आज के वाक्यों का अभिप्राय यह कि हम अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते रहें।

नाना प्रकार का हमारा अध्ययन होना चाहिए। क्योंकि ज्ञान की कोई सीमा नहीं है। ज्ञान तो असीमित है। आज हम एक एक वस्तु पर अध्ययन करने के लिए सदैव तत्पर रहें। क्योंकि आज हमें द्रव्यपति बनना है तो द्रव्य के ऊपर अध्ययन करना होगा। द्रव्य का मूल कारण क्या है? जब मानव द्रव्य पर अध्ययन करता है तो ऋषियों ने अध्ययन करते करते ऐसा कहा है कि यह जो द्रव्य है लक्ष्मी है यह माँ है, यह ममतामयी माँ है। यदि द्रव्य को सदुपयोग में लगाते चले जाओगे तो यह तुम्हारी पूज्यनीय बनकर माँ ममतामयी होगी। और यदि दुरुप्योग करना प्रारम्भ कर दोगे तो यही लक्ष्मी मानव को नारकी बना देती है। परिणाम क्या कि यौगिक साधना में जाने के लिए हमें प्रत्येक वस्तु का अध्ययन करना है। माँ की आज्ञा के अनुसार हमें कर्म करना है।

इसी प्रकार प्रभु के द्वार से यदि आन्तरिक हृदय में प्रेरणा आती रहेगी उसके अनुसार मानव को अध्ययन करना चाहिए। अध्ययन का नाम ही बेटा योग कहा गया है। यह ! है हमा आज का वाक्। आज के वाक्यों का अभिप्राय क्याकि हम प्रभु का गुणगान गाते रहें। योग सिद्ध होते रहें। क्योंकि योगी बनना राष्ट्र के लिए, समाज के लिए सर्व हितकर कहलाता है। वह हमें करना चाहिए। इस पर हमा अध्याय गम्भीर होना चाहिए। गम्भीर अध्ययन से हमारे में विवेक उत्पन्न होगा। राजा के राष्ट्र में भी विवकी पुरुषों की आवश्यकता है। और जहाँ सर्वत्र अध्ययन करने वाले प्राणी हो जाते हैं वहाँ राट्र की भी आवश्यकता नहीं रहती। वहाँ तो शासक की भी आवश्यकता नहीं रहती। वहाँ तो केवल कर्तव्य का पालन है। मुझे स्मरण है सतोयुग काल में शासक नहीं था। केवल अपने अपने कर्तव्य का पालन करते थे। जब अध्ययनशीलता में सूक्ष्मता (न्यूनता) आती चली गई उस समय राष्ट्रवाद की आवश्यकता हुई। उस समय राजा बा और प्रजा बनी, प्रजा को अनुशासन में लाने के लिए कर्त्तव्यवाद के लिए जो राजा बन

करके प्रजा को कर्तव्यवाद में नहीं ला सकता उसका राजा बनना व्यर्थ है। क्योंकि धर्म की रक्षा करने के लिए राष्ट्र का निर्माण होता है। राष्ट्र का चुनाव होता है। तो राजा जब राष्ट्र का अध्ययन करना प्रारम्भ करता है तो उस समय यह प्रतीत होता है। समाज को कर्तव्यवाद की वेदी पर लाना ही राष्ट्रवाद कहलाता है। और जब कर्त्तव्यवाद आ जाता है समाज में तो शासक की आवश्यकता नहीं रहती। यह आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

२१ अतिथि 003 पुष्प 20 कर्त्तव्यवाद ही धर्म है।

देखो, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष!, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, हमारे यहाँ वेदों के उच्चारण करने के नाना प्रकार के होते हैं। शब्दों का मिलान प्रायः छन्द इत्यादियों से और उसमें नाना प्रकार ेक स्वरों को ग्रहीत करके होता है। जिस प्रकार मानव के मुखारबिन्द में वाणी होती है वह प्रायः शब्दों की रचना करती रहती है। शब्दों की रचना मानव के कंठ से लेकर के और जब तक उसका निर्माण और उसकी प्रतिभा होती उसी में निहित रहती है। जब हम यह विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि हमारे नाभि केन्द्र से प्राण का तारतम्य होता है और वहाँ जो तीन प्रकार की इडा पिंगला और सुषुमना नाड़ी होती हैं उनका सम्बन्ध भी कंठ के उन्हीं शब्दों से होता है। क्योंकि वे नाड़ियां शब्दों की रचना में सहायक होती हैं। परन्तु हमें विचारना यह है कि शब्दों की जो रचना है, उसका जो उद्गार है, उसका जो स्वर प्रारम्भ होता है वह नाभि से लेकर के मस्तिष्क तक होता है। क्योंकि मस्तिष्क से भी शब्दों का तारतम्य होता है। वास्तव में वाणी से बाह्य वाक् उच्चारण करने को कहा जाता है। जब हम गम्भीरता से विचारते हैं तो वाणी का जो उद्गार है वह मानव के शरीर में जिसको ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं। जहाँ नाना प्रकार की नस नाड़ियों का समूह होता है वहाँ से उसकी रचना होती है।

एक वाक्य और ऋषि ने कहा है ब्रह्मरन्ध्र प्रभा गृह प्रभे लोकाग्रम् ब्रह्मः लोकाः अस्ते सुप्रजाः। वेद का ऋषि कहता है कि मानव शरीर में जिसे हम ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं इसमें ही जो सूक्ष्म सूक्ष्म वाहक नाड़ियां होती हैं उन नाड़ियों का सम्बन्ध नाना प्रकार के लोक

लोकान्तरों से होता है। यह जो हमारे यहाँ पञ्च महाभूत हैं उनसे विशेषकर उन नाड़ियों का सम्बन्ध होता है उसके पश्चात उनका सम्बन्ध नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों से होता है। संसार में कोई लोक ऐसा नहीं कोई मण्डल ऐसा नहीं जहाँ ये पञ्चभूत कार्य न करते हों। विज्ञान काण्ड में भी कुछ ऐसा ही माना गया है।

ब्रह्मरन्ध्र में एक नाड़ी इस प्रकार की होती है जिसको हमारे यहाँ सौभांगकृत नाम की नाड़ी कहते हैं। उस नाड़ी का मुखारबिन्द ऊपर को होता है। वह द्युलोक से शब्दों को लाती है और मानव मस्तिष्क में नाड़ियों के द्वारा वही इस वाणी की रचना बाह्य रूप धारण कर लेती है। मं आज इस दार्शनिक विषय में अधिक नहीं जाना चाहूँगा। उद्गम नप्रकट करने वाले हैं। आज तो केवल वेद पाठ यह कह रहा है कि मानव (विचार) की वाणी का सम्बन्ध द्युलोक से होता है। द्युलोक का सम्बन्ध मानव के चित्त से होता है। चित्त का सम्बन्ध अहंकार से होता है। अहंकार कासम्बन्ध मन से होता है। बुद्धि का सम्बन्ध मन से होता है और मन का सम्बध जिसे वाणी कहते हैं उससे इसका सम्बन्ध होकर के बाह्य रूप धारण हो जाता है। मानो बाह्य रूप को वह अपनाने लगते हैं। और वार्त्ता प्रारम्भ होने लगती हैं क्योंकि चित्त में जैसे संस्कार होते हैं उसी के शब्दों की रचना द्यु लोक से इस मानव शरीर में प्रायः होने लगती है।

इसीलिए ऋषियों ने कहा है हे ब्राह्मण जब तू यज्ञशाला में विराजमान होता है तो ! जब तू यज्ञशाला में वेद का !तेरी वाणी में कितना तेज होना चाहिए। हे ब्राह्मण पठन पाठन करा है तो उस समय तेरी मानो प्रवृत्ति कितनी पवित्र होनी चाहिए। जितनी ब्राह्मण की मनः प्रवृत्ति पवित्र होगी उतना ही यज्ञ पवित्र होगा, महान होगा। परिमार्जित हेकर जितना यज्ञ किया जाता है त्याग के द्वारा उतना ही उसका वस्तविक रूप मानव के समीप प्रारम्भ हो जाता है। आज मैं अपना अधिक प्रकाश देना नहीं चाहता हूँ। उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि परमपिता परमात्मा को महिमा का गुणगान गाते हुए कि वह प्रभु कितना सुन्दर है। कितना महान है। जिसने द्यु लोक का अद्भुत रचा है जिसमें शब्दों की प्रतिष्ठा रहती है। अरे, यह जगत उस मेरे प्यारे प्रभु ने कितना ! सुन्दर रचाया है। इसको मानव की विचारना चाहिए। क्योंकि हमारी वाणी में इतने

शब्द ही नहीं है जहाँ हम उस अपने प्यारे प्रभु की महिमा का गुणगान गाते चले जाएं। क्योंकि शब्द उसकी महिमा में कार्य नहीं करता? आज मेरे प्यारे महानन्द जी अपना कुछ प्रकाश देंगे और अपने पक्षपात से रहित होते हुए, कटुता को त्याग करके कुछ अपने शब्दों का प्रतिपादन करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः का प्रवचन गतानि हृदय श्चमः व्यापकम् देवेभ्यो नमः। ये गत्राणि) !अथवा ऋषि मण्डल !मेरे पूज्यपाद गुरुदेव (हृदये च मे व्यापकाः देवाः तेभ्यो नमः मेरे पूज्यपाद !भद्र समाज गुरुदेव ने अपना बहुत ही अमूल्य समय प्रदान किया। और यह उच्चारण किया है कि पक्षपात को त्याग करके वाक्य उच्चारण करना परन्तु पक्षपात तो नहीं हो पाता। जहाँ तक कटुता का प्रश्न है। प्रायः संसार में सत्यवाद को ही कटुता कहा जाता है। क्योंकि जितना मानव में सत्यवाद होता है उतना ही आज के समाज ने कटुता में उन वाक्यों का प्रतिपादन करना प्रारम्भ कर दिया है। जब हम किसी भी सत्य वार्त्ता को लेकर के संसार में उद्यत होते हैं तो उसमें इस समाज को कठिनाइयां और नाना प्रकार की ऐसी कम्पनता आने लगती है परन्तु जब उसमें हम सूक्ष्म सा मिथ्या मिश्रण करदेते है तो उसमें नाना प्रकार की रोचकता होती है। आज मैं यदि समाज की यथार्थ वार्त्ता को प्रकट करने लगूं तो केवल यही वाक्य कि यह क्या मूर्ख वार्त्ता प्रकट की जा रही है परन्तु मैं इस प्रकार की वार्त्ता प्रकट करने नहीं आया हूँ। केवल अपने पूज्यपाद गुरुदेव कोयज्ञ के सम्बन्ध में वैज्ञानिक वार्त्ता प्रकठ करने के लिए आ पहुँचा हूँ। यज्ञमान के प्रति भी कुछ शब्दों का प्रतिपादन करने आया हूँ मुझे कोई अधिक चर्चा प्रकट नहीं करनी है।

जहाँ मैं यज्ञशाला का प्रमाण देने लगता हूँ उसके वैज्ञानिक तत्त्वों को प्रकट करने लगता हूँ तो मेरे हृदय में प्रायः ऐसी कम्पनता उत्पन्न हो जाती है कि मैं यज्ञ के सम्बन्ध में क्या उच्चारण कर सकता हूँ। जिन महापुरुषों न, ऋषि मुनियों ने यज्ञ के लिए अपने जीवन को समाप्तकर दिया। आज का समाज उस यज्ञ को ही पाखण्ड के रूपों में प्रतिपादन करने लगा है। उसका मूल कारण है कि वह जो बुद्धिमान ब्राह्मण है उसके द्वारा वह पवित्रता न रहने के कारण ही उस ब्राह्मण को आज का समाज अपवित्रता में परणित

करने लगता है। पाखण्डवत उच्चारण करने लगता है। क्योंकि यहाँ संसार में द्रव्य की पूजा करना ही ऐसी कम्पनता उत्पन्न हो जाती है जिससे मानववाद का ह्रास होता रहता है। आज जब मैं आधुनिक काल के राष्ट्र की वार्त्ता प्रकट करने लगता हूँ तो ऐसा विचार आता है कि यह समाज कहाँ जाएगा? यह जगत कहाँ जा रहा है? यह भयंकर अग्नि में अपने को प्रविष्ठ कराता चला जा रहा है।
आज जब मैं यह विचार लेकर चलता हूँ कि यह संसार कितना अग्नि के तट पर जा रहा है तो मन में केवल एक ही विचार आता है कि आधुनिक जगत का यह एक महान दुर्भाग्य ही है। आज के समाज में कितनी कुरीतियां हैं? परन्तु मैं कुरीतियों को उच्चारण करने नहीं आया हूँ। केवल वाक्य यह उच्चारण करने आया हूँ कि कि इस संस्कृति के लिए आज के मानव ने किसी भी प्रकार का प्रयत्न नहीं किया है। हमारी वैदिक परम्परा की संस्कृति पर जब हम विचार करते हैं, दूसरे राष्ट्रों में जाते हैं, दूसरे राष्ट्रों की चर्चाएं प्रकट करते हैं, समाज की चर्चा लेते हैं, मानो राष्ट्र की चर्चा लेते हैं तोउस समय ही कहा जाता है कि ऋषि मुनियों की जो भूमि थी वह क्या पुकार रही है? आज जब ऋषि मुनियों की भूमि पर पहुँचते हैं तो वहाँ उनके हृदयों में ऐसीकम्पनता होती है कि मन की रचना के आधार पर ही वास्तविक शान्ति न मिलने के कारण धर्म की परम्परा में नाना प्रकार का रिढ़वाद हो जाता है। धर्म का मर्म नहीं रहता। एक रूढ़ि ही होकर रह जाता है। आधुनिक काल का यह जगत ऐसा ही कर रहा है। क्योंकि आज का जो रूढ़िवाद है इसके ऊपर भी मानव को विचार विनिमय करना है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने जब मुझे शिष्य बनाया था तो मुझे स्मरण है कि कितने परिश्रम करने के पश्चात शिष्य बनाया। कितनी उन्होंने परीक्षाएं ली हैं, कितना जीवन का निदान किया गया। जब तक गुरु शिष्य दोनों का निदान पवित्र नहीं होगा, दोनों की भावना में विवाद नहीं रहेगा। उस समय गुरुवाद पवित्र बना करता है। वह गुरुवाद कहलाता है उसकी गुरुडमवाद नहीं कहते। गुरूडमवाद किसे कहा जाता है? जहाँ मन के चमत्कारों में ही समाज आ जाता है और उसमें रूढ़ि बन जाती है तो धर्म का विनाश हो जाती है।
इसलिए धर्म को ऊँचा बनाना है संसार में और राष्ट्र दो ही तो वस्तु हैं। दोनों वस्तुओं

को लेकर के हमारा जीवन चलेगा। धर्म और राष्ट्रीयता की एकता में परिणित करेंगे। राजा धर्म से पिरोया हुआ होगा। प्रजा भी धर्म से पिरोई हुई होगी। ब्राह्मण समाज जब धर्म से पिरोया हुआ होगा उस समय यह समाज पवित्र बन जाता है। जहाँ राष्ट्रवाद में यह घोषणा की जाती हो कि हम निरपेक्ष बनगए हैं। परन्तु निरपेक्षता कहते हैं? निरपेक्षता उसेकहते हैं जिसका हृदय विशाल है वही तो संसार में निरपेक्षता की वार्त्ता प्रकट कर सकता है। और जहाँ उनके मन में कुछ है और बाह्य जगत कुछ है। वे संसार में निरपेक्ष शब्द उच्चारण करने के अधिकार ही नहीं होते। इसका मूल कारण क्या है? मन में लगा हुआ क्याहै कि यह जो सम्प्रदाय है यह हमारे राष्ट्र को विनाश को न ले जाय। परन्तु मन में आन्तरिक भावना जब यह होती है राजा की तो उस समय इन शब्दों के उच्चारण करने का क्या अधिकार रह जाता है उसको? कोई अधिकार नहीं रह जाता। इसीलिए आज का जे मानव वाद है, आज का जो राष्ट्रवाद है उनसे जब एकान्त में यह जानकारी की जाती है कि कौन से सम्प्रदाय के अनुयायी हो तो कहा जाता है कि मैं ईसा के मानने वाला हूँ। एक कहता है मैं मुहम्मद को मानने वाला हूँ। एक कहता है मैं दयानन्द के मानने वाला हूँ। एक कहता है मैं शंकर के मानने वाला हूँ। एक कहता है मैं महावीर के मानने वाला हूँ। कोई कुछ उच्चारण करता है। कोई कुछ नाना सम्प्रदाय हैं। उनकी मैं गणना नहीं करना चाहता हूँ। परन्तु जब उसके हृदय से यह जानकारी ली जाती है कि क्या तुम्हारा मुहम्मद के मानने वालों पर विश्वास है अथवा नहीं? उससमय कहेंगे यह जो हमारे राष्ट्र का विनाश कर सकते हैं वे ही मानो पदाधिकारी हैं। उनकी अन्तर भावनाएं जब ऐसी दूषित होती हैं। ईसामसीह वालों से कहा जाता है कि इनके प्रति तुम्हारा क्या विचार है? कहेंगे कि बहुत द्रव्य आता है परन्तु राष्ट्र का विनाश होने जा रहा है। दयानन्द मानने वालों से जब यह प्रश्न किया जाता है कि तुम इन सम्प्रदायों को एकता में लेकर के व्यापकता में चलते हो? नहीं नहींहम तो उसी पर चला करते हैं जो हमारे वेद के ऋषियों का आदेश है। वास्तव में देखो, ऋषि दयानन्द का सिद्धान्त रूढ़ि नहीं कहता, शंकर का विचार भी यहाँ रूढ़ि नहीं बनता, बुद्ध का विचार भी यहाँ रूढ़ि नहीं बनता। रूढ़ि आती उस काल में है जब मानव के द्वारा स्वार्थ

की भावना आ जाती है। यदि स्वार्थ न रहेगा। यह रूढ़ि ही नहीं रहेगी। जहाँ स्वार्थवाद की भावना। जाती है जहा केवल पदों की लोलुप्ता आ जाती है वहाँ केवल रूढ़िवाद बना करता है। इसीलिए आज मैं अपने पूज्यपाद गरुदेव को निर्णय देना चाहता हूँ जो मेरा केवल एक विचार है। क्योंकि वेद की छत्र छाया में समाज के न रहने से ही यह संसार मृत्यु के द्वार पर चला जा रहा है। राष्ट्रवाद वेद को वार्त्ता को न मानता हुआ ही नीचे कोक चला जा रहा है।अरे, मानव विचारों को जब तुम्हारी अन्तर भावना यह ! नहीं कहती कि निरपेक्षता कहते किसे है? निरपेक्ष व्यक्ति कौनहोता है? वह कितना परिमार्जित होता है। परन्तु जब किसी का साम्प्रदायिक वाक्य समीप आता है तो राष्ट्र के पदाधिकारी अपने मन में यह विचारते हैं। अरे, यह तो सम्प्रदायों का विवाद है इसमें क्या विचारना चाहिए? जहाँ पदों की लोलुपता आती है वहाँ कहते हैं कि हम तो निरपेक्ष माने जाते हैं। अरे, क्या गृहों में भी अपने प्यारे पुत्रों से भी क्या तुम्हारा हृदय भी ! इस वाक्य को स्वीकार करता है अथवा नहीं? अरे, जब तुम्हारा हृदय इन वाक्यों को प्रकट नहीं कर रहा है तोइन शब्दों को उच्चारण करना तुम्हें मृत्यु के द्वार पर ले जा रहा है। इसीलिए आज हमें विचारना है कि जब सभी मानव अन्तःकरण से यह उच्चारण करेंगे कि हम निरपेक्ष माने गए है। इसमें किसी का पक्षपात नहीं होता। अरे, मानव ! जब तुम अपने हृदय से ही पक्षपात करते हो, अपने अन्तरात्मा से जिस राजा के राष्ट्र में पक्षपात किया जाता हो तो वह निरपेक्ष उच्चारण करने का अधिकारी नहीं होता। आज हमें यही विचारना है।

हमें जब नाना प्रकार के ऐसे अशुद्ध स्वप्न आते है कि कहीं अग्नि प्रदीप्त हो रही है। यह समाज कहीं का कहीं जा रहा है। उस समय यह वाक्य जब मानव के समीप आता है तो मानव को यह विचारना है कि हमें मानववाद की घोषणा करनी है। हमें धर्म और मानवता को, राष्ट्र और धर्म को ऊँचा बनाना है। हमारी परम्परा क्या कह रही है? वेद का ऋषि क्या कह रहा है? वेद का ऋषि कहता है कि राजा को निष्पक्ष होना चाहिए। परन्तु अपनी एक मानवता का निर्माण करना बहुत अनिवार्य है। जब तक मानवता राजा के राष्ट्र में उस काल तक नहीं आती है जब तक वह स्वयं मानव नहीं बन जाता। जब

वही मानव नहीं तो राष्ट्र कैसे मानव बनेगा।इसीलिए आज हमें अपने उन विचारों को लेकर चलना है। जिन विचारों से हमारा जीवन पवित्र बनता है। आततताईयों को जब तक दण्डित नहीं किया जाएगा, मृत्यु तक दण्डनहीं दिया जाएगा तब तक राष्ट्र पवित्र नहीं बना करता है। क्योंकि राष्ट्र तब पवित्र होता है जब दैत्यों का दमन किया जाता है। और देवताओं की रक्षा की जाती है। इसी को तो धर्म कहा जाता है और इसी को राष्ट्र कहा जाता है। राजा के राष्ट्र में जहाँ आततइायों को पद दिए जाते है और जो मानव देता हों इनको ठुकराया जाता हो वह राष्ट्र इस समाज में मानव देवता हों उनको ठुकराया जाता हो वह राष्ट्र इस समाज में कितने समय तक जीवित रह सकेगा। वह जीवित रहने वाला नहीं। उसमें तो केवल विनाश का ही मूल कारण बना करता है। आज हमें राष्ट्र और धर्म दोनों को ऊँचा बनाना है। राष्ट्र और धर्म कैसे ऊँचे बनेंगे क्योंकि राष्ट्र जो होता है वह धर्म को रक्षा करने के लिए होता हैं वेद कह रहा है कि धर्म की रक्षा करो। राजा बन करके धर्म की रक्षा करो। धर्म कैसे रक्षा में आ सकेगा मानवता को तुम कैसे ऊँचा बना सकोगे, अपने को निष्पक्ष उच्चारण करने की घोषणा के स्पप्न को कैसे पूर्ण कर सकोगे? उस काल में तुम्हारी स्वप्न अवस्था पूर्ण हो सकेगी जब तुम स्वयं चरित्रवान बन करके समाज में आ जाओगे। इस समाज में मानवता का प्रसार होता चला जाएगा।

देखो, वेद कोई सम्प्राय नहीं होता। वेद को हमारे यहाँ प्रकाश कहा जाता है। जिसमें ज्ञान हो, मानवता का निर्माण हो, जो सार्वभौम विचार हो, जहाँ यह विचार प्राप्त होते हो, जो सार्वभौम विचार हो, जहाँ यह विचार प्राप्त होते हों उसकी रूढ़ि कदापि नहीं कहा जाता। रूढ़ि केवल वह होता है जब मानव स्वार्थवाद में आ करके नाना प्रकार के अपराधों में परणित हो जाता है। किसी मानव को दण्ड देना, किसी मानव के गृहों के अकृतों में आक्रमण कर देना (आदर्शों), यह सब दैत्यों का कार्य होता है यह कोई धर्म नहीं कहलाता, न राट्र कहलाता है।

मैं यज्ञ के सम्बन्ध में भी अपना प्रकाश दे रहा था जहाँ यज्ञ कासम्बन्ध आता है, यज्ञ इतनी सूक्ष्म वस्तु कहलाया गया है कि यज्ञ में मानव के स्वाहा उच्चारण करने से उसके

साथ में मानव के स्वाहा उच्चारण करने उसके साथ में आहुति जाती है, सुगन्धि जाती है उसे देवता ही तो प्रदान करते हैं। कौन से देवता प्रदान करते हैं? सूर्य की किरण उन्हें अपने में निगल जाती है, वायु निगल जाता है, अग्नि निगल जाता है, जल निगल जाता है, इसी प्रकार यह अन्तरिक्ष में परणित हो जाते हैं। एक दूसरे का तार तम्य मानो देवता कहलाया गया है। वह जो देवता वत यज्ञकागार्य है वही तो यज्ञमान को पवित्र बनाता है। हे यज्ञमान जब तू क्रोध की मात्रा को लेकरके यज्ञशाला में परणित ! होता है तो जीवन के लिए तुझे विचारना है। आज जब यह जीवन नहीं रहेगा तो क्रोध रूपी महान अग्नि में दो गई आहुति का देवता भी स्वीकार नहीं करते। देवता जो तेरे शरीर में कार्य कर रहे हैं जल, अग्नि वायु इत्यादि जो तेरेसुकृत को हनन करते चले जा रहे है और वह जो सुकृत है वही तेरा जीवन है। जब सुकृत नहीं रहेगा तो तेरी मृत्यु निकट आ जाएगी। मुत्यु किसे कहा जाता है? मृत्यु उसी को कहा जाता है जहाँ क्रोध की मात्रा के प्रभाव में आकर के जहाँ देवता भी ठुकरा दिए जाते हों। अरे, वही तो मृत्यु कहलाई गई है।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यज्ञ के सम्बन्ध में नाना विचार दिए हैं क्योंकि इनका यज्ञों का बहुत विषय रहा है। कई प्रकार के यज्ञों के विषयों को वे जानते रहते हैं। बहुत अनुसन्धान किया है। मुझे स्मरण है कि इन्होंने यज्ञ कराते हुए जीवन मुक्त होने तक प्राणियों को अकृत किया है। यज्ञ अति सूक्ष्म विषय माना गया है। क्योंकि यज्ञ में तो देव पूजा होती है और देव पूजा कहाँ से होती है? देव पूजा कहाँ से उत्पन्न होती है। और जब मानव के हृदय और परमामा के हृदय दोनों का समन्वय हो जाता है तो यज्ञ सफल हो जाता है। और जहाँ दोनों के मध्य में क्रोध की मात्रा आ जाती है यज्ञ में असफलता आ जाती है। देवता उसके सुकृत को हनन करने लगते हैं। काम की प्रवृत्ति आ जाती है तो वह उस महानगहन अन्धकार में चला जाता है जहाँ उसे कोई प्रकाश नहीं मिलता।

आज मैं अधिक चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। और न किन्हीं वाक्यों का स्पष्टीकरण ही किया करता हूँ। केवल वाक् य उच्चारण करना यह है कि आज जब तक हम

विचारेंगे नहीं, अपने जीवन सुन्दर नहीं बनायेंगे तब तक हमारा जीवन और राष्ट्र कदापि भी पवित्र नहीं बनेगा। इसीलिए जब मैं आज छात्रबल कीचर्चा प्रकट करने लगता हूँ अरे, यह छात्रबल कैसे पवित्र बनेगा? क्योंकि छात्रबल ही तो एक यज्ञ कहलाया गय है। छात्रबल उसक काल में पवित्र बना करता है जब यह यज्ञ होता है। कौन सायज्ञ होता है। जब आचार्य के मुखारबिद से यज्ञ होता है। जब आचार्य यह विचारता है कि वाणी का उद्गार कहाँ से आता है? कहाँ से शब्दों की रचना होती है? कौन सी नाड़ी इस प्रकार की है? जब ब्रह्मचारी को इस प्रकार की श्क्षि दी जाएगी, बल के रक्षा करने की शिक्षा प्रदान की जाएगी। सजा के राष्ट्र का राष्ट्र नष्ट हो सकता है। क्योंकि राजा भी छात्रों में से ही उत्पन्न हुआ करते हष्ै। वहीं से उनकी प्रवृत्तियों का निर्माण होती है। जो आचार्य कामातुर हो करके ब्रह्मचारी को शिक्षा देगा, उस सरस्वती में ब्रह्मचारी की बुद्धि इसी प्रकार की बन जाती है। इसी प्रकार छात्रों में जब आचार्य शिक्षा देगा और पक्षपात उसे मस्तिष्क में होगा और तमो गुण उसके मस्तिष्क में होगा, घृणा उसके मस्तिष्क में होगी, क्रोध उसके मस्तिष्क में होगा, आलोचना उसके मस्तिष्क में होगी तो क्या उस आचार्य को ऋषि कहते हैं? यहाँ वायु मुनि ने कहा है कि ऐसे आचार्य के शिक्षालय में स्थान नहीं देना चाहिए। क्योंकि आचार्य से उस विद्यालय की मृत्यु हो जाती है। जहाँ इस प्रकार के आचार्य होते हैं, जहाँ स्वार्थववादी आचार्य होते हैं। इसीलिए आज मैं अधिक चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता हूँ।

देखो, महाभारत काल का विनाश इसी प्रकार हुआ जब मुझे त्रेता काल स्मरण आने लगता है तो त्रेताकाल में भी इसी प्रकार से रावण का विनाश हुआ। क्योंकि जहाँ पक्षपात के द्वारा शिक्षा प्रदान की जाती है, जहाँ निष्पक्षता नहीं होती विज्ञान नहीं होता, विवेक नहीं होता, उस समय वह ब्रह्मचारी को पवित्र नहीं बना सकता। छात्रबल को कदापि भी ऊँचा नहीं बना सकता। इसीलिए छात्रबल को कदापि भी ऊँचा नहीं बना सकता। इसीलिए छात्रबल के लिए पवित्रवाद होना चाहिए। आज छात्र ऐसें हों कि अपने राष्ट्र के हित के लिए स्वार्थ के लिए नहीं राष्ट्र हित के लिए जीवन दान करने वाले हों। इसलिए धर्म के विषय में विचार विनिमय करना चाहिए। जब छात्र धर्म के

विषय में विचार विनिमय करता रहेगा तो यह वास्तव में निश्चित हो जाता है कि उसराजा के राष्ट्र में जो छात्र बल है वह पवित्रवाद को प्राप्त होता रहेगा।
राष्ट्र उस काल में पवित्र बनेगा जब यहाँ प्रत्येक मानव अपने अपने कर्तव्य का पालन करेगा। क्योंकि कर्तव्यवाद हो तो हमारे यहाँ धर्म माना गया है। धर्म केवल उसको नहीं कहा जाता है कि आज हम शिवालय में चले आये। इससे कदापि भी राष्ट्र, समाज और धर्म ऊँचा नहीं बनता है। धर्म और मानवता उसका कल में ऊँची बना करती है जब मानव मानव के विषय में विचार विनिमय करना प्रारम्भ कर देता है। जहाँ कर्तव्यवाद नहीं रहता केवल स्वार्थवाद आ जाता है। उस काल में धर्म और राष्ट्र दोनों ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। आज का जो समाज मुझे दृष्टिपात आ रहा है आज जो प्रत्येक मानव के हृदय में स्वार्थ भरे वाक्य से प्रश्न किया जाता है तो वहाँ केवल एक अग्निऐसी प्रदीप्त होती है कि उनका हृदय यही कह रहा है कि यह राष्ट्र कदापि भी ऊँचा नहीं बनेगा। राष्ट्र में तो मृत्यु आ गई है। ऐसा क्यों कहा जा रहा है? इसका मूल कारण क्या है? इसका मूल कारण संसार में कर्तव्यवाद का न रहना और स्वार्थवाद का आ जाना। द्रव्य को अधिक प्रधानता दे देना और हृदय में कुछ है ओर बाह्म जगत उनका कुछ और है। मनोवैज्ञानिकऋषि कहते हैं कि राजा के राष्ट्र में कर्णधारों के मस्तिष्कों में ऐसी विचारधारा है तो उस समय प्रजा सदैव और राष्ट्र अग्नि के मुखारबिंद पर विराजमान हो जाता है। यह संसार उस अग्नि के मुखारविंद पर विराजमान हो जाता है। यह संसार उस अग्नि के मुखारबिन्द पर विराजमान हो जाता है। इसीलिए आज का हमारा वाक्य क्या कह रहा है? आज हमें प्रत्येक विषयों पर विचारना है। क्योंकि जितने संसार के विषय हैं उन्हीं सब पर विचार विनिमय करके हमें आगे चलना है। अन्यिा हम संसार में मानवता को कैसे ऊँचा बना सकेंगे।
आज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी बुद्धि की कितनी सुन्दर वार्त्ता प्रकट कराई। वाणी की रचना। आज वही राष्ट्र नेता ऊँचा और सुन्दर माना जाता है जो अधिक मान है। बुद्धिमान इसलिए है क्योंकि उसने शरीर में मिथ्याओं का गृह बना लिया है। हृदय का वाक्य कोई ओर है और बाह्य जगत में उसकी रचना कुछ और है। इसीलिए यह

समाज अधोगति को प्राप्त हो रहा हैं इस जगत का आज एक ही उपाय है कि शिक्षालयों में ब्रह्मचारी और छात्र पवित्र बनें। वे उस काल में बन सकते हैं जब उनके गुरु आचार्य सुन्दर होंगे। आचार्यों के द्वारा आत्म बल होगा। मनोविज्ञान उनके द्वारा होगा। संसार का विज्ञान जब उनके द्वारा होगा। नोट यहाँ से टेप रिकार्ड खराब हो जाने के कारण प्रवचन का अगला भाग टेप नहीं

१ अतिथि 004 अतिथि पुष्प 21 प्रसव काल तथा गर्भ की रक्षा

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांन्ति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान करते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, कि आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रायः वर्णन होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की आभा का प्रायः वर्णन हमारे वैदिक साहित्य में भी परम्परागतों से ही, प्राप्त होता रहता है परन्तु प्रत्येक मानव को विचार यह करना होता है कि हमारा मानवत्व कितना विचित्रा होना चाहिए, क्योंकि मानव की जा आभा है उसमें बेटा ! परमपिता परामात्मा का विज्ञान निहित रहता है। परमात्मा का विज्ञान इतना निहित रहने वाला होता है कि उमसें भिन्न भिन्न प्रकार के प्रश्न आते रहते हैं और भिन्‍न भिन्न प्रकार की टिप्पणियां प्रारम्भ होती रहती हैं परन्तु वह जो एक रस रहने वाला विज्ञान है उसमें परिवर्तन नहीं होता। इसीलिए आज हमें विचारना है कि हम किसी वाक्य को बेटा परिवर्तनशील भी नहीं बनाना चाहते क्योंकि हमारे जीवन की जो अनुपम आभा ! है उसी में ज्ञान और विज्ञान का स्रोत विराजमान रहता है अथवा मानव का हृदय माना है।

मुझे स्मरण आता रहता है जब बेटा मैं आयुर्वेद का अध्ययन करता रहता था। आयुर्वेद ! का एक समय अध्ययन कर रहा था मौन व्रत चल रहा था, किसी से कोई वाक्य उच्चारण नहीं किया जाता था। मेरे प्यारे महानन्द जी उस समय एक प्रश्न करने वाले थे परन्तु बालिका ने उसको अप्रत कर दिया और यह कहा कि तुम प्रश्न मत करो क्योंकि मौन व्रत में मानसिक जो बाधा है वह नहीं होनी चाहिए। मानसिक बाधा में जो परिश्रम

होता है बुद्धि का उससे ह्रास हो जाता है परन्तु प्रश्न तो करना ही था।
कुछ समय के पश्चात प्रश्न किया गया कि माता के गर्भ स्थल में दिवस 9 मास और 9 ही मानो गर्भ क्यों रहता है। यह प्रश्न बड़ा जटिल प्रश्न था, जिसका उत्तर देना हमारा एक मौलिक कर्तव्य बन जाता था। क्योंकि दिवस की अवधि होती है गो 9 मास 9 नाम के पशु की और माता के गर्भस्थल क ी इस अवधि को आयुर्वेद का एक बड़ा सूक्ष्मतम रहस्य माना जाता है। मानो देखो, कि यह ऐसा प्रश्न है जिसके ऊपर बेटा ! दर्शन को बहुत आवश्यकता रहती है। ऋषि मुनियों ने कहा कि इसमें दर्शन का क्या सिद्धान्त है। मेरी बालिका ने कहा कि प्रभु इसको तो मैं भी जानना चाहती हूँक्योंकि जब तक मुझे यह ज्ञान नहीं होगा कि गर्भस्थल में बालक किस परिस्थितियों में 2 रहता है, किस मास में क्या बनता है ऐसा जाने बिना मानो मेरा गृहस्थाश्रम में 2 देखो !प्रविष्ट होना शोभा नहीं देता। तब मुनिवरों, मुझे स्मरण आता रहता है, मैंने कहा कि सबसे प्रथम मास, द्वितीय मास, तृतीय मास और चतुर्थ, पञ्चम, षष्ट, सप्तम, अष्टम और नवम और से ही 9 दिवस आगे इसमें आयुर्वेद ही नहीं वेद भी कहता है कि 9 को ले जाते हुए शंख और पद्म तक की गणना 9 गणना का प्रारम्भ होता है और की जाती है। इसीलिए हमारे यहाँ नवाय नमः आता है। औरविवरण भी आता है। उसका अभिप्राय यह है कि बालक माता के गर्भ में मास क्यों रहता है ऋषि मुनि 9 भी रहते हैं इतने ही समय तक और देवता गण भी इतने समय तक रहते हैं और दैत्यगण भी इतने समय तक गर्भस्थल में रहते हैं विचार आता है कि कहीं कहीं मानव देखो, अप्रेत दिवस तक ही जाते हैं मानो देखो, दशम मास तक भी चले जाते हैं। देखो, यह सुन्दर नहीं होता।
अभिप्राय केवल यह कि सबसे प्रथम मुनिवरोंदेखो !, कि माता के गर्भस्थल में नाना प्रकार की ग्रन्थियां होती हैं उन ग्रन्थियों में मुनिवरोंदेखो !, रजसतम और वीर्यसतम जिनको हम गोरस कहते हैं। गोरस मुनिवरों रज को भी कहते हैं और पुरुषत्व को ! भी कहते हैं। गो नाम नाना प्रकार की वनस्पतियों के रस को माना गया है। वह रस माता के गर्भस्थल में जो ग्रन्थियां होती हैं, इन ग्रन्थियों में बेटा उन का प्रवाह !

ऐसे रमण करता है, ऐसा भयंकर प्रवाह अपनी परिधि में भ्रमण करता है जहाँ बेटा ! देखो, मिलखी नाम की वायु रमण करती हुई मानो देखो, माता के दांए भाग में एक क्षीण होता है, इसी प्रकार दूसरे भाग में होता है क्योंकि कहीं कहीं आयुर्वेद के ऋषियों ने बेटाआचार्यों ने बे 2 माता के गर्भ में दो थैलियां स्वीकार की हैं। कहीं !टा देखी ! एक ही थैली स्वीकार की है। मैं यहाँ महात्मा दधीचि और शाण्डलय मुनि के सिद्धान्त का वर्णन कर रहा हूँ और वह वर्णन यह है कि मानो देखो, थैली तो एक ही होती है परन्तु दो प्रकार की रचना होती है दो प्रकार की रचना इसीलिए होती है कि माता का जो अग्रभाग होता है मुनिवरों उसमें क्रुणा नाम की नाड़ी होती है उसका क्रूणा नाम ! की नाड़ी का सम्बन्ध वायु से होता है और वायु में प्राण वायु जो भ्रमण करती है उसको अपने में धारण करती रहती है, अपने में धारण करती रहती है, अपने में उसको स्वतः ही ग्रहण करती रहती है। माता के गर्भ में नाना प्रकार की ग्रन्थियां हैं, वे ग्रन्थियां मानो स्पष्टिकरण होती चली जाती है। द्वितीय मानो वे ग्रन्थियां अपने स्थान पर शुद्धरूप 2 से परणित हो जाती हैं परन्तु देखो, उसमें एक मानव आकार की जल की थैली का निर्माण हो जाता है जिसमें बालक ओत प्रोत हो जाता है। बेटा! देखो, जल की थैली में भी इस प्रकार की नस नाड़ियों का समूह होता है जिसका सम्बन्ध माता की नाभि से लेकर माता की लोरियों तक चल कर माता के ब्रह्मरन्ध्र तक जहाँ तक जहाँ चन्द्रकेतु नाम की नाड़ी होती है उससे सीधा सम्बन्ध होता है। चन्द्रमा से नाना प्रकार के रसों का आस्वादन, जो समुद्रों से मिलान करता हुआ आता है उसमें ओत प्रोत हो जाता है और उस में उसको परिस्थिति एक ऐसे हो जाती है जैसे मानो देखो, बालक माता के गर्भस्थल में एक आनन्द को पान कर रहा है। विचारना केवल यह है कि माता को इसका ज्ञान होना चाहिए और उसका विवेक भी होना चाहिए इसके साथ साथ केवल माता को ही नहीं पुरुष को भी विवेक होना चाहिए। इसीलिए विचारना केवल यह है कि द्वितीय मास में उस थैली का निर्माण जो रजस और वीर्यतम है मानो उसके शुक्राणु तथा प्रमाणु अग्नि से और कृतियों से सम्बन्धित होते हुए मानव का एक कृत्य एक समूह सा बन जाता है जिसको फिनाननी कहते हैं। देखो, हमारे यहाँ इसको मनुष्य का

आकार कहते हैं वह आकार बन करके मानो थैली जिसमें जल की प्राप्ति (पुतला) होती है उस थैली में ओत प्रोत हो जाता है। देखो, उससे नाड़ियों का सम्बन्ध ऐसे ओत प्रोत हो जाता है जैसे देखो, सूर्य की नाना किरणें एक दूसरे आसन से नहीं परन्तु उसकी किरणें मानो चक्रित होती रहती है। इस प्रकार माता के गर्भस्थल में वह जो अनुपम प्रकाश है जिसको आत्मा कहते हैं वह अग्रित होकर प्रकाशित रहता है।

हमारे यहाँ दो प्रकार के सिद्धान्त हैं। बेटाकोई तो यह स्वीकार करता है कि ! चतुर्थ मास के पश्चात माता के गर्भस्थल में जीव आता है। कोई यह स्वीकार करता है कि प्रारम्भ में ही आ जाता है परन्तु इसमें भञ्जू मुनि का और शाण्डलय जो का सिद्धान्त कुछ और है मुदगलजी और दधीचि जी के सिद्धान्तों में मतभेद हो जाता है परन्तु दोनों के मतभेदों का निमटारा करने के लिए दर्शन यह कहता है कि गृह के निर्माण करने के लिए गृह के स्वामी की आवश्यकता होती है। इसीलिए यदि गृह का स्वामी उसमें विराजमान हो जाता है तो गृह का निर्माण हो जाता है क्योंकि जो चेतना है उस चेतना के अग्रित हो तो मानो देखो, उसकी उज्वल क्रिया कि उर्ध्व गति हो जाना, निम्न गति हो जाना यह सब देखो, मानव चेतना के आश्रित रहने वाला एक उपदेश है, आदेश है। इसीलिए हमारे यहाँ देखो, तृतीय जो मास होता है उसमें मानो पूर्णतया आकार बनकर माता के गर्भस्थल में ज्यों का त्यों स्थित हो जाता है। इस समय हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने एक वाक्य कहा है कि उस समय उन्नयन नाम का संस्कार करना चाहिए। 2 उन्नयन नाम का संस्कार उसे कहते हैं जहाँ अपने अपने में स्वयं अभिमानी बन कर सुदृढ़ हो जाता है। उस समय पति पत्नि को संकल्प वादी बन जाना चाहिए। माता और पिता दोनों को संकल्प वादी बन करके देखो, माता चतुर्थ मास में क्योंकि बुद्धि का निर्माण होता है बुद्धि के तन्तु बनते हैं इसीलिए माता को गायत्राणी छन्दों का पठन अति अनिवार्य है। यदि दर्शनों का सिद्धान्त हो तो बहुत ही ऊँचा है। क्योंकि जिस प्रकार माता मन्दालसा को उसका ज्ञान था। मैं इस सम्बन्ध में कोई अधिक विचार नहीं देना चाहता। पञ्चम मास में ओज की उत्पत्ति होती है क्योंकि ओज का जो अद्वत है उसका सम्बन्ध सूर्य से होता है और सूर्य से मानो देखो, प्राण घृत की प्राप्त करता है जिसको

हम रुद्द कहते हैं। उस अग्नि को प्राप्त करने वाली केवल माता ही होती है देखो, पचम मास में बालक को ओज की प्राप्ति होती है। उस समय माता को चाहिए कि वह ओज के लिए उपासना करे। अर्थात् ओज किस प्रकार और कैसे उत्पन्न होता है उसी प्रकार का आहार व्यवहार होना चाहिए यहाँ ऋषि मुनियों ने इस विषय पर बहुत सी टिप्पणियां की हैं। कुछ टिप्पणियां ऐसी हैं कि माता का कैसा आहार होना चाहिए? कैसा व्यवहार होना चाहिए वार्त्ता करने में कैसे विचार होने चाहिए। दर्शन को कितना विचारा जाए। देखो, जो संस्कार है इससे माता का गर्भाशय महान पवित्र बनता चला जाता है।

ऐसा ऋषि कहते हैं कि छटे मास में मन की जो धारा है जिसको सोनि नाम को धारा कहते है उसका प्रकृति से प्रादुर्भाव होता है वह उस मन के साथ में और आत्मा के साथ में उसका निदान किया जाता है। मन और प्राण दोनों को सन्धि कर दी जाती है, दोनों का अविच्छेद कर दिया जाता है। उस समय माता के गर्भस्थल में वह बालक अपनी कुछ क्रीड़ 2ा तो नहीं परन्तु वह किसी किसी काल में जल में एक आनन्द को ग्रहण करता रहता है। कहीं यदि माता के गर्भ में जल की थैली में कहीं छेंद हो जावे तो माता ही जीवित रहती है और न ही बालक जीवित रहता है। इसीलिए इसकी रक्षा करना माता का बहुत कर्त्तव्यहलाया गया है। इसीलिए इस पर मानव को प्रायः बल देना चाहिए। देखो, इस बालक के पूर्व पुरुष और माता दोनों को ब्रह्मचारी तो रहना ही चाहिए, क्योंकि यदि ब्रह्मचारी नहीं होंगे तो शुक्रत की हानि होती रहेगी और जो शुक्रत है वह अनाक्रतियों को प्राप्त होता रहता है इसीलिए मैं इस सम्बन्ध में बेटा ! अधिक चर्चा प्रकट नहीं करना चाहता। मैं आयुर्वेद का कुछ सिद्धान्त और विचार ले कर चला हूँ।

इसके पश्चात् सप्तम मास आता है इसमें बालक परिपूर्ण हो जाता है इसकी सब क्रियाएं उज्ज्वल हो जाती हैं। उस समय माता को चाहिए कि प्रभु से आराधना करती हुई गायत्राणी छन्दों का जप करती हुई चन्द्रमा के दर्शन करने चाहिए। क्योंकि चन्द्रमा सोमन है। इसीलिए सप्तम मास में सोम की उत्पत्ति हुआ करती है। सोम हो अपना जीवन देता है उस समय चन्द्रमा की उपासना करनी चाहिए। हमारे यहाँ ऋषि मुनियों

का तो ऐसा विधान है अथवा आयुर्वेद यह कह रहा है कि माता को चन्द्रमा की कान्ति नग्न होकर ग्रहण करनी चाहिए, क्योंकि हमारे शरीर में जो द्वार है उन प्रत्येक द्वार से चन्द्रमा की कान्ति को ग्रहण करना चाहिए। यह सर्वत्रा कर्मकाण्ड गर्भाशय का कर्मकाण्ड कहलाया गया है। इसी प्रकार अप्रुत उस काल में यदि माता के गर्भस्थल से वह बालक दूरी भी हो जाता है तो बालक जीवित रह जाता है क्योंकि उसको सब गुण उपलब्ध हो जाते हैं।

अष्टम मास जब आता है तो अष्टम मास से ऐसा स्वीकार किया गया है कि उस मसय चन्द्रमा का जो सोम्य है वह शान्त हो जाता है। उस समय सूर्य का अपना प्रकाश होता है, सूर्य की जो व्यास रेधनि, पातञ्जलि, क्रेनकेतु आवरण नाना प्रकार की जो क्रान्ति होती है, माता की नसनाड़ियों में उसका प्रवाह होता है। माता के ब्रह्मरन्ध्र में सूर्यकेतु नाम की नाड़ी होती है उस नाड़ी में से तीन धाराएं चलती हैं, व्यास, पातञ्जलि और सूर्य। उनसे तीन तीन धाराएं बनती हैं, जिसे हमारे यहाँ रेधनि वैश्णाव, प्रीतिका, आभ्यन्ता नद्मानि, सौभग्नि, आम केतु, परन्तु उन का प्रायः उन नाड़ियों से विशेष सम्बन्ध होता है और उन नाड़ियों का सम्बन्ध माता के हृदय से होता है। इसीलिए देखो, माता के गर्भ से अष्टं मास में हृदय का, पाना, माता का हृदय और बालक के हृदय का, दोनों का निदान किया जाता है। दो के निदान में यदि इस समय माता के हृदय से बालक दूरी हो जाए तो माता के बालक की मृत्यु हो जायगी, क्यों हो जाती है उस का मूल कारण यह है कि माता के हृदय और उसके हृदय का विच्छेद अभी पूर्णातया नहीं हुआ क्योंकि हृदय के विछेद न होने के कारण हृदय की गति सूक्ष्म रहती है, सूक्ष्म रहने के कारण होते ही माता के गर्भ से उस बालक के हृदय की गति शान्त हो जाती है नवम मास जब आता है बेटा नवै मास में वह गर्भाशय पूर्ण हो जाता है। कैसा पूर्ण होता है जैसे ! पूर्णिमा का चन्द्रमा सम्पूर्ण कलाओं से सम्पन्न होता है इसी प्रकार माता का गर्भाशय उस समय पुनीत पवित्र हो जाता है। दिवस को महान आयु होती है। 9 मास और 9 माता के गर्भ के बेटा !9 मास दिवस इसलिए निश्चित किए हैं कि उस समय देखो 9, हमारे यहाँ द्वारों प 9 द्वार माने हैं और 9र हो देवता होता हैं 9, ही ऋषि होते हैं। 9

द्वार है। उन का जो मार्ग 9 द्वार होते हैं वह ही आत्मा के जाने के 9 बालक के जो मार्ग सुन्दर स्वस्थ बन जाते 9 के 9 दिवस में स्पष्ट हो जाता है और वह 9 है वह हैं उन में एक रेधनी नाम की वायु होती है और प्रोतिका नाम की प्ृाणा शक्ति होती है जिसे विद्युत कहते हैं जो द्यौ लोक से आती है वह मानव की जो इन्द्रियाँ हैं, यह जो द्वार कहलाते हैं इन द्वारों को स्वच्छ बनाती हुई माता के गर्भ में उस समय 9 बालक का जन्म होता है ऐसा हमारे यहाँ आयुवेद ने माना है !बेटा, परन्तु मैं आयुर्वेद के सम्बन्ध में कहाँ तक चर्चा करूं, आयुर्वेद तो एक महान वेद है, आयु का वेद है। आयु देने वाला है परन्तु माता को कितना विज्ञान चाहिए, उसको विचारने के लिए कितनी महानता चाहिए क्योंकि माता को अपने जीवन में मुनिवरोंदेखो !, बालक को जन्म देने के लिए तप की तो आवश्यकता रहती ही है। क्योंकि तप के बिना कदापि महान बालक उत्पन्न नहीं होता। यों तो बेटा संसार में कीड़ों को जन्म माता प्रायः ! देती रहती हैं। परन्तु जहाँ कनाद और गौतम, भगवान कृष्णा और राम और जमद्गि इत्यादियों का जहाँ जन्म होता है, उन माताओं का हृदय तो तपाप हुआ होता है ब्रह्मचर्य से तपा हुआ होता है परन्तु देखो, ब्रह्मचारी भी मानो अपने हृदय को स्वच्छ बना सकता है। हृदय की महान बनाता है। इसीलिए देखो, यहाँ मानव ऐसा नहीं है परन्तु यहाँ संसार में बहुत कुछ विचार विनियम करने की आवश्यकता है। बाल्यकाल से लेकर जब माता तपस्वनी बन जाती है ब्रह्मचरिणी बन जाती है, ओज की रक्षा करती है तो पूर्ण युवती हो जाने पर उस माता को किसी प्रकार का रुग्ण भी नहीं होता। इस प्रकार का आयुर्वेद में जो विधान आता है। मैंने आयुर्वेद की कुछ टिप्पणियां की हैं। आयुर्वेद के ऊपर बेटामैंने अपना लेख भी वर्णन क !िया है।

मेरे महानन्द जी ने कहा कि प्रभु यह तो मेरे आँगन में आ गया है परन्तु क्या जब सप्त मास में बालक की उत्पत्ति होती है तो क्या उस समय द्वारों का निर्माण नहीं होता 9? वह दिवस कहाँ चले जाते हैं 9 मास और 9? उस समय मैंने कहा कि हे पुत्रा यह श्रेष्ठ बालक को जन्म देने का मैंने निर्माण किया उसी के विषय में कुछ अपनी चर्चाएं की हैं जो अप्रेतों में मैंने इनकी चर्चाओं को नहीं किया है। रहा यह वाक्य कि प्रकृति

का जो विधान है, मेरे प्यारेप्रभु का जो विधान है !, जो वैज्ञानिकता है, मैंने उसकी संक्षिप्त चर्चाएं की हैं। परन्तु आयुर्वेद में मुनिवरों ऐसा हमारे यहाँ माना है कि रुग्ण ! के लिए नाना प्रकार से रोगी हो जाना मानव के लिए सुन्दर नहीं है परन्तु मानव को अपने शरीर की रक्षा करने के लिए नाना प्रकार के निदान की आवश्यकता होती है। उसमें नाना प्रकार की वायु को जानने की आवश्यकत ा होती है। वहाँ जो वायु है वह नाना प्रकार की अन्तरिक्ष में रमण करती रहती है, द्यौ लोक में रमण करती है। बेटा ! वायु के विषय में बहुत कुछ उच्चारण किया जा सकता है परन्तु विचार विनिमय केवल इतना है कि मानव को यह विचारना है कि माता के गर्भस्थल में इतने दिवस तक इस ी प्रकार इसमें श्रेणियां होती हैं। माता के गर्भस्थल में श्रेणियां होती हैं, मानो दैव्य भी इसी से मानव भी इसी से, देवता भी, ऋषी मुनि भी, साधारण कीड़े की भान्ति मनुष्य भी माता के गर्भस्थल से उत्पन्न होते हैं। जो माता अज्ञान में रमण करती रहती है, जिन्हें ज्ञान नहीं होता, जिन्हें प्रकृति का ज्ञान नहीं होता उनके यहाँ अशुद्धियों में माता प्रायः रमण करती रहती है।

बेटा हमारे यहाँ जब मुनियों के जन्म होते थे तो माताएं प्रायः आयुर्वेद का अध्ययन ! करतीं यह माता के लिए अनिवार्य था जिससे माता का जीवन सर्व श्रेष्ठ बनता चला जाए। परन्तु रहा यह वाक्य ऐसा जो बालक होता है, ऐसा बालक देखो, मुनिवरों ! मन्सा पापी नहीं होता, ऐसा बालक दुर्व्यवहारी नहीं होता। ऐसा बालक देखो, माता के गर्भ को और अपने जीवन को पवित्र बनाने वाला होता है। कनाद और व्यास की भान्ति ही वह अपने जीवन को पवित्र बनाने वाला होता है। इसलिए बेटा जो मानव संसार ! में मन्सा पापी होती हैं, जिन्हें विचार नहीं होता उन के मात संस्कार अशुद्ध होते हैं। संसार में तीन प्रकार के संस्कार मानव ले करके आता है। सब से प्रथम संस्कार मानव के पूर्व जन्म के होते हैं दूसरे संस्कार माता के पैतृक संस्कार होते हैं और तीसरे संस्कार मानव समाज के होते हैं, वातावरण के होते हैं। इसीलिए तीन प्रकार के संस्कार मानव के होते हैं। इसमें आयुर्वेद कहता है कि मानव के यह तीनों संस्कार बड़े सौभाग्य शाली प्राणी को प्राप्त होते हैं। पूर्व जन्म का संस्कार भी पवित्र हो, माता पिता का संग भी

पवित्र ही अपना मित्रा मण्डल भी पवि ा हो तो वह मानव तो बड़े सौभाग्य शाली. होते हैं परन्तु इनमें से यदि मानव के पूर्व जन्म के संस्कार श्रेष्ट है, माता के पैतृक संस्कार सुन्दर नहीं हैं तो वह संस्कार कुछ जब जाते हैं और कुछ समय के पश्चात उनका प्रदूभाव होता है। परन्तु कुछ ऐसे होते हैं जिनका सामाजिक पद्धतियों में, सामाजिक जो विचार होता है समाज जो होता है जहाँ मित्रा मण्डल अशुद्ध होता है वह दुरात्मा ही होता है तो माता के पैतृक संस्कार, समाज का अशुद्ध जो वातावरण है उसमें बहुत हही ऐसे विरले होते हैं जो समाज में जाकर वह अपनी पद्धति से दूर चले जाते हैं। ऐसे प्राणी सूक्ष्म होते हैं। इसलिए माता के पैतृक संस्कार पवित्र होने चाहिए क्योंकि संसार में दुराग्रह और दुराचार करना यह मानव का कर्त्तव्य नहीं है इसमें मानव की जीवन की हानियां होती हैं जिससे वायुमण्डल प्रकृतिवाद अशुद्ध हो जाता है।

आज हमें यह विचारना है कि कैसे प्रत्येक वाक्य पर अपनी बुद्धि से विचार विनिमय करना है। ऋषि ऐसा कहते हैं कि मानव को अपनी जीवन की धाराओं की लेखनी बद्ध करना चाहिए परन्तु जिस समय ढ्षि अपनी लेखनी बद्ध करते हैं लेखनी बद्ध करने से यह विचार लेते हैं कि शुद्ध विचारों की लेखनी बद्ध करना है वे मानव बड़े सोभाग्यशाली होते हैं ऐसे मानव बिरले ही होते हैं। अन्यथा मानव अपने जीवन की महान से महान भूल को लेखनी बद्ध कर देते हैं। मुनिवरों! देखो, मैं अधिक चर्चा प्रकट नहीं करने ! आया। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हमें विचारना है। हम इन वाक्यों पर और टिप्पणी किसी काल में करेंगे। आज का समय इतना आज्ञा नहीं दे रहा। आज का विचार केवल यह है कि अपना गृह आसन तथा वातावरण पवित्र तब बनेगा जबकिहमारे द्वारा मन्सा पाप नहीं होगा, हमारे पास अशुद्ध वाक्य नहीं रहेगा। अशुद्ध वाक्य उन प्राणियों के हृदय में होता है जो रसना के और लिंग के पुजारी होते हैं, सुन्दरी के पुजारी और अविद्या के पुजारी होते हैं। उनके यहाँ का वातावरण सदैव अशुद्ध रहता ही है। इसीलिए यह दोनों पूजनीय नहीं होने चाहिए। पूजन और ही होने चाहिए। व्यापकता का पूजन होना चाहिए जिससे इस संसार में एक महानता का प्रसार होता रहे, यह समाज और वातावरण पवित्र बनते रहें। इसीलिए हमारे यहाँ बेटा यज्ञ को !

श्रेष्ठ माना है, क्योंकि यज्ञ का वातावरण भी माता के गर्भाशय से ही यज्ञ की उत्पत्ति होती है। इसीलिए आज हमें विचारना है, हमें इन वाक्यों पर बहुत विचार विनियम करना है। आओ मेरे प्यारे ऋषिवर मैं आज यह वाक्य प्रकट करने चला गया। मैं यह ! दिवस तक ही क्यों उत्पन्न होते 9 मास और 9 वाक्य उच्चारण कर रहा था कि हम हैं। इसकाअभिप्राय यह कि प्रत्येक प्रवृत्तियों का निर्माण प्रत्येक मास में होता है इसीलिए द्वार होते हैं अष्टचक्र होते हैं इनका निर्माण इतने ही समय में होता 9 इन वार्त्ताओं की अधिक चर्चा नहीं देना चाहता हूँ। वाक्य उच्चारण !रहता है। अब मैं बेटा करने का अभिप्राय यह है कि माता को आयुर्वेद का ज्ञान होना चाहिए और पवित्र वाद होना चाहिए मानव के द्वारा ऐसी पवित्राता होनी चाहिए जिस पवित्राता से हमारे जीवन में महान धाराओं का जन्म होता है जिससे हमारे जीवन का एक महान मौलिक रहस्य, एक मात्रा जीवन का एक मौलिक रासनिकता का एक रहस्य कहलाया गया है। यह है बेटा आज का वाक्। !

मैं क्या कहा करता हूँ कि बेटा संसार में यदि हमें कुटुम्ब बनाना है तो माताओं को ! जगत का कुटुम्ब बनाना है और ऐसे बालक को जन्म देना चाहिए कि जहाँ जाए अपनी और अपनी माता की कुशलता को सदैव जानकारी में लाने वाला हो। वह जगत म ाता बन जाती है। वह व्यक्ति की माता है जहाँ बालक जाता है, मानो बुद्धिमान जाता है वहीं माता की कुशलता बेटा मुझे स्मरण आता रहता है जब मैं आयुर्वेद का अध्ययन ! प्रकार के यज्ञों का कर्मकाण्ड 64 करने के पश्चात दर्शनों का अध्ययन करने के पश्चात का अध्ययन करने के पश ्चात जब मैंने सर्वस्व राष्ट्र में भ्रमण किया परन्तु जहाँ जाता वहाँ माता और मेरी दोनों की कुशलता को स्वीकार किया जाता, तो मेरी माता जगत माता बन गई। केवल एक पिता ही ऐसा पुरुष रह गया कि जो उसका पति था अन्यथा सर्वज्ञ की माता ही माता थी, इसीलिए सयोग्य माता की यही कुशलता (निपुणता) होती है। विचारक पिता की यही कुशलता होती है कि उनका नामोकरण संसार में आज का वाक्। अब मैं इन वाक्यों को !कितना विशाल बन जाता है। यह है बेटा

विराम दे रहा हूँ।

वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या कि हमें विचारना है कि यदि हम वातावरण और प्रकृति के आधार पर अपने जीवन का निर्माण करने वाले बनेंगे तो यह समाज पवित्र बन जाएगा। यह विज्ञान पवित्र बन जाएगा। इसमें क्या विशेषता है? वेद हमें आयु देने वाला है, पवित्राता का प्रसारण करने वाला है। मुनिवरोंदेखो !, मुझे समय मिलेगा तो बेटामैं चर्चाएं करूंग !ा जब आयुर्वेद का कोई वाक्य आयेगा कि किस मास में 2 से अन्न 2 मास में कौन 2 माता को कौन कौन सा आहार करना चाहिए और किस का पान करना चाहिए? तो इसका मैं संक्षिप्त सा परिचय देता रहता हूँ वह परिचय यह है कि प्रारम्भ मास में माता को प्रायः अप्रेत मधुर वस्तुओं का पान करना चाहिए मधुर जितने द्रव्य होते हैं, उनका आहार करना चाहिए और मधुरता के साथ में कुछ कसैले पदार्थ उसमें मिश्रित होने चाहिए और द्वितीय मास में रसदायक पदार्थ होने चाहिए जैसे वनस्पतियों का रस है जैसे मानो शेल खण्डा है, संखाहोली है सोमभानि है ब्रह्मकेतुनी है इन चारों औषधियों का रस ले लेना चाहिए और इनका दस सांयकाल को इनको जल में अप्रेत करके चन्द्रमा की क्रान्ति में अस्वत कर देना चाहिए और प्रातः काल इसका पान करना चाहिए और तृतीय मास में कुछ उष्ण औषधियां होनी चाहिए, जैसे संखाहोली होती है, सामभूमि होती है, रामभानि होती है इन औषधियों को अग्नि में तपाकर इनको पान करना चाहिए। इसी प्रकार चतुर्थ मास में जिन औषधियों से बुद्धि की वृद्धि होती है जैसे हमारे यहाँ सहदेई, होती है, शंखानि होती है, चाक्रानि होती है गली होती है इनका रस बना कर माता को पान करना चाहिए। इसी प्रकार पञ्चम मास है इसमें चन्द्रमा की सूर्य की किरणों में तपाया हुआ जल होना चाहिए, कैसे पदार्थ होने चाहिए, गोमूत्रा लेकर के उसको अग्नि में तपाकर के उसमें कुछ द्रव्य पदार्थ होने चाहिए, कैसे हों? मानो देखो, केशधानी होती है, सहानी होती है, चंपानी होती है, तेलकेतु के पुष्प होते है उन्हें अग्नि में तपाकर के पान करना चाहिए। ऐसी जब माताएं होती है, वे अपने गर्भ से ऋषि को जन्म देती है इसी प्रकार छटे मास में जैसे खेलहानिनी होती है और चंपानी होती है, जैसे क्रान अन्तु, साननेतु इनका रस इनको अग्नि में तपाकर

के इनकी स्यायी बनाकर के इनको मिष्ठान में साग बनाकर गो घृत सहित इसको गोदुग्ध के साथ पान करना चाहिए। इसी प्रकार सप्त्म मास में जैसे हृदय ग्राही औषधि होती है हृदय ग्राही कौन सी औषधि होती है, जिससे हृदय का सुन्दर निर्माण होता है। वे हृदय ग्राही औषधियां जैसे गोकलु होते हैं (गोखरु), गोग्रिनी होती है, पापड़िक औषधि होती है इन तीनों औषधियों को लेकर (पिन पाप), गो दुग्ध होता है, उनको छाया में सुखाकर छाया में शुष्क करने के पश्चात सूर्य के साथ में इनको खरल करके इनको पान करके इससे सप्तम मास में जो पूर्ण होता है, उससे पूर्ण होता चला जाता है। इसी प्रकार अष्टम मास में माता को स्वाद केतु का जल वर्षा का जल होना चाहिए उसको अग्नि में तपा कर के उसमें नाना द्रव्य होते हैं, जैसे मनक्रन होते हैं, मानो क्रीण केतु होती है, जो द्रव्य होते हैं मानो मेवाएं होते हैं इनको पान करना चाहिए, इससे हृदय पवित्र होता है और हृदय विशाल होता है। बेटा !9 मास में तो देखो, अन्न की बड़ी अस्त होनी चाहिए जैसे चावल है, मानो जैसे तन्दुल हैं परन्तु तन्दुल को तपा करके तन्दुलों को अप्रेत बनाकर के उसमें नाना प्रकार की क्रीणी होती है, अनेक नेतु होती हैं उसमें गो घृत होता है उस पात को पान करना चाहिए बेटा दिवस 9 अब वह ! औषधियों का ही पान करना चाहिए। जितने !दिवसों में तो बेटा 9 बचते हैं। उन औषधियों का रस प्रत्येक दिवस में पान करना चाहिए। इससे 2 नौ मास में जिन उस पात का पान करना चाहिए।

यह कार्य किसने किया? यह महर्षि वशिष्ट मुनि की जो माता सौमभूमि थी, मुनिवरों ! यह सब उसी ने किया था, उन्हीं का निर्माण किया हुआ एक वाक्य है जो मैंने आज बेटा तुम्हें वर्णन किया। महर्षि वशिष्ट मुनि महाराज का निर्माण इन औषधियों द्वारा ! ही हुआ था। इन्हीं विचारों से पनपा गया। परन्तु इस प्रकार यह मैंने इस विज्ञान की चर्चा की। मैंने अधिक चर्चा प्रकट नहीं करनी है क्योंकि यह विज्ञान तो इतना विशाल है वार्त्ता में से वार्त्ता आती रहती है परन्तु देखो, इन औषधियों के गुण मैं किसी काल में प्रकट करूंगा। क्योंकि समय आज्ञा नहीं दे रहा है। आज का वाक् अब समाप्त होने जा रहा है। अब वेदों की पाठ होगा। मुनिवरों इसमें बहुत सी टिप्पणियां और रह !

गई हैं, किसी काल में प्रकट करूंगा अब आज